हिन्दी भाषा की उत्पत्ति और विकास

(Origin and Development of Hindi Language)

जयंत जॉली

हिन्दी भाषा की उत्पत्ति और विकास

हिन्दी भाषा की उत्पत्ति और विकास

(Origin and Development of Hindi Language)

जयंत जॉली

भाषा प्रकाशन
नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-5507-6

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

हिन्दी शब्द के प्रचलन के प्रसंग पर विचार करते समय यह स्पष्ट होता है कि संस्कृत, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं में यह शब्द प्रयुक्त नहीं हुआ है। मुसलमानों के आगमन तक भारत में भाषा के लिए 'भाषा' या 'भारवा' शब्द प्रचलित थे। ये शब्द 1800 ई.के बाद तक प्रचलन में रहे। जहाँ संस्कृत ग्रन्थों की टीका को 'भाषा-टीका' कहा गया है, वहीं फोर्ट विलियम कॉलेज में हिन्दी पढ़ाने हेतु नियुक्त होने वाले लल्लू लाल एवं सदल मिश्र को 'भाषा मुंशी' या 'भारवा मुंशी' कहा गया है। मुसलमानों के आगमन (13वीं-14वीं शताब्दी ई.) के साथ मध्यप्रदेश की जनसामान्य की बोली (भाषा) के लिए हिन्दी, हिन्दवी, हिन्दुई प्रभृत्ति नाम प्रचलित हुए।

18वीं शताब्दी में जब उर्दू का प्रयोग एक भाषा विशेष के लिए रूढ़ हो गया तब उर्दू और हिन्दी के मिले-जुले रूप को हिन्दुस्तानी कहा जाने लगा, किन्तु 19वीं सदी के अन्तिम चरण में हिन्दू-उर्दू को लेकर मतभेद आरम्भ हो गया। तदुपरान्त हिन्दी समर्थकों ने केवल हिन्दी शब्द के प्रयोग पर बल दिया। 1893 ई.में नागरी प्रचारिणी सभा तथा 1910 ई.में हिन्दी साहित्य की स्थापना इसी से की गई, किन्तु गाँधीजी हिन्दुस्तानी के प्रबल पक्षधर थे। इसका प्रमुख कारण यह था कि वे भाषा-विवाद को राष्ट्रीय एकता के लिए घातक समझते थे। इसके लिखित रूप के लिए वे देवनागरी और फारसी दोनों लिपियों का प्रचलन चाहते थे। गिलक्राइस्ट के समय तक हिन्दुस्तानी शब्द प्रचलन में रहा,

किन्तु उनके बाद अंग्रेज विद्वानों ने भी धीरे-धीरे हिन्दी या हिन्दवी शब्द का प्रयोग आरम्भ कर दिया।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। आशा करता हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

–लेखक

अनुक्रम

	प्रस्तावना	*v*
1.	**हिन्दी भाषा : उत्पत्ति**	**1**
	हिंदी भाषा का विकास क्रम	2
	भाषा के सन्दर्भ में हिन्दी शब्द का आरम्भिक प्रयोग	2
	हिन्दुस्तानी शब्द की व्युत्पत्ति	3
	उर्दू का प्रयोग	3
	मध्यकाल (1501 से 1800 ई. तक)	6
	आधुनिक काल (1801 ई. से आज तक)	7
	हिन्दी भाषा के विविध रूप	12
	उच्चारित या मौखिक भाषा	12
	लिखित भाषा	12
2.	**आदिकाल–वीर गाथा काल : हिंदी भाषा का साहित्य**	**22**
	इतिहास	22
	आदिकाल का नामकरण	23
	आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का मत	26
	आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत	26
	नाम निर्णय	27
	भारतीय धर्मग्रन्थों में पुराण	32

जैन आचार-मीमांसा 33
जीवतत्त्व प्रदीपिका 34
आगम 35
आल्हा छंद आदिकाल 35
सन्त काव्य 41
रासो काव्य 41
लौकिक साहित्य 43
गद्य साहित्य 44
अमीर खुसरो 44
विद्यापति 45
चरित काव्य की परम्परा 45
3. भक्ति कालीन हिंदी साहित्य का इतिहास 47
भक्ति काल के कवि और उनकी रचना 49
कृष्णाश्रयी शाखा 54
निर्गुण काव्य की विशेषता 61
सगुण काव्य धारा 63
सगुण भक्ति काव्य की विशेषता 64
हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग 'भक्तिकाल' 66
4. रीति काल-हिंदी साहित्य का इतिहास 69
समृद्धि और विलासिता का काल 70
श्रृंगारिक साहित्य 71
रीतिकाल के कवियो का इतिहास 71
रीतिकाव्य साहित्य का आरंभ 72
रीतिकाल के कवि 75
रीतिबद्ध कवि 75
रीति काव्य की विशेषता 76
रीति काल के काव्य अंगो का विवेचन 76
रीतिकालीन काव्य पर दोष 80
समाज को प्रगति प्रदान करने की अक्षमता 80
आश्रयदाता की प्रशंसा 81
साहित्य के पक्ष 81

लेखन परम्परा 81
केशवदास का योगदान 82
रस तथा अलंकार का प्रयोग 83
5. आधुनिक काल : हिंदी साहित्य 88
भारतेंदु युग 89
भारतेंदु युग के प्रमुख रचनाकार 90
द्विवेदी युग 90
द्विवेदी युग के प्रमुख कवि 92
द्विवेदी युग की विशेषताएँ 92
कवि क्रम अनुसार छायावादी रचनाएँ 94
6. हिन्दी भाषा के विविध रूप 101
लिपि 102
'हिंदी' शब्द की व्युत्पत्ति 102
हिन्दी एवं उर्दू 103
हिन्दी के विभिन्न नाम या रूप 104
हिन्दी की बोलियाँ 105
हिन्दी का वैश्विक प्रसार 108
7. हिन्दी का भाषिक स्वरूप 110
भाषा, व्याकरण और बोली 110
व्याकरण 111
संज्ञा के विकारक तत्त्व 120
8. हिन्दी भाषा : क्षेत्र, स्वरूप एवं विकास 137
भाषा क्षेत्र 140
व्यक्ति बोलियाँ 143
बोली 144
हिन्दी भाषा-क्षेत्र के क्षेत्रीय भाषिक-रूप 147
मैथिली भाषा 149
संस्कृत भाषा तथा हिन्दी भाषा 164
ऑपरेटिंग सिस्टम में हिन्दी 177
शब्द संसाधन एवं डाटाबेस प्रबंधन 179
प्रकाशन, वेबसाइट, ज्ञानकोष 180

सूचना प्रौद्योगिकी के संदर्भ में हिन्दी की प्रगति एवं विकास 180
हिंदी भाषा के स्वरूप 181
9. हिन्दी भाषा और साहित्य 186
हिन्दी भाषा का विकास क्रम 187
हिन्दी भाषा के विभिन्न काल 188
हिन्दी का विकासशील स्वरूप 191
हिन्दी भाषा और साहित्य में चिट्ठाकारिता की भूमिका 201
भारतेंदु पूर्व युग 206
भारतेंदु युग 206
द्विवेदी युग 207
रामचंद्र शुक्ल एवं प्रेमचंद युग 208
प्रगतिवादी युग की कविता (1936) 212
10. हिन्दी की उपभाषाएँ 214
उपभाषा पहचान 214
मानक भाषा और उपभाषा का अंतर 215
पश्चिमी हिंदी 216
राजस्थानी हिंदी 221
हिन्दी और उसका विकास 222
पहाड़ी हिंदी 222
बोलचाल की भाषा का सामान्य परिचय 225
11. हिन्दी की संवैधानिक स्थिति 228
हिन्दी को राजभाषा के रूप में स्वीकार किये जाने का औचित्य 229
अनुच्छेद 351 हिंदी भाषा के विकास के लिए निर्देश 230
राष्ट्रभाषा और हिन्दी 230
हिन्दी का विकासशील स्वरूप हिन्दी 230
का विकास और विदेशी विद्वान 231
अहिन्दी भाषी विद्वानों की हिन्दी सेवा 232
हिन्दी की बोलियाँ 233
लोक साहित्य और हिन्दी 233

1

हिन्दी भाषा : उत्पत्ति

'भारत' देश की भौगोलिक सीमाओं तथा उसके लिए प्रयुक्त होने वाले नामों (विशेषणों) में निरन्तर परिवर्तन होता रहा है। ब्रह्मवर्त, भारतखण्ड, जम्बूद्वीप, आर्यावर्त, उत्तरापथ, दक्षिणापथ तथा भारत इसके पुरातन नाम हैं। हिन्द तथा हिन्दुस्तान शब्द भी इसकी संज्ञा के रूप में प्राचीनकाल से ही व्यवहृत होते रहे हैं। ये दोनों शब्द वस्तुतः ईरानी सम्पर्क से व्युत्पन्न हुए हैं। इनमें भी हिन्दी शब्द को विद्वानों ने हिन्दुस्तान की अपेक्षा पुरातन माना है। पारसियों की प्राचीनतम धार्मिक पुस्तक 'दसातीर' में 'हिन्द' शब्द का उल्लेख मिलता है। पं. रामनरेश त्रिपाठी के मतानुसार ईरान के लोग, महर्षि वेदव्यास के समय में ही इस देश को हिन्द कहने लगे थे। ईरान के शाह गस्तस्य के काल में महर्षि वेदव्यास के ईरान जाने का उल्लेख मिलता है, हिन्दी भाषा कहा जाता है।

ऋग्वेद में 'सिन्ध' और 'सप्त सिन्धवः' शब्द नदी और सात नदियों के निमित्त कई बार तथा विशिष्ट प्रदेश के अर्थ में एक बार प्रयुक्त हुआ है। डॉ. भोलानाथ तिवारी के मतानुसार प्राचीन ईरानी साहित्य में हिन्द' शब्द का सिन्धु नदी तथा उसके आस-पास के प्रदेश के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। एक प्रदेश विशेष की संज्ञा के रूप में इस शब्द का प्रयोग महाभारत में भी मिलता है। सम्भवतः इन शब्दों ने याजकों के साथ ईरान की यात्रा की और वहीं हैन्दु, हिन्दू तथा हफ्त हिन्दवः या हफ्त हिन्दवो (अवेस्ता में) रूप में प्रचलित हुए। (उल्लेखनीय है कि भारतीय आर्यभाषा की 'स' ध्वनि ईरानी में 'ह' ध्वनि के

रूप में उच्चारित होती है। (जैसे-सप्त-हफ्त, अहुर-असुर) प्राचीन पह्लवी में हिन्दू, हिन्दुक और हिन्दश शब्द मिलते हैं। मध्यकालीन ईरानी में प्रचलित विशेष प्रत्यय 'ईक' जोड़कर (हिन्दईक) हिन्दीक फिर हिन्दीग शब्द बना।

हिंदी भाषा का विकास क्रम

संस्कृत → पालि प्राकृत अपभ्रंश अवहट्ट प्राचीन या प्रारंभिक हिंदी

'हिन्दी' शब्द का मूल अर्थ

'हिन्दी' शब्द का मूल अर्थ है-'हिन्दी का अर्थात् भारतीय।' व्याकरण के अनुसार इसे योगरूढ़ शब्द कहा जा सकता है। इस प्रकार के नामकरण दूसरे बहुत से देशों के लिए। प्रचलित हैं, यथा-जापानी, चीनी, नेपाली, भूटानी, रूसी, अमेरीकी आदि। धीरे-धीरे 'हिन्द शब्द का प्रयोग देशबोधक से निवासियों का बोधक बन गया। आरम्भ में यहाँ से निर्यात की जाने वाली वस्तुओं की पहचान हेतु भी यह शब्द प्रयुक्त होता था। उदाहरण के लिए अरबी तथा फारसी भाषा में 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग एक विशेष प्रकार की तलवार (जो भारतीय इस्पात की बनी होती थी) के लिए होता था।

'हिन्दी' शब्द का प्रयोग

'हिन्दी' शब्द के प्रचलन के प्रसंग पर विचार करते समय यह स्पष्ट होता है कि संस्कृत, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं में यह शब्द प्रयुक्त नहीं हुआ है। मुसलमानों के आगमन तक भारत में भाषा के लिए 'भाषा' या 'भारवा' शब्द प्रचलित थे। ये शब्द 1800 ई.के बाद तक प्रचलन में रहे। जहाँ संस्कृत ग्रन्थों की टीका को 'भाषा-टीका' कहा गया है, वहीं फोर्ट विलियम कॉलेज में हिन्दी पढ़ाने हेतु नियुक्त होने वाले लल्लू लाल एवं सदल मिश्र को 'भाषा मुंशी' या 'भारवा मुंशी' कहा गया है। मुसलमानों के आगमन (13वीं-14वीं शताब्दी ई.) के साथ मध्यप्रदेश की जनसामान्य की बोली (भाषा) के लिए हिन्दी, हिन्दवी, हिन्दुई प्रभृत्ति नाम प्रचलित हुए।

भाषा के सन्दर्भ में हिन्दी शब्द का आरम्भिक प्रयोग

भाषा के सन्दर्भ में हिन्दी शब्द का आरम्भिक प्रयोग पंडित विष्णु शर्मा की पुस्तक 'पंचतंत्र' की भाषा के लिए हुआ है। यह पुस्तक संस्कृत भाषा में लिखी

गयी है। पह्लवी (ईरानी) नरेश नौशेरवाँ (531–579 ई.) के दरबारी कवि वरजवैह (बर्जूयह/बजरोया) ने भारत आकर यह अनुवाद पह्लवी (प्राचीन ईरानी) में किया। नौशेरवाँ के विद्वान् मंत्री बर्जुरमहर ने (वस्तुतः जिनके द्वारा यह अनुवाद करवाया गया था) ने उक्त पुस्तक की भूमिका में लिखा है, 'यह अनुवाद जबाने हिन्दी से किया गया है।'' ईरानी अनुवाद की लोकप्रियता के उपरान्त इस ग्रन्थ का अन्य भाषाओं में भी अनुवाद हुआ और सभी में इसकी भाषा को 'जबाने-हिन्दी' ही कहा गया। 7वीं सदी से लेकर 10वीं सदी तक यह शब्द संस्कृत, पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषा की संज्ञा के रूप में निरन्तर प्रयुक्त होता रहा। तदुपरान्त मुसलमान रचनाकारों ने 'जबाने हिन्दी' के स्थान पर हिन्दी और हिन्दवी शब्द का प्रयोग आरम्भ किया।

हिन्दुस्तानी शब्द की व्युत्पत्ति

अनेक विद्वानों ने हिन्दुस्तानी शब्द की व्युत्पत्ति, अंग्रेजी के प्रभाव से मानी है, किन्तु कालान्तर में सम्पन्न होने वाले शोध-कार्यों से यह स्पष्ट हो चुका है कि यह शब्द उनके यहाँ आगमन से पूर्व ही प्रचलित हो गया था। शाहजहाँ (1627–1657 ई.) के समय की पुस्तकों (तारीख-ए-फरिश्ता तथा बादशाहनामा) में इस शब्द का प्रयोग हुआ है। इससे भी पूर्व स्वामी प्राणनाथ (1581–1694 ई.) ने अपनी पुस्तक 'कुलजम स्वरूप' में 'हिन्दुस्तान' शब्द का प्रयोग भाषा के निमित्त किया है, परन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि इस भाषा का व्यापक प्रचलन यूरोपीय लोगों के सम्पर्क से ही शुरू हुआ। उन्होंने हिन्दी, हिन्दवी या अन्य नामों की अपेक्षा 'हिन्दुस्तानी' शब्द का प्रयोग अधिक किया है। डच पादरी जे. केटलार (1715 ई.) ने अपने देशवासियों की सुविधा के लिए हिन्दी व्याकरण लिखा और उस हिन्दुस्तानी ग्रामर' कहा। कालान्तर में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना के बाद वहां के भाषा विभाग के अध्यक्ष गिलक्राइस्ट ने भारत की प्रमुख भाषा हिन्दुस्तानी कहा और इससे सम्बन्धित अनेक पुस्तकों का लेखन किया।

उर्दू का प्रयोग

18वीं शताब्दी में जब उर्दू का प्रयोग एक भाषा विशेष के लिए रूढ़ हो गया तब उर्दू और हिन्दी के मिले-जुले रूप को हिन्दुस्तानी कहा जाने लगा, किन्तु 19वीं सदी के अन्तिम चरण में हिन्दू-उर्दू को लेकर मतभेद आरम्भ हो गया। तदुपरान्त हिन्दी समर्थकों ने केवल हिन्दी शब्द के प्रयोग पर बल दिया। 1893 ई.में नागरी

प्रचारिणी सभा तथा 1910 ई.में हिन्दी साहित्य की स्थापना इसी से की गई, किन्तु गाँधीजी हिन्दुस्तानी के प्रबल पक्षधर थे। इसका प्रमुख कारण यह था कि वे भाषा-विवाद को राष्ट्रीय एकता के लिए घातक समझते थे। इसके लिखित रूप के लिए वे देवनागरी और फारसी दोनों लिपियों का प्रचलन चाहते थे। गिलक्राइस्ट के समय तक हिन्दुस्तानी शब्द प्रचलन में रहा किन्तु उनके बाद अंग्रेज विद्वानों ने भी धीरे-धीरे हिन्दी या हिन्दवी शब्द का प्रयोग आरम्भ कर दिया। 1812 ई.में कैप्टर टेलर ने फोर्ट विलियम कॉलेज का वार्षिक-विवरण प्रस्तुत करते समय हिन्दी शब्द का आधुनिक अर्थ में सम्भवत: प्रथम प्रयोग किया। उनका वक्तव्य था, "मैं केवल हिन्दुस्तानी या रेख्ता का जिकर कर रहा हूँ, जो फारसी लिपि में लिखी जाती है।.....मैं हिन्दी का जिक्र नहीं कर रहा, जिसकी अपनी लिपि है।.....जिसमें अरबी- फारसी के शब्दों का प्रयोग नहीं होता और मुसलमानी आक्रमण से पहले जो भारतवर्ष के समस्त उत्तर प्रान्त की भाषा थी।'

भाषा के रूप में 'हिन्दी' के विविध अर्थ

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि प्रारम्भ में हिन्दी शब्द क्षेत्र बोधक था। कालान्तर में यह यहाँ की वस्तुओं और निवासियों के लिए प्रयुक्त होने लगा। अन्तत: यह भाषा के लिए रूढ़ हो गया, परन्तु हिन्दी भाषा के सन्दर्भ में भी आज इसके तीन अर्थ मिलते हैं- (i) व्यापक अर्थ, (ii) सामान्य अर्थ और (iii) विशिष्ट अर्थ।।

व्यापक अर्थ

अपने व्यापक अर्थ में हिन्दी, (बाबू श्यामसुन्दरदास तथा डॉ. धीरेन्द्र वर्मा के मतानुसार) हिन्दी-प्रदेश में बोली जाने वाली समस्त 18 बोलियों की प्रतिनिधि भाषा है। ये बोलियाँ हैं-

- पश्चिमी हिन्दी में खड़ी बोली, बाँगरू (हरियाणवी), ब्रजभाषा, कन्नौजी और बुन्देली
- पूर्वी हिन्दी में अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी।
- पहाड़ी में पूर्वी पहाड़ी (नेपाली), मध्यवर्ती पहाड़ी (जौनसारी)
- राजस्थानी में पूर्वी राजस्थानी (ढुंढाड़ी), उत्तरी राजस्थानी (मेवाती), पश्चिमी राजस्थानी (मारवाड़ी) और दक्षिणी राजस्थानी (मालवी)
- बिहारी में मैथिली, महँगी तथा भोजपुरी।

सामान्य अर्थ

जॉर्ज ग्रियर्सन एवं सुनीति कुमार चटर्जी प्रभृत्ति भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार केवल पूर्वी हिन्दी एवं पश्चिमी हिन्दी की बोलियों को ही हिन्दी भाषा की बोली के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। इस प्रकार इनकी मान्यताओं के धरातल पर हिन्दी को 8 (पश्चिमी हिन्दी की 5 और पूर्वी हिन्दी की 3) बोलियों की प्रतिनिधि भाषा मानते हुए उसका उद्‌भव शौरसेनी और अर्द्धमागधी अपभ्रंश से माना जा सकता है।

विशिष्ट अर्थ

हिन्दी भाषा का समसामयिक आशय है-खड़ी बोली हिन्दी। भारतीय संविधान के अन्तर्गत इसे भारत संघ की राजभाषा के रूप में (अनुच्छेद 120, 210 तथा 343 से 351 तक) एवं 8वीं अनुसूची में देश की 18 प्रमुख बोलियों के अन्तर्गत स्थान दिया गया है। परिनिष्ठित हिन्दी, मानक हिन्दी या व्यावहारिक हिन्दी के रूप में व्यवहृत होने वाली यही हिन्दी आज देश के (लगभग) 42 प्रतिशत लोगों की मातृभाषा है, साथ ही 30 प्रतिशत अन्य ऐसे लोग भी हैं, जिन्हें इसका व्यावहारिक ज्ञान है। इसी कारण यह देश की प्रमुखतम सम्पर्क भाषा है।

'हिन्दी भाषा' का उद्‌भव/उत्पत्ति और विकास

हिन्दी भाषा पूर्णतया वियोगात्मक भाषा है। अपभ्रंश के उत्तरार्द्ध काल में इसका लगभग 40 प्रतिशत स्वरूप स्पष्ट हो गया था, लेकिन एक स्वतन्त्र भाषा के रूप में इसकी पहचान लगभग 1000 ई.के आस-पास स्थापित होती है। तब से अद्यावधि तक यह विकास के पथ पर निरन्तर गतिशील है। हिंदी भाषा के उद्‌भव और विकास का इतिहास तीन भागों में बांटा जा सकता है-

आदिकाल (1000 से 1500 ई.तक)

हिन्दी भाषा का आदिकाल राजनीतिक दृष्टि से अस्थिरता का काल कहा जा सकता है। सर्वत्र मत्स्यन्याय की परम्परा व्याप्त थी। जर, जोरू और जमीन तथा कथित अभिमान के प्रणेता इन लोगों को पशुवत् हिंसक बना रहे थे। इस विनाशलीला से जहाँ कुछ लोग उत्साहित होते थे, वहीं बहुत-से लोग विक्षुब्ध भी। कुछेक ने इन विसंगतियों से स्वयं को मुक्त रखा। इसलिए भोग एवं योग अपूर्व समन्वय इस युग की रचनाओं में, दृष्टिगत होता है। प्रसंगानुकूल-राजाश्रय,

धर्माश्रय में सृजित होने वाली रचनाओं के लिए डिंगल, पिंगल, दक्खिनी, अवधी, ब्रज प्रभृत्ति विविध भाषाएँ, माध्यम भाषा के रूप में अपनायी गयीं। इस अवधि में सृजित साहित्य जो अभी तक उपलब्ध हुआ है वह मुख्य रूप में राजस्थान, उत्तरप्रदेश, बिहार, पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र और कर्नाटक में लिखा गया है। प्रारम्भिक व्याकरण हेमचन्द्र के द्वारा लिखा गया, जिसका नाम था–शब्दानुशासन या सिद्ध हेम व्याकरण। इस युग में विकास की दृष्टि से हिन्दी की निम्न ध्वनिगत एवं रूपगत विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं–

- अपभ्रंश में 8 स्वर थे–अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए तथा ऐ। ये मूल स्वर थे। हिन्दी में नए स्वर विकसित हुए–ऐ तथा और इनका उच्चारण क्रमशः अ ए तथा ओ–रूप में होता था। इन्हें संयुक्त स्वर कहा गया।
- अपभ्रंश में ड़ु और ढ़ व्यंजन नहीं थे, जो कि हिन्दी में प्रचलित हुए।
- न्ह, ल्ह, यह जैसे–संयुक्त व्यंजन अपने पूर्व व्यंजन के महाप्राण के रूप में प्रचलित हो, मूल व्यंजन बन गए।
- सहायक क्रियाओं एवं उपसर्गों के अलग प्रयोग से हिन्दी की मूल विशिष्टता– वियोगात्मकता, इसके प्रारम्भिक काल में ही प्रभावी दृष्टिगत होने लगीकाल।
- अपेक्षाकृत कम होते हुए नपुंसक लिंग शब्द धीरे–धीरे समाप्त हो गए।
- वाक्य–रचना का स्वरूप सुनिश्चित हो गया।
- संस्कृत के शब्दों का प्रयोग धीरे–धीरे बढ़ा तथा अरबी, फारसी, तुर्की एवं पश्तो के शब्द भी प्रचुर संख्या में अपनाए गए।

मध्यकाल (1501 से 1800 ई. तक)

यह काल, हिन्दी भाषा और साहित्य की उपलब्धियों को देखते हुए उसका स्वर्णकाल कहा जा सकता है। राजनीतिक स्थिरता, शान्तिपूर्ण वातावरण एवं कलात्मक उत्कर्ष ने हिन्दी भाषा एवं साहित्य के विकास में अभूतपूर्व योगदान दिया, यद्यपि संस्कृत अब भी पाण्डित्य की प्रदर्शिका थी, किन्तु प्रतिभाशाली एवं स्वाभिमानी सन्तों एवं भक्तों ने लोक बोलियों (विशेष रूप से ब्रज और अवधी) को अपनाकर उसे भाषा के स्तर तक पहुँचा दिया। कृष्ण भक्तों एवं रामभक्तों, विशेषकर सूरदास और तुलसीदास के सुयोग से विकसित इन दोनों बोलियों ने अपनी रचनाओं द्वारा हिन्दी साहित्य एवं शब्दकोश की प्रभूत श्रीवृद्धि की।

- फारसी भाषा में सम्पर्क के कारण हिन्दी में पाँच नयी ध्वनियाँ प्रचलित हुई- क, ख, ग, ज तथा फ।
- अ से होने वाले शब्दांत में अ का उच्चारण समाप्त होने लगा। जैसे-अर्थात् सम्राट्, तथागत् आदि।
- हिन्दी का व्याकरणिक स्वरूप भी लगभग सुनिश्चित हो गया। अपभ्रंश रूप या तो प्रचलन में समाप्त हो गये अथवा हिन्दी के अपने बन गये।
- मुसलमानों से आत्मीयतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित होने के कारण उनकी विविध भाषाओं-अरबी, फारसी, तुर्की, पश्तो आदि के लगभग 6000 शब्द हिन्दी में अपना लिए गए।
- हिन्दी भाषा की वियोगितात्मकता लगभग पूरी हो गयी और परसर्ग तथा क्रियाओं आदि का अधिक से अधिक स्वतन्त्र प्रयोग होने लगा।
- सूरदास एवं तुलसीदास के साथ-साथ रीतिकालीन आचार्यों के कारण जहाँ हिन्दी में प्रचुर मात्रा में तत्सम शब्द सम्मिलित एवं प्रचलित हुए वहीं सन्त, सूफियों या मुक्तक परम्परा के रचनाकारों के प्रभाव से तद्भव एवं देशी तथा देशज शब्दों का भी प्रचुर प्रयोग हुआ।
- व्यापारिक उद्देश्य से भारत आने वाली विभिन्न यूरोपीय जातियों से सम्पर्क के कारण उनकी भाषाओं-पुर्तगाली, स्पेनिश, डच, फ्रेंच तथा अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग प्रायः हिन्दी के अपने व्याकरण के अनुसार प्रचुर मात्रा में होने लगा।

आधुनिक काल (1801 ई. से आज तक)

इस अवधि को खड़ी बोली हिन्दी का काल कहा जा सकता है। साहित्यिक दृष्टि से ब्रज भाषा और अवधी एक तरफ जनमानस से दूर होकर विशिष्ट वर्ग की भाषा बन गयी, तो दूसरी तरफ हिन्दी प्रदेश पर। अधिकार करने वाले अंग्रेजों ने अपनी प्रशासनिक गतिविधियों की सुकरता हेतु 1800 ई.से। ही खड़ी बोली को संरक्षण प्रदान करते हुए अपना लिया। यद्यपि साहित्यिक क्षेत्र में कुछ। दिनों तक खड़ी बोली गद्यविधा और ब्रजभाषा पद्य-विधा का माध्यम भाषा न रही, लेकिन धीरे-धीरे राष्ट्रीय चेतना की व्यापकता, राजनीतिक घटनाओं, सामाजिक जागरण और प्रेस के अस्तित्त्व में आने के कारण खड़ी बोली साहित्यिक सजन की एकमात्रा भाषा बन गयी। फोर्ट विलियम कॉलेज के भाषा विभाग के अध्यक्ष गिलक्राइस्ट ने खड़ी बोली हिन्दी के विकास में बंग-भंग के

परिणामस्वरूप उत्पन्न हुए 1905 ई.के स्वदेशी आन्दोलन की रचनात्मक भूमिका को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता। अहिन्दी भाषा-भाषी के क्षेत्र के विशिष्ट जन प्रतिनिधियों ने भी खड़ी बोली को एक स्वर से स्वदेशी (सम्पर्क) भाषा के रूप में स्वीकार किया, फलतः हिन्दी के विद्वानों एवं रचनाकारों के समक्ष उसे एक विशिष्ट भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की चुनौती उपस्थित हुई। इसे इन्होंने पूरे मनोयोग से स्वीकार कर हिन्दी से जुड़ी राष्ट्रीय अपेक्षाओं की पूर्ति कर दिखाया। इस दृष्टि से आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का नाम अग्रगण्य है, जिन्होंने खड़ी बोली हिन्दी एवं उसमें (उसके माध्यम से) लिखी जाने वाली रचनाओं का परिष्करण एवं परिमार्जन करके छायावाद के आगमन तक उसे हर दृष्टि से सक्षम भाषा बनने का सुयोग प्रस्तुत किया।

- कचहरी में उर्दू भाषा और फारसी लिपि के प्रचलन के कारण 1947 ई. तक क, ख, ग, ज और फ वर्ण तो प्रचलन में रहे, किन्तु धीरे-धीरे क, ख, 7,-क, ख, ग के रूप में प्रयुक्त होने लगे, पर ज और फ प्रचलन में अभी भी बने हुए हैं।
- अंग्रेजी के प्रभाव से उसके '0' वर्ण के लिए एक नयी ध्वनि 'ऑ' प्रचलित हुई। जैसे-कॉलेज, डॉक्टर, कॉलगेट आदि। (ऑ का उच्चारण ओ एवं आ के मध्य करने की चेष्टा की जाती है।)
- अंग्रेजी के प्रभाव से एक नया संयुक्त व्यंजन 'ड्र' भी प्रचलन में आया है, जैसे-ड्रिप, ड्रग आदि।
- शब्दांत में 'अ' का उच्चारण लगभग समाप्त हो चुका है, जैसे–राम, श्याम आदि।।

शिक्षा, वाणिज्य, आकाशवाणी, प्रेस तथा दूरदर्शन के प्रभाव से व्यावहारिक धरातल पर हिन्दी का व्याकरणिक स्वरूप लगभग सुनिश्चित हो चुका है, फिर भी वर्तमान में इसके कम-से-कम तीन स्वरूप प्रचलित हैं, जिसे निम्नवत् देखा जा सकता है-

- हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र के साहित्यकारों द्वारा प्रयुक्त होने वाली साहित्यक हिन्दी।
- हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र के जनसामान्य या विशिष्ट लोगों द्वारा प्रयुक्त होने वाली हिन्दी। इसके भी कम से कम तीन स्वरूप प्रचलन में है-शिष्ट लोगों की से बातचीत में प्रयुक्त होने वाली हिन्दी, जिसमें आरम्भ से अन्त तक संयम एवं अनुशासन का पुट रहता है, पारिवारिक धरातल पर प्रयुक्त

होने वाली हिन्दी, जिसमें थोड़ी उन्मुक्तता और थोड़ा अनुशासन तथा संयम का पुट रहता है एवं मित्रों तथा समवयस्कों के मध्य बातचीत में पूर्ण उन्मुक्तता के साथ प्रयुक्त होने वाली हिन्दी, जिसमें अनुशासन या संयम का सर्वथा अभाव होता शासन, विज्ञान, उद्योग, व्यापार, चिकित्सा तथा अन्य प्रमुख क्षेत्रों में माध्यम भाषा: के रूप में प्रयुक्त होने के कारण हिन्दी भाषा में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों का समन्वय हो रहा है।

- ये शब्द विविध माध्यमों से प्राप्त हो रहे हैं, जैसे-ग्रहण, निर्माण, अनकलन (तकनीक, अकादमी, डीजल) और सचर्यन (निस्तन्त्री)।

अन्य शब्दों में हिन्दी-व्युत्पत्ति और अर्थ

- 'हिन्दी' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में निम्नलिखित मत प्रचलित है- (i) परम्परावादी संस्कृत पण्डितों के अनुसार, हिन्दी-हिन् (नष्ट करना) . दु (दुष्ट)। अर्थात् हिन्दू का अर्थ है, जो दुष्टों का विनाश करें (हिनस्ति दुष्टान्) (ii) शब्द कल्पद्रुम के अनुसार, 'हिन्दू' शब्द 'हीन. दुष. डु' से बना है, जिसका अर्थ है 'हीनों को दूषित करने वाला (हीन दूषयति)। (नोट-ये दोनों मत कल्पना प्रसूत है।)
- डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार 'हिन्दू' शब्द का प्राचीनतम प्रयोग 7वीं सदी के अन्तिम चरण के ग्रन्थ 'निशीथचूर्णि' में प्रथम बार मिला है। 'हिन्दू' शब्द फारसी है, जो संस्कृत शब्द सिन्धु का फारसी रूपान्तरण है। 'सिन्धु' शब्द का प्रथम प्रयोग ऋग्वेद में सामान्य रूप से नदी (सप्त सिंधव:), नदी विशेष तथा नदी के आस-पास के प्रदेश के लिए हुआ है।
- 500 ई.पू. के आस-पास दारा प्रथम के काल में सिन्धु नदी का स्थानीय प्रदेश ईरानी लोगों के हाथों में था।
- संस्कृत के 'सिन्धु' का ईरानी में हिन्दू हो गया जो सिन्धु नहीं के आस-पास के प्रदेश के अर्थ में प्रयुक्त हुआ।
- कालान्तर में आर्थिक विकास के साथ हिन्दू' का अर्थ 'भारत' हो गया। इसमें 'इ' पर बलाघात के कारण अन्त्य 'उ' का लोप हो गया। (हिन्दू-हिन्द)।
- 'हिन्द' शब्द में विशेषणार्थक प्रत्यय 'ईक' जोड़ने से 'हिन्दीक' शब्द बना जिसका अर्थ है 'हिन्द का' कालान्तर में 'क' लुप्त हो जाने से 'हिन्दी' शब्द बना।

- 'हिन्दी व्याकरण की दृष्टि से विशेषण है, जिसका मूल अर्थ (सं.)' सिन्धु (अवे.) हिन्दु/हिन्द/हिन्दीक/हिन्दी।
- ग्रीक लोगों ने सिन्धु नदी को 'इन्दोस', यहाँ के निवासियों को 'इन्दोई' तथा प्रदेश को 'इन्दिके' अथवा 'इन्दिका' नाम से सम्बोधित किया। 'इन्दिका' शब्द अंग्रेजी आदि में 'इण्डिया' हो गया।
- किसी भी प्राचीन भारतीय आर्यभाषा में हिन्दी' का प्रयोग नहीं मिलता है। केवल कालकाचार्य द्वारा लिखित जैन महाराष्ट्री में 'हिन्दुग' शब्द मिलता है। (जैसे-'सूरिणा भणियम् रामाणो जेण हिन्दुग देसम् बच्चामो')।

भाषा के अर्थ में 'हिन्दी शब्द' का प्रयोग व विकास

- भाषा के अर्थ में 'हिन्दी' का प्रयोग फारस और अरब से होता है।
- ईरान के बादशाह नौशेरवाँ (531-579 ई.) ने अपने दरबारी हकीम बाजरोया को भारतीय ग्रन्थ 'पंचतन्त्र' का अनुवाद करने के लिए नियुक्त किया। बाजरोया ने 'कर्कटक और दमनक' के आधार पर अपने अनुवाद का नाम 'कलीला व दिमना' रखा।
- 'कलीला व दिमना' की भूमिका नौशेरवाँ के मन्त्री बुजर्च मिहर ने लिखी। भूमिका में कहा गया कि यह अनुवाद 'जबाने-हिन्दी' से किया गया है।
- अरबी-फारसी में 'जबाने-हिन्दी' शब्द का प्रयोग सम्भवत: भारत की समस्त भाषाओं संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश के लिए मिलता है।
- भारत के फारसी कवि औफी ने सर्वप्रथम 1228 ई.में 'हिन्दवी' शब्द का प्रयोग समस्त भारतीय भाषाओं के लिए न करके भारत की (सम्भवत: मध्यदेश की) देशी भाषाओं के लिए किया।
- तैमूरलंग के पोते शरफुद्दीन यज्दी ने 1424 ई.में अपने ग्रन्थ 'जफरनामा' में विदेशों में हिन्दी भाषा' के अर्थ में 'हिन्दी' शब्द का प्रथम प्रयोग किया।
- डॉ. धीरेन्द्र वर्मा द्वारा सम्पादित 'हिन्दी साहित्य कोश' (भाग-1) के अनुसार, 13-14वीं शती में देशी भाषा को 'हिन्दी' या 'हिन्दकी' या 'हिन्दुई' नाम देने में अबुल हसन् या अमीर खुसरो का नाम सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है।'
- डॉ. भोलानाथ तिवारी एवं उदय नारायण तिवारी ने भाषा के अर्थ में खुसरो द्वारा प्रयुक्त 'हिन्दी' को संदिग्ध माना है। उक्त दोनों विद्वानों ने हिन्दी' शब्द के प्रयोग को 'भारतीय मुसलमान' के अर्थ में रेखांकित किया है।

- डॉ. भोलानाथ तिवारी ने लिखा है, 'खुसरो ने 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग भारतीय मुसलमानों के लिए किया है और 'हिन्दवी' शब्द का 'मध्यदेशीय भाषा' के लिए यह 'हिन्दवी' शब्द वस्तुतः 'हिन्दुवी' या 'हिन्दुई' है। हिन्दू. ई = अर्थात् हिन्दुओं की भाषा। 'हिन्दुवी' शब्द के प्रयोग के कुछ दिन बाद 'हिन्दी' (अर्थात् भारतीय मुसलमानों) की भाषा के लिए कदाचित् 'हिन्दी शब्द चल पड़ा।'
- हिन्दी कवि नूर मुहम्मद ने लिखा है-"हिन्दू मग पर पाँव न राखौ। का जो बहुतै हिन्दी भाख्यौ।।'
- 18वीं सदी तक 'हिन्दी' मुसलमानों की भाषा न रहकर हिन्दुओं की भाषा की ओर झुक रहा था।
- 19वीं सदी मध्य के पूर्व तक 'हिन्दी' का प्रयोग 'उर्दू' या 'रेख्ता' के समानार्थी रूप में चल रहा था।
- 'उर्दू' मूलतः तुर्की शब्द है, जिसका अर्थ है 'शाही शिविर' या 'खेमा'।
- डॉ. ग्राहम बेल तथा डॉ. ताराचन्द आदि का कहना है कि 'उर्दू' का भाषा के निश्चित अर्थ में सबसे पुराना प्रयोग मुसहफी में मिलता है-"खुदा रक्खे जबाँ हमने सुनी है, मीर-वो-मिरजा की, कहें किस मुँह से हम मुसहफी 'उर्दू' हमारी।"
- प्रो. आजाद ने 'आबे हयात' में ब्रजभाषा से उर्द का जन्म माना है।
- 'रेख्ता' का फारसी में अर्थ 'गिरा हुआ' या 'गिराकर बनाया हुआ ढेर' है।।
- भारत में 'रेख्ता' शब्द का प्रयोग पहले छंद और संगीत के क्षेत्र में हुआ।
- 'रेख्ता' नाम 18वीं सदी से प्रारम्भ होकर लगभग 19वीं सदी के मध्य तक उर्दू के लिए चलता रहा।
- हिन्दी का नवीन अर्थ में लिखित प्रयोग सर्वप्रथम कैप्टिन टेलर ने 1812 ई.में फोर्ट विलियम कॉलेज के वार्षिक विवरण में किया।
- वर्तमान में हिन्दी' शब्द मुख्यतः निम्न अर्थों में प्रयुक्त हो रहा है- (1) हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में 'हिन्दी' का अर्थ है-हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड, दिल्ली, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा बिहार की भाषा। इस पूरे क्षेत्र को 'हिन्दी प्रदेश' कहते हैं। (2) वर्तमान भारतीय साहित्य में 'हिन्दी' शब्द भारतीय संघ की राजभाषा (संघ की राजभाषा देवनागरी लिपि में हिन्दी होगी-भारतीय संविधान, अनुच्छेद 343) तथा राष्ट्रभाषा के नाम का द्योतक है।

हिन्दी भाषा के विविध रूप

हम अपने भावों और विचारों को कभी-कभी लिखकर दूसरों तक पहुँचाते हैं जब श्रोता सामने होता है तो उससे बोलकर हम अपनी बात कहते हैं, किन्तु जब सामने नहीं होता तो हम लिखकर उस तक अपनी बात पहुँचाते हैं। इसी आधार पर भाषा के दो रूप हो जाते हैं- (i) उच्चारित या मौखिक भाषा, तथा (ii) लिखित भाषा।

उच्चारित या मौखिक भाषा

'उच्चारित या मौखिक भाषा' भाषा का बोलचाल का रूप है। उच्चारित भाषा का इतिहास मनुष्य के जन्म के साथ ही जुड़ा हुआ है, जब से मनुष्य ने जन्म लिया होगा, तभी से उसने बोलना आरम्भ कर दिया होगा। उच्चारित भाषा की आधारभूत इकाई 'ध्वनि' है। हर भाषा में अनेक ध्वनियाँ होती हैं। इन्हें ध्वनियों के परस्पर संयोग से तरह-तरह के शब्द बनते हैं, जो वाक्यों में प्रयुक्त किये जाते हैं। 'उच्चारित भाषा' वास्तव में भाषा का अस्थाई एवं क्षणिक रूप होता है। उच्चारित भाषा का प्रयोग प्रायः तभी किया जाता है, जब श्रोता वक्ता के सामने होता है।

लिखित भाषा

उच्चारित भाषा की तुलना में लिखित भाषा रूप का इतिहास उतना पुराना नहीं है, जब मनुष्य को यह अनुभव हुआ होगा कि वह अपने भावों और विचारों को स्थायित्व प्रदान करें या उन लोगों तक पहुँचाने की कोशिश करें जो उसके सामने नहीं है तो उसने लिखित भाषा चिह्नों का सहारा लिया होगा। इसी आवश्यकता को ध्यान में रखकर प्रत्येक उच्चारित ध्वनि के लिए तरह-तरह की आकृति वाले लिखित चिह्नों की रचना की गई, जिनकों 'लिपि-चिह्न' या 'वर्ण' कहा जाता है, अतः यहाँ उच्चारित आधारभूत इकाई 'वर्ण' है। लिखित -भाषा, भाषा का स्थायी रूप है, जिसमें हम अपने भाव- विचारों को आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रख सकते हैं।

यहाँ यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि जिन लोगों को लिखना-पढ़ना नहीं आता, इसका यह अर्थ नहीं है कि उन्हें भाषा नहीं आती। वास्तव में हर व्यक्ति जन्म से ही अपनी मातृभाषा को सीख लेता है। कुछ बिना पढ़े-लिखे लोग

ऐसे भी होते हैं, जो अनेक भाषाएँ बोल और समझ सकते हैं और उन्हें भाषाओं का जानकार माना जाता है, क्योंकि भाषा का मूल तथा आदि रूप तो 'उच्चारित' ही है, लिखित रूप तो बहुत बाद में विकसित हुआ है।

हिंदी भाषा के उद्‌भव और विकास का इतिहास

भाषा-विज्ञान का अध्ययन क्षेत्र अत्यधिक व्यापक हो गया है और इसके आरंभ काल से लेकर आज तक हिंदी भाषा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने प्रर्याप्त प्रकाश डाला है, तथापि हिंदी भाषा के उद्‌भव की कहानी आज भी हिंदी भाषा विज्ञान के लिए रहस्यमयी बनी हुई है। संसार की कौन सी भाषा आदि भाषा थी और उससे किन-किन हिंदी भाषाओं का किन-किन रूपों में विकास हुआ यह आज भी अनिर्णीत है। अनुमान के आधार पर हिंदी भाषा के उद्‌भव के सम्बन्ध में हिंदी भाषा वैज्ञानिकों ने कुछ प्रारंभिक प्रयास किए हैं और वे ही आज हिंदी भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन के आधार बने हुए हैं। हिंदी भाषा किसी एक व्यक्ति से उत्पन्न नहीं हुई है, वरन् यह एक विशाल जन समूह की वाणी का सामान्य प्रतिफलन है। इस प्रकार हिंदी भाषा समाज की वाणी का समवायी प्रारूप है। ऐसी स्थिति में किसी भी हिंदी भाषा का अविर्भाव काल को या उद्‌भव को एक निश्चित सीमा रेखा पर नहीं माना जा सकता। यही बात हिन्दी के पक्ष में भी सत्य है। हिंदी भाषा के उद्‌भव और विकास का इतिहास तीन भागों में बांटा जा सकता है, जिनके बारे में हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं।

1. आदिकाल (1000 ई.से 1500 ई.तक)
2. मध्यकाल (1501 ई.से 1800 ई.तक)
3. आधुनिक काल (1801 ई.से आज तक)

हिंदी भाषा पर आधुनिक हिंदी भाषा विज्ञान व्यापक अध्ययन प्रस्तुत करता है। ऐतिहासिक, राजनीतिक, भौगोलिक और सामाजिक कारणों से जब हिंदी भाषाएँ एक-दूसरे के सम्पर्क में आती हैं तो उनमें एक-दूसरे के बीच आदान-प्रदान के साथ एक -दूसरे को प्रभावित करने और एक-दूसरे से प्रभावित होने की प्रक्रिया भी चलती रहती है।

हिन्दी का इतिहास वस्तुतः वैदिक काल से प्रारंभ होता है। उससे पहले आर्यभाषा भाषा का स्वरूप क्या था इसका कोई लिखित प्रमाण नहीं मिलता। साथ ही भारत में आर्यों का आगमन किस काल से हुआ इसका भी कोई प्रमाण

नहीं मिलता। साधारणतया यह माना जाता है कि 2000 से 1500 ई.पूर्व भारत के उत्तर पश्चिम सीमांत प्रदेश में आर्यों के दल आने लगे। यहीं पहले से बसी हुई अनार्य जातियों को परास्त कर आर्यों ने सप्त सिंधु, जिसे हम आधुनिक पंजाब के नाम से जानते हैं, देश में आधिपत्य स्थापित कर लिया। यहीं से वे धीरे-धीरे पूर्व की ओर बढ़ते गए और मध्यदेश, काशी, कोशल, मगध, विदेह, अंग, बंग तथा कामरूप में स्थानीय अनार्य जातियों को पराभूत करके उन्होंने वहाँ अपना राज्य स्थापित कर लिया। इस प्रकार समस्त उत्तरापथ में अपना राज्य स्थापित करने के बाद आर्य संस्कृति दक्षिणापथ की ओर अग्रसरित हुई और युनानी राजदूत मेगास्थनीज के भारत आने तक आर्य संस्कृति सुदूर दक्षिण में फैल चुकी थी। आर्यों की विजय केवल राजनीतिक विजय मात्रा नहीं थी। वे अपने साथ सुविकसित हिंदी भाषा एवं यज्ञ परायण संस्कृति भी लाए थे। उनकी हिंदी भाषा एवं संस्कृति भारत में प्रसार पाने लगी, किन्तु स्थानीय अनार्य जातियों का प्रभाव भी उस पर पड़ने लगा। मोहन जोदड़ो एवं हड़प्पा की खुदाइयों से सिन्धु घाटी की जो सभ्यता प्रकाश में आई है, उससे स्पष्ट है कि यायावर पशुपालक आर्यों के आगमन से पूर्व सिन्धु घाटी सभ्यता का बहुत अधिक विकास हो चुका था, अतः यह सम्भव है आर्यों की हिंदी भाषा, संस्कृति एवं धार्मिक विचारों पर अनार्य जाति की संस्कृति एवं संपर्क का पर्याप्त प्रभाव पड़ा होगा। अनार्य जातियों के योगदान के कथन से तात्पर्य यह नहीं है कि हिन्दी अथवा प्राकृतों में जो कुछ है वह आर्यों की ही हिंदी भाषाओं से लिया गया है अथवा आर्यों की सारी संपत्ति प्राकृतों और हिंदी को प्राप्त हो गयी। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि युग-युग की हिंदी भाषा में यहाँ तक कि वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत में भी बहुत से अनार्य तत्त्व सम्मिलित थे। भारत में तथा भारत के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक अनार्य जातियाँ रहती थीं जिनमें निग्राटु, किरात, ऑस्ट्रिक या निषाद तथा द्रविड़ (दस्यु) का प्रसार बहुत व्यापक था। निग्रोटु अनार्य जाति का आगमन अफ्रिका से अवश्य हुआ, किन्तु वे समुद्री तट के आस-पास के क्षेत्रों में रहे और वहीं से दक्षिण पूर्वी द्वीपों की ओर निकल गए। मध्यदेश के लोगों से उनका संपर्क नहीं हो पाया। वैदिक साहित्य में इनका कोई प्रमाण नहीं मिलता। किरात पहाड़ी लोग थे, जिनके वंशज आज भी हिमालय प्रदेश के पश्चिम से पूर्व तक फैले हुए हैं। इन लोगों का आर्यों के साथ संपर्क हुआ।

फलस्वरूप इनके बीच संस्कृतियों और हिंदी भाषाओं का आदान-प्रदान भी हुआ। यक्ष, गन्धर्व, सिद्ध और किन्नर आदि पहाड़ी जातियों की संस्कृति

परवर्ती आर्य साहित्य में भरपूर मिलती है। इन्हीं के देवताओं, इनकी पूजा विधि, विश्वासों अन्धविश्वासों के साथ-साथ, मणियों, पर्वतीय फल-फूलों, पशु-पक्षी, उपजों के नाम इन जातियों से ग्रहण किए गए। आग्नेय या निषाद जातियाँ पंजाब के पूर्व में बसी थीं। इनकी संस्कृति ग्रामीण थी और कृषि इनका प्रधान कर्म था। आर्यों ने इन्हीं से कृषि कर्म सीखा और उस कर्म में प्रगति की, क्योंकि अधिकांश आर्य जातियाँ मध्य एशिया के पहाड़ी प्रदेश में रहती आ रही थीं। नावें चलाना और मछली पकड़ना भी इन निषाद जातियों का अपेक्षा आग्नेय 'हाथी' का जो इतना अधिक महत्व रहा उसका भी यही कारण है। वर्तमान समय में भी राजस्थान, मध्यप्रदेश, बिहार, बंगाल, ओड़िशा, असम और उत्तरप्रदेश के पहाड़ी इलाकों में मुंडा, सांथाल, कोल, हो, शबर, खासी, मानख्मेर कुंकू, भूमिज आदि अनेक आदिम जातियाँ फैली हुई हैं, जिसकी हिंदी भाषा, बोली और शब्दावली का तलदेश की बोली से सीधा संपर्क रहा। द्रविड़ कुल की जातियाँ सांस्कृतिक दृष्टि से सबसे अधिक उन्नत रहीं।

फलस्वरूप भारत में आर्यों का प्रसार सरलतया संपन्न नहीं हुआ। उनको अनेक प्राकृतिक एवं मनुष्य कृत बाधाओं एवं विरोधों का सामना करना पड़ा। मोहन जोदड़ो, हड़प्पा आदि की खुदाइयों और बलोचिस्तान में प्राप्त ब्राहुई नाम की द्रविड़ हिंदी भाषा के अवशेषों को देखकर इतिहासकारों का यह निश्चित मत है कि सिन्धु सौविर आदि प्रदेशों में द्रविड़ जातियों का प्राबल्य था, जिनसे आर्यों को कठिन संघर्ष करना पड़ा। प्रसार के इस कार्य में अनेक शताब्दियाँ लग गई, इस काल क्रम में हिंदी भाषा भी स्थिर नहीं रह सकी, उसके रूप में परिवर्तन विवर्तन होता गया। जैसे–भारतीय आर्य हिंदी भाषा में टवर्गीय ध्वनियाँ अनुकरणात्मक शब्दावली, प्रत्ययों, कर्मवाच्य में अतिरिक्त क्रिया, वाक्य योजना के कुछ तत्त्व द्रविड़ से आए है।। इस प्रकार इन द्रविड़ संस्कृति, जाति -जनजातियों की संस्कृतियों के अलावा समय-समय पर शक, हुण, मंगोल, तुर्क, चीनी, अरब, शान आदि अनेक जातियाँ यहाँ आई और यहाँ की सभ्यता और संस्कृति में घुलमिल गई। इन सबने भारतीय हिंदी भाषाओं (हिंदी) के निर्माण और विकास में अपना योगदान दिया।

हिन्दी भाषा के साहित्य का विभाजन या वर्गीकरण–

1. आदिकाल-वीर गाथा काल।
2. भक्ति काल-पूर्व मध्यकाल।
3. रीति काल-उत्तर मध्य काल।

4. आधुनिक काल-भारतेंदु युग, द्विवेदी युग, छायावादी युग।

भारतीय आर्य भाषाओं का वर्गीकरण

विकास क्रम की दृष्टि से भारतीय आर्य भाषा को तीन कालों में विभाजित किया गया है। भारतीय आर्य भाषा समूह को काल-क्रम की दृष्टि से निम्न भागों में बांटा (वर्गीकृत किया) गया है -

1. प्राचीन भारतीय आर्य भाषा (2000 ई.पू. से 500 ई.पू. तक)
2. वैदिक संस्कृत (2000 ई.पू. से 800 ई.पू. तक)
3. संस्कृत अथवा लौकिक संस्कृत (800 ई.पू. से 500 ई.पू. तक)
4. मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा (500 ई.पू. से 1000 ई.तक) यद्यपि इससे पहले भी प्राकृतें थी।
5. पालि (500 ई.पू. से 1 ई.तक)
6. प्राकृत (1 ई.से 500 ई.तक)
7. अपभ्रंश (500 ई.से 1000 ई.तक)
8. आधुनिक भारतीय आर्यभाषा (1000 ई.से अब तक) (हिंदी और हिंदीतर बंगला, गुजराती, मराठी, सिंधी, पंजाबी आदि।)

प्रारम्भिक अवस्था में मानव ने अपने भावों-विचारों को अपने अंग संकेतों से प्रषित किया होगा, बाद में इसमें जब कठिनाई आने लगी तो सभी मनुष्यों ने सामाजिक समझौते के आधार पर विभिन्न भावों, विचारों और पदार्थों के लिए अनेक ध्वन्यात्मक संकेत निश्चित कर लिए। यह कार्य सभी मनुष्यों ने एकत्र होकर विचार विनिमय द्वारा किया। इस प्रकार भाषा का क्रमिक गठन हुआ और एक सामाजिक पृष्ठभूमि में सांकेतिक संस्था द्वारा भाषा की उत्पत्ति हुई।

प्रत्येक भाषा लोगों की आत्मा की निशानी और शक्ति है, जो स्वाभाविक रूप से इसे उन्हें अभिव्यक्त करती है। इसलिए प्रत्येक के अपने विचार-स्वभाव, जीवन, ज्ञान और अनुभव व्यक्त करना का तरीका विकसित होता है। इसलिए किसी राष्ट्र के लिए या मानव समूह- का सबसे बड़ा मूल्य है, अपनी भाषा को संरक्षित करना और इसे एक मजबूत और जीवित संस्कृति का साधन बनाना। एक राष्ट्र, जाति या एक व्यक्ति, जो अपनी भाषा खो देता है, अपना संपूर्ण जीवन या उसका वास्तविक जीवन नहीं जी सकता है।

भारतीय उपमहाद्वीप में, संस्कृत के उद्‌भव के बाद, कई नई भाषाएं समय के साथ विकसित हुई और बाद के पूर्ण उन्मूलन के बिंदु तक उनकी स्रोत भाषा

को बदल दिया गया।कोई भी सिद्धांत या संभावना इस बात की जानकारी प्रदान नहीं करता है कि संस्कृत के लिए स्रोत भाषा एशिया माइनर से नहीं, बल्कि उपमहाद्वीप के भीतर से आई है और यह कि संस्कृत का एक पुराना संस्करण ही स्रोत भाषा थी। वैदिक लोगों की उत्पत्ति और पृष्ठभूमि के बारे में इतिहासकारों के बीच काफी विवाद रहा है।न्यूजीलैंड के ऑकलैंड विश्वविद्यालय की विकासवादी जीवविज्ञानी क्विनटिन एटकिंसन् ने अपने शोध के दौरान पाया कि इंडो-यूरोपीयन समूह की भाषाएँ पश्चिमी एशिया के एक ही इलाके में पैदा हुई हैं। उनके अनुसार ऐसा करीब 8000 से 9500 हजार साल पहले हुआ था। शोध के दौरान उन्होंने करीब 100 से ज्यादा प्राचीन और समकालीन भाषाओं का कंप्यूटर के माध्यम से अध्यन किया और पाया कि यह सभी भाषाएँ अनातोलिया के इलाकों में पैदा हुई हैं।

सिंधु सभ्यता मूल रूप से एक भारतीय मामला था, जिस पर बाहर की दुनिया का कम या कोई प्रभाव नहीं था और वे शायद वैदिक लोगों के पहले के चचेरे भाई थे, कुछ द्रविड़ तत्त्वों के साथ पुरानी संस्कृत के रूढ़िवादी रूप को भाषा के रूप में प्रयोग करते थे और कृषि, धातु विज्ञान, शहरी नियोजन, व्यापार और वाणिज्य के विशेषज्ञ थे।सभ्यता शायद 6000 ईसा पूर्व के आस-पास शुरू हुई, क्योंकि ईरान के सीमाओं तक, उपमहाद्वीप के विशाल क्षेत्र में खेती और खाद्य एकत्रीकरण समुदाय फैला हुआ है। इसने दो चरणों में अपना चरम स्थान प्राप्त किया। पहले चरण में, शायद लगभग 4500 ईसा पूर्व, यह छोटे गाँव की बस्तियों में विकसित हुआ और फिर 3500 ईसा पूर्व या उससे भी पहले सुव्यवस्थित और समृद्ध शहरी शहरों में विकसित हुआ। सिंधु लोग संभवतः सरस्वती नदी के एक क्षेत्र में रहते थे, जो अब विलुप्त हो चुका है, इससे पहले कि वे अन्य क्षेत्रों में चले गए, जलवायु परिवर्तन से मजबूर हो गए।

संभवतः 2500 ईसा पूर्व के आस-पास सिंधु संस्कृति द्वारा वैदिक संस्कृति अपना ली गई और, संस्कृत संचार की प्रमुख भाषा के रूप में, कम से कम समाज के कुलीन और शासक वर्गों के बीच में स्थापित हो चुकी थी। इस समय तक संस्कृत पहले से ही एक पूर्ण विकसित भाषा के रूप में विकसित हो चुकी थी जैसा कि वेदों में पाए गए सबसे पहले के संस्कृत श्लोकों से स्पष्ट होता है।

संस्कृत के प्रत्येक स्वर और व्यंजन में एक विशेष और अविवेकी बल होता है, जो चीजों की प्रकृति और विकास या मानव की पसंद से मौजूद होता

है, ये मूलभूत ध्वनियाँ हैं, जो तांत्रिक द्विजमंत्रों के आधार पर निहित हैं और मंत्र की प्रभावकारिता का गठन करती हैं। मूल भाषा के प्रत्येक स्वर और प्रत्येक व्यंजन के कुछ प्राथमिक अर्थ होते थे, जो इस आवश्यक शक्ति या बल से उत्पन्न हुए थे और अन्य व्युत्पन्न अर्थों के आधार थे। स्वरों के साथ, व्यंजन और किसी भी संयोजन के बिना, स्वरों ने स्वयं कई प्राथमिक जड़ें बनाईं, जिनमें से द्वितीयक जड़ों को अन्य व्यंजन के अतिरिक्त विकसित किया गया था। सभी शब्द इन जड़ों से बने थे।

अशोक के समय में दो तरह की प्राकृत प्रचलित थी–एक पश्चिमी, दूसरी पूर्वी। इनमें से प्रत्येक का गुण-धर्म जुदा-जुदा है–प्रत्येक का लक्षण अलग-अलग है। पश्चिमी प्राकृत का मुख्य भेद शौरसेनी है। वह शूरसेन प्रदेश की भाषा थी। गंगा-यमुना के बीच के देश में और उसके आस पास, उसका प्रचार था। पूर्वी प्राकृत का मुख्य भेद मागधी है। वह उस प्रांत की भाषा थी जो आज कल बिहार कहलाता है। इन दोनों देशों के बीच में एक और भी भाषा प्रचलित थी। वह शौरसेनी और मागधी के मेल से बनी थी और अर्द्ध-मागधी कहलाती थी। सुनते हैं, जैन-तीर्थ कर महावीर इसी अर्द्ध-मागधी में जैन-धर्म का उपदेश देते थे। पुराने जैन ग्रंथ भी इसी भाषा में हैं। अर्द्ध-मागधी की तरह की और भी भाषा प्रचलित थी।

हिंदी की शब्दावली मुख्यत: संस्कृत से ली गई है। अन्य इंडो-आर्यन भाषाओं की तरह हिंदी अपने वर्तमान आकार में 10 वीं शताब्दी के आस-पास आकार लेने लगी, लेकिन 14 वीं शताब्दी से पहले यह सौरासेनी अपभ्रंश से अत्यधिक प्रभावित था। दिलचस्प बात यह है कि सौरासेनी ने पंजाबी को भी जन्म दिया।

सबसे पुरानी हिंदी मिस्टिको–भक्ति काव्य–गोरख नाथ 1150 के पद्य और वेणी, महान नाथ पंथ के शिक्षक और अन्य समकालीन योगी हठ-योग के दर्शन और अभ्यास का उपदेश भी इसी अवधि में दिया गया है, लेकिन उनकी भाषा बहुत बदली हुई है और यह तय करना मुश्किल है कि इनमें से कितनी रचनाएँ वास्तविक हैं। इन कविताओं में शुद्ध जीवन की आवश्यकता, भौतिक समृद्धि से अलगाव और वास्तविक ज्ञान पर जोर दिया गया, जिसने बाद के काल के भक्त कवियों के लिए जमीन तैयार की।

प्राचीन भारतीय आर्यभाषा काल का समय 1500 ईसा पूर्व से लेकर 500 ईसापूर्व तक माना गया है इसमें वेदों, ब्राह्मण ग्रंथो एवं पाणनि की

अष्टाध्यायी की रचना हुई। हिंदुस्तान की वर्तमान संस्कृतोत्पन्न भाषाओं का जन्म कोई 1000 ईसवी के लगभग हुआ।मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा काल 500 ईसा पूर्व से 1000 ईस्वी सन् तक माना जाता है इस समय इस समय लोक भाषा का विकास हुआ और उन्हें पालि (500 ईसा पूर्व से -1 ईसा पूर्व तक) प्राकृत (1 ईसा से 500 ईस्वी तक) अपभ्रंश (500 ईस्वी से 1000 ईस्वी तक) भाषा का नाम दिया गया। अभी तक माना जाता था कि ब्राह्मी लिपि का विकास चौथी से तीसरी सदी ईसा पूर्व में मौर्यों ने किया था, पर भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण के ताजा उत्खनन से पता चला है कि तमिलनाडु और श्रीलंका में यह 6ठी सदी ईसा पूर्व से ही विद्यमान थी। यह लिपि प्राचीन सरस्वती लिपि (सिन्धु लिपि) से निकली, अतः यह पूर्ववर्ती रूप में भारत में पहले से प्रयोग में थी।

सरस्वती लिपि के प्रचलन से हट जाने के बाद प्राकृत भाषा लिखने के लिये ब्रह्मी लिपि प्रचलन में आई। ब्रह्मी लिपि में संस्कृत में ज्यादा कुछ ऐसा नहीं लिखा गया, जो समय की मार झेल सके। भारतीय आचार्यों ने शब्दों की दो स्थितियाँ–सिद्ध एवं असिद्ध दी हैं। इनमें "असिद्ध" शब्द को केवल "शब्द" तथा "सिद्ध" शब्द को "पद" के रूप में परिणत किया जाता है। "सिद्धि" के सुंबत (नाम) एवं तिङंत (क्रिया) तथा "असिद्ध" के कई भेद प्रभेद किए गए हैं। यहाँ तक कि संस्कृत का प्रत्येक शब्द "धातुज" ठहराया गया है। व्याकरण शास्त्र का नामकरण एवं उनकी परिभाषा इसी प्रक्रिया को ध्यान में रख कर की गई है यथा, शब्दानुशसन् (महर्षि पतंजलि एवं आचार्य हेमचंद्र) तथा "व्याक्रियंते विविच्यंते शब्दाः अनेन इति व्याकरणम्" पाश्चात्य विद्वान् धात्वंश को आवश्यक नहीं मानते, वे आधार रूपांशों (base-elements) को नाम एवं आख्यात् दोनों के लिये अलग अलग स्वीकार करते हैं। वस्तुतः बहुत सी भाषाओं के लिये धात्वंश आवश्यक नहीं।

प्राकृत/पाली भाषा में लिखे गये मौर्य सम्राट अशोक के बौद्ध उपदेश आज भी सुरक्षित है, जो शब्द संस्कृत से आ कर प्राकृत में मिल गए हैं वे "तत्सम" शब्द कहलाते हैं और मूल प्राकृत शब्द जो सीधे प्राकृत से आए हैं 'तद्भव' कहलाते हैं। पहले प्रकार के शब्द बिलकुल संस्कृत हैं। दूसरे प्रकार के प्रारंभिक प्राकृत से आए हैं, अथवा यों कहिए कि वे उस प्राकृत या प्राकृत की उस शाखा से आए हैं, जिससे खुद संस्कृत की उत्पत्ति हुई हैं।हिंदी ही पर नहीं, किंतु हिंदुस्तान की प्रायः सभी वर्तमान भाषाओं पर, आज सैकड़ों वर्ष से संस्कृत का

प्रभाव पड़ रहा है। संस्कृत के अनंत शब्द आधुनिक भाषाओं में मिल गए हैं, परंतु उसका प्रभाव सिर्फ वर्तमान भाषाओं के शब्द-समूह पर ही पड़ा है।

500 ई। के आस-पास उत्तर भारत में, अपभ्रंश बोलियाँ प्राकृत से विकसित हुईं। उन्होंने 13 वीं शताब्दी ईस्वी तक एक प्रकार के लिंगुआ फ्रेंका के रूप में कार्य किया और दिल्ली सल्तनत के फारसी शासकों द्वारा हिंदवी के रूप में संदर्भित किया गया, जिन्होंने 1206 से 1526 तक भारत के बड़े-बड़े क्षेत्रों पर शासन किया। हिंदी भाषा अपभ्रंश के आस-पास से बिखर रही थी। 11 वीं शताब्दी ईस्वी, उनमें से अधिकांश 12 वीं तक पूरी तरह से अलग थे, हालांकि कई स्थानों पर अपभ्रंश भाषाएं अभी भी समानांतर में बोली जाती थीं।यह दिल्ली सल्तनत के अधीन था कि फारसी भाषा ने पहले स्थानीय अपभ्रंश बोलियों के साथ मिश्रण करना शुरू किया था, जो बाद में हिंदी और उर्दू भाषा बन गई।

उत्तरी भारत में बोली जाने वाली भाषाएँ, इंडो-ईरानी शाखा के इंडो-आर्यन संस्कृत समूह से पनपी हैं, जो बड़े भारत-यूरोपीय परिवार से संबंधित है। संस्कृत, आज की पूरी तरह से मृत भाषा है, लेकिन संस्कृत और पाली, जो प्राचीन काल से जीवित रहने वाली दो भाषाएँ हैं, आज भी महत्वपूर्ण हैं: संस्कृत भारत और हिंदू धर्म की शास्त्रीय भाषा है, जिसमें अधिकांश धर्मग्रंथ (वृंदावन), महाकाव्य (महाभारत, भगवत गीता) और प्राचीन साहित्य लिखा जाता है। पाली का उपयोग थेरवाद बौद्ध धर्म की प्रचलित और विद्वतापूर्ण भाषा के रूप में किया जाता है, क्योंकि बौद्ध धर्म की उत्पत्ति सबसे पहले बिहार, भारत में हुई थी। उत्तर भारत की अधिकांश आधुनिक भाषाएं इन दो भाषाओं जैसे–हिंदी, उर्दू, पुनाजाबी, गुजराती, बंगाली, मराठी, कश्मीर, सिंधी, कोंकणी, राजस्थानी, असमिया और उड़िया से उपजी हैं।

हिंदी भाषा अन्य भाषाओँ का प्रभाव

अपने पूरे इतिहास में, हिंदी ने कई अलग-अलग भाषाओं के उधार लिए शब्दों को अवशोषित किया। खड़ी बोली पर मुख्य बाहरी प्रभाव जो बाद में हिंदुस्तानी बन गया, दिल्ली सल्तनत के प्रशासकों और सैनिकों और बाद में मोगुल साम्राज्य के माध्यम से फारसी था। हिंदुस्तानी में ज्यादातर अरबी शब्द फारसी से आते हैं, जिसमें बहुत सारे अरबी से उधार शब्द हैं।

इसके अतिरिक्त, चूंकि 1960 के दशक तक पुर्तगाल के पास भारत में क्षेत्र थे, इसलिए हिंदी में "टेबल" (पुर्तगाली मेसा से) या कमीज, "शर्ट", जैसे–कैमिसा से पुर्तगाली शब्द की उचित मात्रा है।बेशक, अंग्रेजी औपनिवेशीकरण और आधुनिक वैश्वीकरण के माध्यम से, हिंदी में "प्रोफेसर" से "बॉटल" या प्रैफेसर जैसे–बोटल जैसे–अंग्रेजी शब्द भी अच्छी संख्या में हैं।

जाहिर है, अन्य भारतीय भाषाओं ने भी हिंदी को नए शब्दों के साथ प्रदान किया है, जैसे–कि हिंदी शब्दों ने अन्य भाषाओं जैसे–कि तमिल या मराठी में लिया है।

हिंदी और उर्दू एक भाषा विभाजन या एक पुनर्मिलन?उर्दू को सबसे पहले मुगल साम्राज्य में खड़ी बोली के एक संस्करण के रूप में देखा जाता है, जिसमें जबान-ए उर्दू-ए मुअला, जिसे "अदालत की भाषा (या शिविर)" कहा जाता है। यह हिंदी के समानांतर अस्तित्त्व में था और अंततः देश की स्थापना के समय पाकिस्तान की आधिकारिक भाषा बन गई।उर्दू और हिंदी दोनों को हिंदुस्तानी का रजिस्टर माना जाता है–ये एक ही भाषा के दो संस्करण, जैसे–कि ब्रिटिश अंग्रेजी और अमेरिकी अंग्रेजी दोनों अंग्रेजी के रजिस्टर हैं।हिंदी और उर्दू दोनों हिंदुस्तानी भाषाएं हैं।

हिंदी केवल एक भाषा नहीं है, बल्कि भारतीय संस्कृति का एक विशाल दर्पण भी है। इसकी मृदु-ध्वनियाँ भारतीय कविता को परिभाषित करती हैं। वास्तव में हिंदी पूरे देश को संगीतमय सम्मोहन से बांधती है और एक जीवंत समाज की परिकल्पना प्रदान करती है। भाषाओं की भव्य योजना में यह अपेक्षाकृत युवा है, । बहुत से लोग हिंदी भाषा सीखने के लिए प्रयास कर रहे हैं, क्योंकि भारत अधिक सामाजिक और राजनीतिक रूप से शक्तिशाली हो रहा है, भारत एक वैश्विक महाशक्ति भूमिका में बढ़ रहा है और हिंदी में विश्वगुरु बनने की अपार संभावनाएं हैं।

2

आदिकाल–वीर गाथा काल : हिंदी भाषा का साहित्य

आदिकाल हिंदी साहित्य का इतिहास (650 ई.-1350 ई.) : हिंदी साहित्य का इतिहास के विभिन्न कालों के नामांकरण का प्रथम श्रेय जॉर्ज ग्रियर्सन को जाता है। हिंदी साहित्य के इतिहास का आरंभिक काल के नामांकन का प्रश्न विवादास्पद है। इस काल को ग्रियर्सन ने 'चारण काल' मिश्र बंधु ने 'प्रारंभिक काल' महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'बीज वपन काल' शुक्ल ने आदिकाल- 'वीरगाथा काल' राहुल सांकृत्यायन ने सिद्ध 'सामंत काल' रामकुमार वर्मा ने 'संधिकाल व चारण काल' हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'आदिकाल' की संज्ञा दी है।

इतिहास

हिन्दी साहित्य के इतिहास में लगभग 7वीं शताब्दी से लेकर 14वीं शताब्दी के मध्य तक के काल को आदिकाल कहा जाता है। यह नाम (आदिकाल) डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी से मिला है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस काल को 'वीरगाथा काल' तथा विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इस काल को 'वीरकाल' नाम दिया है। आदिकाल के आधार पर साहित्य का इतिहास लिखने वाले मिश्र बंधुओं ने इसका नाम प्रारंभिक काल किया और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने

'बीजवपन काल' डॉ. रामकुमार वर्मा ने भी इस काल की प्रमुख प्रवृत्तियों के आधार पर इसको 'चारण–काल' कहा है और राहुल संकृत्यायन ने 'सिद्ध–सामन्त काल'।

आदिकाल में तीन प्रमुख प्रवृत्तियां मिलती हैं– धार्मिकता, वीरगाथात्मकता व श्रृंगारिकता।

आदिकाल का नामकरण

- हिन्दी साहित्य के इतिहास के प्रथम काल का नामकरण विद्वानों ने इस प्रकार किया है–

क्रम	विद्वान	नामकरण
1.	डॉ. ग्रियर्सन	चारणकाल,
2.	मिश्रबंधु	आरम्भिक काल
3.	आचार्य रामचंद्र शुक्ल–	वीरगाथा काल,
4.	राहुल संकृत्यायन	सिद्ध सामंत युग,
5.	महावीर प्रसाद द्विवेदी	बीजवपन काल,
6.	विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	वीरकाल,
7.	हजारी प्रसाद द्विवेदी	आदिकाल,
8.	रामकुमार वर्मा	चारण काल या संधि काल।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल का मत

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस काल का नाम वीरगाथा काल रखा है। इस नामकरण का आधार स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं– ...आदिकाल की इस दीर्घ परंपरा के बीच प्रथम डेढ़–सौ वर्ष के भीतर तो रचना की किसी विशेष प्रवृत्ति का निश्चय नहीं होता–धर्म, नीति, श्रृंगार, वीर सब प्रकार की रचनाएँ दोहों में मिलती है। इस अनिर्दिष्ट लोक प्रवृत्ति के उपरांत जब से मुसलमानों की चढ़ाइयों का आरंभ होता है, तब से हम हिंदी साहित्य की प्रवृत्ति एक विशेष रूप में बंधती हुई पाते हैं। राजाश्रित कवि अपने आश्रयदाता राजाओं के पराक्रमपूर्ण चरितों या गाथाओं का वर्णन करते थे। यही प्रबंध परंपरा रासो के नाम से पायी जाती है, जिसे लक्ष्य करके इस काल को हमने वीरगाथा काल कहा है। इसके संदर्भ में वे तीन कारण बताते हैं–

1. इस काल की प्रधान प्रवृत्ति वीरता की थी अर्थात् इस काल में वीरगाथात्मक ग्रंथों की प्रधानता रही है।
2. अन्य जो ग्रंथ प्राप्त होते हैं वे जैन धर्म से संबंध रखते हैं, इसलिए नाम मात्रा हैं और
3. इस काल के फुटकर दोहे प्राप्त होते हैं, जो साहित्यिक हैं तथा विभिन्न विषयों से संबंधित हैं, किन्तु उसके आधार पर भी इस काल की कोई विशेष प्रवृत्ति निर्धारित नहीं होती है। शुक्ल जी वे इस काल की बारह रचनाओं का उल्लेख किया है-
   (1) विजयपाल रासो (नल्लसिंह कृत-सं.1355),
   (2) हम्मीर रासो (शांगधर कृत-सं.1357),
   (3) कीर्तिलता (विद्यापति-सं.1460),
   (4) कीर्तिपताका (विद्यापति-सं.1460),
   (5) खुमाण रासो (दलपतिविजय-सं.1180),
   (6) बीसलदेव रासो (नरपति नाल्ह-सं.1212),
   (7) पृथ्वीराज रासो (चंद बरदाई-सं.1225-1249),
   (8) जयचंद्र प्रकाश (भट्ट केदार-सं. 1225),
   (9) जयमयंक जस चंद्रिका (मधुकर कवि-सं.1240),
   (10) परमाल रासो (जगनिक कवि-सं.1230),
   (11) खुसरो की पहेलियाँ (अमीर खुसरो-सं.1350),
   (12) विद्यापति की पदावली (विद्यापति-सं.1460)

शुक्ल जी द्वारा किये गये वीरगाथाकाल नामकरण के संबंध में कई विद्वानों ने अपना विरोध व्यक्त किया है। इनमें श्री मोतीलाल मैनारिया, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि मुख्य हैं। आचार्य द्विवेदी का कहना है कि वीरगाथा काल की महत्वपूर्ण रचना पृथ्वीराज रासो की रचना उस काल में नहीं हुई थी और यह एक अर्ध-प्रामाणिक रचना है। यही नहीं शुक्ल ने जिन गंथों के आधार पर इस काल का नामकरण किया है, उनमें से कई रचनाओं का वीरता से कोई संबंध नहीं है। बीसलदेव रासो गीति रचना है, जयचंद्र प्रकाश तथा जयमयंक जस चंद्रिका -इन दोनों का वीरता से कोई संबंध नहीं है। ये ग्रंथ केवल सूचना मात्रा हैं। अमीर खुसरो की पहेलियों का भी वीरत्व से कोई संबंध नहीं है। विजयपाल रासो का समय मिश्रबंधुओं ने सं.1355 माना है, अतः इसका भी वीरता से कोई

संबंध नहीं है। परमाल रासो पृथ्वीराज रासो की तरह अर्ध प्रामाणिक रचना है तथा इस ग्रंथ का मूल रूप प्राप्य नहीं है। कीर्तिलता और कीर्तिपताका– इन दोनों ग्रंथों की रचना विद्यापति ने अपने आश्रयदाता राजा कीर्तिसिंह की कीर्ति के गुणगान के लिए लिखे थे। उनका वीररस से कोई संबंध नहीं है। विद्यापति की पदावली का विषय राधा तथा अन्य गोपियों से कृष्ण की प्रेम–लीला है। इस प्रकार शुक्ल जी ने जिन आधार पर इस काल का नामकरण वीरगाथा काल किया है, वह योग्य नहीं है।

डॉ. ग्रियर्सन का मत

डॉ. ग्रियर्सन ने हिंदी साहित्य के इतिहास के प्रथम काल को चारणकाल नाम दिया है। पर इस नाम के पक्ष में वे कोई ठोस तर्क नहीं दे पाये हैं। उन्होंने हिंदी साहित्य के इतिहास का प्रारंभ 643 ई.से मानी है, किन्तु उस समय की किसी चारण रचना या प्रवृत्ति का उल्लेख उन्होंने नहीं किया है। वस्तुत: इस प्रकार की रचनाएँ 1000 ई.स. तक मिलती ही नहीं हैं। इस लिए डॉ.ग्रियर्सन द्वारा दिया गया नाम योग्य नहीं है।

मिश्रबंधुओं का मत

मिश्रबंधुओं ने ई.स. 643 से 1387 तक के काल को प्रारंभिक काल कहा है। यह एक सामान्य नाम है और इसमें किसी प्रवृत्ति को आधार नहीं बनाया गया है। यह नाम भी विद्वानों को स्वीकार्य नहीं है।

डॉ. रामकुमार वर्मा का मत

डॉ.रामकुमार वर्मा– इन्होंने हिंदी साहित्य के प्रारंभिक काल को चारणकाल नाम दिया है। इस नामकरण के बारे में उनका कहना है कि इस काल के सभी कवि चारण थे, इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता, क्योंकि सभी कवि राजाओं के दरबार–आश्रय में रहनेवाले, उनके यशोगान करनेवाले थे। उनके द्वारा रचा गया साहित्य चारणी कहलाता है, किन्तु विद्वानों का मानना है कि जिन रचनाओं का उल्लेख वर्मा जी ने किया है, उनमें अनेक रचनाएँ संदिग्ध हैं। कुछ तो आधुनिक काल की भी हैं। इस कारण डॉ. वर्मा द्वारा दिया गया चारणकाल नाम विद्वानों को मान्य नहीं है।

राहुल संकृत्यायन का मत

राहुल संकृत्यायन- उन्होंने 8वीं से 13 वीं शताब्दी तक के काल को सिद्ध-सांमत युग की रचनाएँ माना है। उनके मतानुसार उस समय के काव्य में दो प्रवृत्तियों की प्रमुखता मिलती है- 1.सिद्धों की वाणी- इसके अंतर्गत बौद्ध तथा नाथ-सिद्धों की तथा जैनमुनियों की उपदेशमुलक तथा हठयोग की क्रिया का विस्तार से प्रचार करने वाली रहस्यमूलक रचनाएँ आती हैं। 2.सामंतों की स्तृति- इसके अंतर्गत चारण कवियों के चरित काव्य (रासो ग्रंथ) आते हैं, जिनमें कवियों ने अपने आश्रय दाता राजा एवं सामंतों की स्तृति के लिए युद्ध, विवाह आदि के प्रसंगों का बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन किया है। इन ग्रंथों में वीरत्व का नवीन स्वर मुखरित हुआ है। राहुल जी का यह मत भी विद्वानों द्वारा मान्य नहीं है। क्योंकि इस नामकरण से लौकिक रस का उल्लेख करनेवाली किसी विशेष रचना का प्रमाण नहीं मिलता। नाथपंथी तथा हठयोगी कवियों तथा खुसरो आदि की काव्य-प्रवृत्तियों का इस नाम में समावेश नहीं होता है।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का मत

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी- उन्होंने हिंदी साहित्य के प्रथम काल का नाम बीज-बपन काल रखा। उनका यह नाम योग्य नहीं है, क्योंकि साहित्यिक प्रवृत्तियों की दृष्टि से यह काल आदिकाल नहीं है। यह काल तो पूर्ववर्ती परिनिष्ठित अपभ्रंश की साहित्यिक प्रवृत्तियों का विकास है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी- इन्होंने हिंदी साहित्य के इतिहास के प्रारंभिक काल को आदिकाल नाम दिया है। विद्वान भी इस नाम को अधिक उपयुक्त मानते हैं। इस संदर्भ में उन्होंने लिखा है- वस्तुत: हिंदी का आदि काल शब्द एक प्रकार की भ्रामक धारणा की सृष्टि करता है और श्रोता के चित्त में यह भाव पैदा करता है कि यह काल कोई आदिम, मनोभावापन्न, परंपराविनिर्मुक्त, काव्य-रूढ़ियों से अछूते साहित्य का काल है। यह ठीक वहीं है। यह काल बहुत अधिक परंपरा-प्रेमी, रूढ़िग्रस्त, सजग और सचेत कवियों का काल है। आदिकाल नाम ही अधिक योग्य है, क्योंकि साहित्य की दृष्टि से यह काल अपभ्रंश काल का विकास ही है, पर भाषा की दृष्टि से यह परिनिष्ठित अपभ्रंश से आगे बढ़ी हुई भाषा की सूचना देता है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने हिंदी

साहित्य के आदिकाल के लक्षण-निरूपण के लिए निम्नलिखित पुस्तकें आधारभूत बतायी हैं-

1.पृथ्वीराज रासो, 2.परमाल रासो, 3. विद्यापति की पदावली, 4. कीर्तिलता, 5.कीर्तिपताका, 6.संदेशरासक (अब्दुल रेहमान), 7.पउमचरिउ (स्वयंभू कृत रामायण), 8.भविषयत्कहा (धनपाल), 9.परमात्म-प्रकाश (जोइन्दु), 10. बौद्ध गान और दोहा (संपादक पं.हरप्रसाद शास्त्री), 11.स्वयंभू छंद और 12. प्राकृत पैंगलम्।

नाम निर्णय

इस प्रकार हिंदी साहित्य के इतिहास के प्रथम काल के नामकरण के रूप में आदिकाल नाम ही योग्य व सार्थक है, क्योंकि इस नाम से उस व्यापक पुष्ठभूमि का बोध होता है, जिस पर परवर्ती साहित्य खड़ा है। भाषा की दृष्टि से इस काल के साहित्य में हिंदी के प्रारंभिक रूप का पता चलता है तो भाव की दृष्टि से भक्तिकाल से लेकर आधुनिक काल तक की सभी प्रमुख प्रवृत्तियों के आदिम बीज इसमें खोजे जा सकते हैं। इस काल की रचना-शैलियों के मुख्य रूप इसके बाद के कालों में मिलते हैं। आदिकाल की आध्यात्मिक, श्रृंगारिक तथा वीरता की प्रवृत्तियों का ही विकसित रूप परवर्ती साहित्य में मिलता है। इस कारण आदिकाल नाम ही अधिक उपयुक्त तथा व्यापक नाम है।

आदि काल भाषा की शैली

आदि काल में दो शैलियां मिलती हैं डिंगल व पिंगल। डिंगल शैली में कर्कस शब्दावलीओं का प्रयोग होता है, जबकि पिंगल शैली में कर्ण प्रिय शब्दावली ओं का। करकस शब्दावलियों के कारण डिंगल शैली अलोकप्रिय होती चली गई, जबकि कर्ण प्रिय शब्दावलीओं के कारण पिंगल सैली लोकप्रिय होती चली गई और आगे चलकर इसका ब्रजभाषा में विगलन हो गया। आदिकालीन साहित्य के 3 सर्व प्रमुख रूप है-सिद्ध साहित्य, नाथ साहित्य और रासो साहित्य।

साहित्य

इस समय का साहित्य मुख्यत: चार रूपों में मिलता है–1. सिद्ध-साहित्य तथा नाथ-साहित्य, 2. जैन साहित्य, 3. चारणी-साहित्य, 4. प्रकीर्णक साहित्य।

सिद्ध-साहित्य

सिद्धों का सम्बन्ध बौद्ध धर्म की वज्रयानी शाखा से है। ये भारत के पूर्वी भाग में सक्रिय थे। इनकी संख्या 84 मानी जाती है, जिनमें सरहप्पा, शबरप्पा, लुइप्पा, डोम्भिप्पा, कुक्कुरिप्पा ((कणहपा))आदि मुख्य हैं। सरहप्पा प्रथम सिद्ध कवि थे।

राहुल सांकृत्यायन ने इन्हें हिन्दी का प्रथम कवि माना तथा सर्वसम्मति से इन्हें हिन्दी का प्रथम कवि स्वीकार किया गया, इन्होंने जातिवाद और वाह्याचारों पर प्रहार किया। देहवाद का महिमा मण्डन किया और सहज साधना पर बल दिया। ये महासुखवाद द्वारा ईश्वरत्व की प्राप्ति पर बल देते हैं। इन सब में लुइपा का स्थान सबसे उच्च है।

बौद्ध धर्म के वज्रयान तत्त्व का प्रचार करने के लिए जो साहित्य देश भाषा (जनभाषा) में लिखा गया वही सिद्ध साहित्य कहलाता है। यह साहित्य बिहार से लेकर असम तक फैला था। राहुल संकृत्यायन ने 84 सिद्धों के नामों का उल्लेख किया है, जिनमें सिद्ध 'सरहपा' से यह साहित्य आरम्भ होता है। बिहार के नालन्दा विद्यापीठ इनके मुख्य अड्डे माने जाते हैं। बख्तियार खिलजी ने आक्रमण कर इन्हें भारी नुकसान पहुचाया बाद में यह 'भोट' देश चले गए। इनकी रचनाओं का एक संग्रह महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने बांग्ला भाषा में 'बौद्धगान-ओ-दोहा' के नाम से निकाला।

सिद्धों की भाषा में 'उलटबासी' शैली का पूर्व रुप देखने को मिलता है। इनकी भाषा को संध्या भाषा कहा गया है, हजारी प्रसाद द्विवेदी ने सिद्ध साहित्य की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि, 'जो जनता तात्कालिक नरेशों की स्वेच्छाचारिता, पराजय त्रस्त होकर निराशा के गर्त में गिरी हुई थी, उनके लिए इन सिद्धों की वाणी ने संजीवनी का कार्य किया। साधना अवस्था से निकली सिद्धों की वाणी 'चरिया गीत/चर्यागीत' कहलाती है।

सिद्ध साहित्य को मुख्यत: निम्न तीन श्रेणियों में विभाजित किया जाता है–

1. नीति या आचार संबंधित साहित्य।
2. उपदेश परक साहित्य।
3. साधना सम्बन्धी या रहस्यवादी साहित्य।

सिद्धों की साधना धर्म का विकृत रूप थी, उन्होंने वामाचार फैलाया वह अपनी साधना के लिये स्त्री का प्रयोग आवश्यक मानते थे– उस समय बिहार व बंगाल में सास व ननंद द्वारा नई दुल्हन को सिद्धों के आकर्षण से सावधान

रहने की शिक्षा दि जाती थी, इनके साहित्य को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सांप्रदायिक शिक्षा मात्रा कहा, जिनका बाद में हजारी प्रसाद द्विवेदी ने खंडन किया।।

नाथ-साहित्य

सिद्धों के महासुखवाद के विरोध में नाथ पंथ का उदय हुआ। नाथों की संख्या नौ है। इनका क्षेत्र भारत का पश्चिमोत्तर भाग है। इन्होंने सिद्धों द्वारा अपनाये गये पंचमकारों का नकार किया। नारी भोग का विरोध किया। इन्होंने बाह्याडंबरों तथा वर्णाश्रम का विरोध किया और योगमार्ग तथा कृच्छ साधना का अनुसरण किया। ये ईश्वर को घट-घट वासी मानते हैं। ये गुरु को ईश्वर मानते हैं। नाथ में सर्वाधिक महत्वपूर्ण गोरखनाथ हैं। इनकी रचना गोरखबाणी नाम से प्रकाशित है।

नाथ सम्प्रदाय का उल्लेख विभिन्न क्षेत्र के ग्रंथों में जैसे- योग (हठयोग), तंत्र (अवधूत मत या सिद्ध मत), आयुर्वेद (रसायन चिकित्सा), बौद्ध अध्ययन (सहजयान तिब्बती परम्परा 84 सिद्धों में), हिन्दी (आदिकाल के कवियों के रूप) में चर्चा मिलती हैं।

यौगिक ग्रंथों में नाथ सिद्ध–हठप्रदीपिका के लेखक स्वात्माराम और इस ग्रंथ के प्रथम टीकाकार ब्रह्मानंद ने हठ प्रदीपिका ज्योत्स्ना के प्रथम उपदेश में 5 से 9 वे श्लोक में 33 सिद्ध नाथ योगियों की चर्चा की है। ये नाथसिद्ध कालजयी होकर ब्रह्माण्ड में विचरण करते हैं। इन नाथ योगियों में प्रथम नाथ आदिनाथ को माना गया है, जो स्वयं शिव हैं, जिन्होंने हठयोग की विद्या प्रदान की जो राजयोग की प्राप्ति में सीढ़ी के समान है।

आयुर्वेद ग्रंथों में नाथ सिद्धों की चर्चा–रसायन चिकित्सा के उत्पत्तिकर्ता के रूप प्राप्त होता है, जिन्होंने इस शरीर रूपी साधन को जो मोक्ष में माध्यम है इस शरीर को रसायन चिकित्सा पारद और अभ्रक आदि रसायानों की उपयोगिता सिद्ध किया। पारदादि धातु घटित चिकित्सा का विशेष प्रवर्तन किया था तथा विभिन्न रसायन ग्रंथों की रचना की उपरोक्त कथन सुप्रसिद्ध विद्वान और चिकित्सक महामहोपाध्याय गणनाथ सेन ने लिखा है।

तंत्र गंथों में नाथ सम्प्रदाय: नाथ सम्प्रदाय के आदिनाथ शिव है, मूलत: समग्र नाथ सम्प्रदाय शैव है। शाबर तंत्र में कपालिको के 12 आचार्यों की चर्चा है- आदिनाथ, अनादि, काल, वीरनाथ, महाकाल आदि जो नाथ मार्ग के प्रधान

आचार्य माने जाते हैं। नाथों ने ही तंत्र गंथों की रचना की है। षोड्श नित्यातंत्र में शिव ने कहा है कि–नव नाथों– जडभरत मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ, , सत्यनाथ, चर्पटनाथ, जालंधरनाथ नागार्जुन आदि ने ही तंत्रों का प्रचार किया है।

बौद्ध अध्ययन में नाथ सिद्ध–84 सिद्धों में आते हैं। राहुल सांकृत्यायन ने गंगा के पुरातत्त्वांक में बौद्ध तिब्बती परम्परा के 84 सहजयानी सिद्धों की चर्चा की है, जिसमें से अधिकांश सिद्ध नाथसिद्ध योगी हैं, जिनमें लुइपाद मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षपा गोरक्षनाथ, चौरंगीपा चौरंगीनाथ, शबरपा शबर आदि की चर्चा है, जिन्हें सहजयानीसिद्धों के नाम से जाना जाता है।

हिन्दी में नाथसिद्ध–हिन्दी साहित्य में आदिकाल के कवियों में नाथ सिद्धों की चर्चा मिलती है। अपभ्रंश, अवहट्ट भाषाओं की रचनाऐं मिलती है, जो हिन्दी की प्रारंभिक काल की है। इनकी रचनाओं में पाखंड़ों आडंबरो आदि का विरोध है तथा चित्त, मन, आत्मा, योग, धैर्य, मोक्ष आदि का समावेश मिलता है, जो साहित्य के जागृति काल की महत्वपूर्ण रचनाऐं मानी जाती है, जो जनमानस को योग की शिक्षा, जनकल्याण तथा जागरूकता प्रदान करने के लिए था।

नाथपंथ साहित्य

भगवान शिव के उपासक नाथों के द्वारा जो साहित्य रचा गया, वही नाथ साहित्य कहलाता है। राहुल संकृत्यायन ने नाथपंथ को सिद्धों की परंपरा का ही विकसित रूप माना है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने नाथपन्थ या नाथ सम्प्रदाय को 'सिद्ध मत', 'सिद्ध मार्ग', 'योग मार्ग', 'योग संप्रदाय', 'अवधूत मत' एवं 'अवधूत संप्रदाय' के नाम से पुकारा है।

नाथ साहित्य की विशेषताएँ

- इसमें ज्ञान निष्ठा को पर्याप्त महत्व प्रदान किया गया है,
- इसमें मनोविकारों की निंदा की गई है,
- इस साहित्य में नारी निन्दा का सर्वाधिक उल्लेख प्राप्त होता है,
- इसमें सिद्ध साहित्य के भोग-विलास की भर्त्सना की गई है,
- इस साहित्य में गुरु को विशेष महत्व प्रदान किया गया है,
- इस साहित्य में हठयोग का उपदेश प्राप्त होता है,
- इसका रूखापन और गृहस्थ के प्रति अनादर का भाव इस साहित्य की सबसे बड़ी कमजोरी मानी जाती है,

- **मन, प्राण, शुक्र, वाक और कुण्डलिनी**– इन पांचों के संयमन के तरीकों को राजयोग, हठयोग, वज्रयान, जपयोग या कुंडलीयोग कहा जाता है। इसमे भगवान शिव की उपासना उदात्तता के साथ मिलती है।

जैन साहित्य-जैन पुराण साहित्य

ऐतिहसिक जानकारी हेतु जैन साहित्य भी बौद्ध साहित्य की ही तरह महत्त्वपूर्ण हैं। अब तक उपलब्ध जैन साहित्य प्राकृत एवं संस्कृत भाषा में मिलतें है, जैन साहित्य के विशेषज्ञ तथा अनुसन्धानपूर्ण लेखक अगरचन्द नाहटा थे। जैन साहित्य, जिसे 'आगम' कहा जाता है, इनकी संख्या 12 बतायी जाती है। आगे चलकर इनके 'उपांग' भी लिखे गये। आगमों के साथ-साथ जैन ग्रंथों में 10 प्रकीर्ण, 6 छंद सूत्र, एक नंदि सूत्र, एक अनुयोगद्वार, एवं 4 मूलसूत्र हैं। इन आगम ग्रंथों की रचना सम्भवत: 'वेताम्बर सम्प्रदाय के आचार्यो द्वारा महावीर स्वामी की मृत्यु के बाद की गयी।

जैन साहित्य के बारह आगम

1. आचरांग सुत्त, 2. सूर्यकडंक, 3. थापंग, 4. समवायांग, 5. भगवतीसूत्र, 6. न्यायधम्मकहाओ, 7. उवासगदसाओं, 8. अन्तगडदसाओ, 9. अणुत्तरोववाइयदसाओं, 10. पण्हावागरणिआई, 11. विवागसुयं और 12 द्विट्ठिवाय।

इन आगम ग्रंथो के 'आचरांगसूत्त' से जैन भिक्षुओं के विधि-निषेधों एवं आचार-विचारों का विवरण एवं 'भगवतीसूत्र' से महावीर स्वामी के जीवन-शिक्षाओं आदि के बारे में उपयुक्त जानकारी मिलती है, जो इस प्रकार हैं- 1. औपपातिक, 2. राजप्रश्नीय, 3. जीवाभिगम, 4. प्रज्ञापणा, 5. सूर्यप्रज्ञप्ति, 6. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, 7. चन्दप्रज्ञप्ति, 8. निर्यावलिका, 9. कल्पावंतसिका, 10. पुष्पिका, 11. पुष्पचूलिका और 12. वृष्णिदशा।

जैन साहित्य के 10 प्रकीर्ण

1. चतु:शरण, 2. आतुर प्रत्याख्यान, 3. भक्तिपरीज्ञा, 4. संस्तार, 5. तांदुलवैतालिक, 6. चंद्रवेध्यक, 7. गणितविद्या, 8. देवेन्द्रस्तव, 9. वीरस्तव और 10.महाप्रत्याख्यान।

जैन साहित्य के 6 छेदसूत्र

1. निशीथ, 2. महानिशीथ, 3. व्यवहार, 4. आचारदशा, 5. कल्प और 6. पंचकल्प आदि।

- एक नंदि सूत्र एवं एक अनुयोग द्वारा जैन धर्म अनुयायियों के स्वतंत्र ग्रंथ एवं विश्वकोष हैं।

जैन साहित्य में पुराण

जैन साहित्य में पुराणों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है, जिन्हें 'चरित' भी कहा जाता है। ये प्राकृत, संस्कृत तथा अपभ्रंश तीनों भाषाओं में लिखें गयें हैं। इनमें पद्म पुराण, हरिवंश पुराण, आदि पुराण, इत्यादि उल्लेखनीय हैं जैन पुराणों का समय छठी शताब्दी से सोलहवीं-सत्रवहीं शताब्दी तक निर्धारित किया गया है, जैन ग्रंथों में परिशिष्ट पर्व, भद्रबाहुचरित, आवश्यकसूत्र, आचारांगसूत्र, भगवतीसूत्र, कालिकापुराणा आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनसे ऐतिहासिक घटनाओं की सूचना मिलती है।

भारतीय धर्मग्रन्थों में पुराण

भारतीय धर्मग्रन्थों में 'पुराण' शब्द का प्रयोग इतिहास के अर्थ में आता है। कितने विद्वानों ने इतिहास और पुराण को पंचम वेद माना है। चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र में इतिवृत्त, पुराण, आख्यायिका, उदाहरण, धर्मशास्त्र तथा अर्थशास्त्र का समावेश किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि इतिहास और पुराण दोनों ही विभिन्न हैं। इतिवृत्त का उल्लेख समान होने पर भी दोनों अपनी अपनी विशेषता रखते हैं।

इतिहास जहाँ घटनाओं का वर्णन कर निर्वृत्त हो जाता है वहाँ पुराण उनके परिणाम की ओर पाठक का चित्त आकृष्ट करता है-

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितान्येव पुराणं पंचलक्षणम्

जिसमें सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंश-परम्पराओं का वर्णन हो, वह पुराण है। सर्ग, प्रतिसर्ग आदि पुराण के पाँच लक्षण हैं। तात्पर्य यह कि इतिवृत्त केवल घटित घटनाओं का उल्लेख करता है, परन्तु पुराण महापुरुषों के घटित घटनाओं का उल्लेख करता हुआ, उनसे प्राप्त फलाफल पुण्य-पाप का भी वर्णन करता है तथा व्यक्ति के चरित्र निर्माण की अपेक्षा बीच-बीच में नैतिक और

धार्मिक शिक्षाओं का प्रदर्शन भी करता है। इतिवृत्त में जहाँ केवल वर्तमान की घटनाओं का उल्लेख रहता है, वहाँ पुराण में नायक के अतीत और अनागत भवों का भी उल्लेख रहता है और वह इसलिये कि जनसाधारण समझ सके कि महापुरुष कैसे बना जा सकता है। अवनत से उन्नत बनने के लिये क्या-क्या त्याग, परोपकार और तपस्याएँ करनी पड़ती हैं। मानव के जीवन-निर्माण में पुराण का बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। यही कारण है कि उसमें जनसाधारण की श्रद्धा आज भी यथापूर्व अक्षुण्ण है।

जैन आचार-मीमांसा

जैन धर्म के अनुसार आध्यात्मिक विकास की पूर्णता हेतु श्रावक या गृहस्थधर्म (श्रावकाचार) पूर्वार्ध है और श्रमण या मुनिधर्म (श्रमणाचार) उत्तरार्ध। श्रमणधर्म की नींव गृहस्थ धर्म पर मजबूत होती है। यहाँ गृहस्थ धर्म की महत्त्वपूर्ण भूमिका इसलिए भी है, क्योंकि श्रावकाचार की भूमिका में एक सामान्य गृहस्थ त्याग और भोग-इन दोनों को समन्वयात्मक दृष्टि में रखकर आध्यात्मिक विकास में अग्रसर होता है, अतः प्रस्तुत प्रसंग में सर्वप्रथम श्रावकाचार का स्वरूप विवेचन आवश्यक है।

गोम्मट पंजिका

आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती (10वीं शती) द्वारा प्राकृत भाषा में लिखित गोम्मटसार पर सर्वप्रथम लिखी गई यह एक संस्कृत पंजिका टीका है-

- इसका उल्लेख उत्तरवर्ती आचार्य अभयचन्द्र ने अपनी मन्दप्रबोधिनी टीका में किया है।
- इस पंजिका की एकामात्रा उपलब्ध प्रति (सं. 1560) पं. परमानन्द जी शास्त्री के पास रही।
- इस टीका का प्रमाण पाँच हजार श्लोक है।
- इस प्रति में कुल पत्र 98 हैं।

गोम्मटसार जीवतत्त्व प्रदीपिका

- यह टीका केशववर्णी द्वारा रचित है।
- उन्होंने इसे संस्कृत और कन्नड़ दोनों भाषाओं में लिखा है।

जैसे–वीरसेन स्वामी ने अपनी संस्कृत प्राकृत मिश्रित धवला टीका द्वारा षट्खंडागम के रहस्यों का उद्घाटन किया है, उसी प्रकार केशववर्णी ने भी अपनी इस जीवतत्त्व प्रदीपिका द्वारा जीवकाण्ड के रहस्यों का उद्घाटन कन्नड़ मिश्रित संस्कृत में किया है।

जयधवल टीका

आचार्य वीरसेन स्वामी ने धवला की पूर्णता के पश्चात् शौरसेनी प्राकृत भाषा में निबद्ध आचार्य गुणधर द्वारा विरचित कसायपाहुड की टीका जयधवला का कार्य आरंभ किया और जीवन के अंतिम सात वर्षों में उन्होंने उसका एक तिहाई भाग लिखा। तत्पश्चात् शक सं. 745 में उनके दिवंगत होने पर शेष दो तिहाई भाग उनके योग्यतम शिष्य जिनसेनाचार्य (शक सं. 700 से 760) ने पूरा किया। 21 वर्षों की सुदीर्घ ज्ञानसाधना की अवधि में यह लिखी जाकर शक सं. 759 में पूरी हुई।

आचार्य जिनसेन स्वामी ने सर्वप्रथम संस्कृत महाकाव्य पाशर्वाभ्युदय की रचना में की थी। इनकी दूसरी प्रसिद्ध कृति 'महापुराण' है। उसके पूर्वभाग–'आदिपुराण' के 42 सर्ग ही वे बना पाए थे और दिवंगत हो गए। शेष की पूर्ति उनके शिष्य गुणभद्राचार्य ने की।

जीवतत्त्व प्रदीपिका

यह नेमिचन्द्रकृत चतुर्थ टीका है। तीसरी टीका की तरह इसका नाम भी जीवतत्त्व प्रदीपिका है। यह केशववर्णी की कर्नाटकवृत्ति में लिखी गई संस्कृत मिश्रित जीवतत्त्व प्रदीपिका का ही संस्कृत रूपान्तर है। इसके रचयिता नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती से भिन्न और उत्तरवर्ती नेमिचन्द्र हैं। ये नेमिचन्द्र ज्ञानभूषण के शिष्य थे।

गोम्मटसार के अच्छे ज्ञाता थे। इनका कन्नड़ तथा संस्कृत दोनों पर समान अधिकार है। यदि इन्होंने केशववर्णी की टीका को संस्कृत रूप नहीं दिया होता तो पं. टोडरमल जी हिन्दी में लिखी गई अपनी सम्यग्ज्ञानचंद्रिका नहीं लिख पाते, ये नेमिचन्द्र गणित के भी विशेषज्ञ थे।

जैन साहित्य के क्षेत्र में जैन साध्वी पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने बीसवीं सदी में एक कीर्तिमान उपस्थित किया है। उन्होंने न्याय- व्याकरण-

छंद –अलंकार– सिद्धान्त– अध्यात्म– काव्य– पूजन आदि सभी प्रकार का साहित्य रचा है। उनकी 250 से अधिक पुस्तकें जम्बूद्वीप–हस्तिनापुर से प्रकाशित हुई हैं।

षट्खण्डागम ग्रंथों पर उन्होंने 16 पुस्तकों की सिद्धांतचिन्तामणि नामक संस्कृत टीका लिखकर आचार्य श्री वीरसेनस्वामी की याद को ताजा कर दिया है। वर्तमान युग में संस्कृत टीका लिखने वाली मात्रा एक ही साध्वी हैं। इन ग्रंथों की हिन्दी टीका उनकी शिष्या प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी ने किया है, जिनकी 10 पुस्तकें छप चुकी हैं। उन्हें मँगाकर आप स्वाध्याय कर सकते हैं। संस्कृत की सोलहों पुस्तकें छप चुकी हैं।

आगम

भगवान महावीर के उपदेश जैन धर्म के मूल सिद्धान्त हैं, जिन्हें 'आगम' कहा जाता है। वे अर्धमागधी प्राकृत भाषा में हैं। उन्हें आचारांगादि बारह 'अंगों' में संकलित किया गया, जो 'द्वादशंग आगम' कहे जाते हैं। वैदिक संहिताओं की भाँति जैन आगम भी पहले श्रुत रूप में ही थे। महावीर जी के बाद भी कई शताब्दियों तक उन्हें लिपिबद्ध नहीं किया गया था।

आल्हा छंद आदिकाल

हिंदी साहित्य के आदिकाल में आल्हा छंद बहुत प्रचलित था, यह वीर रस का बड़ा ही लोकप्रिय छंद था। दोहा, रासा, तोमर, नाराच, पद्धति, अरिल्ल, आदि छंदों का प्रयोग आदिकाल में मिलता है।

आल्हा मध्यभारत में स्थित एतिहासिक बुंदेलखण्ड के सेनापति थे और अपनी वीरता के लिए विख्यात थे। आल्हा के छोटे भाई का नाम ऊदल था और वह भी वीरता में अपने भाई से बढ़कर ही था।

जगनिक ने आल्ह–खण्ड नामक एक काव्य रचा था उसमें इन वीरों की 52 लड़ाइयों की गाथा वर्णित है।

ऊदल ने अपनी मातृभूमि की रक्षा हेतु पृथ्वीराज चौहान किया युद्ध

ऊदल ने अपनी मातृभूमि की रक्षा हेतु पृथ्वीराज चौहान से युद्ध करते हुए ऊदल वीरगति प्राप्त हुए आल्हा को अपने छोटे भाई की वीरगति की खबर सुनकर अपना अपना–आपा खो बैठे और पृथ्वीराज चौहान की सेना पर मौत

बनकर टूट पणे आल्हा के सामने जो आया मारा गया 1 घंटे के घनघोर युद्ध की के बाद पृथ्वीराज और आल्हा आमने-सामने थे दोनों में भीषण युद्ध हुआ पृथ्वीराज चौहान बुरी तरह घायल हुए आल्हा के गुरु गोरखनाथ के कहने पर आल्हा ने पृथ्वीराज चौहान को जीवनदान दिया और बुंदेलखंड के महा योद्धा आल्हा ने नाथ पंथ स्वीकार कर लिया।

चारणी-साहित्य

इसके अंतर्गत चारण के उपरांत ब्रह्मभट्ट और अन्य बंदीजन कवि भी आते हैं। सौराष्ट्र, गुजरात और पश्चिमी राजस्थान में चारणों का, तथा ब्रज-प्रदेश, दिल्ली तथा पूर्वी राजस्थान में भट्टों का प्राधान्य रहा था। चारणों की भाषा साधारणत: राजस्थानी रही है और भट्टों की ब्रज। इन भाषाओं को डिंगल और पिंगल नाम भी मिले हैं। ये कवि प्राय: राजाओं के दरबारों में रहकर उनकी प्रशस्ति किया करते थे। अपने आश्रयदाता राजाओं की अतिरंजित प्रशंसा करते थे। शृंगार और वीर उनके मुख्य रस थे। इस समय की प्रख्यात रचनाओं में चंदबरदाई कृत पृथ्वीराज रासो, दलपति कृत खुमाण-रासो, नरपति-नाल्ह कृत बीसलदेव रासो, जगनिक कृत आल्ह खंड आदि मुख्य हैं। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण पृथ्वीराज रासो है। इन सब ग्रंथों के बारे में आज यह सिद्ध हुआ है कि उनके कई अंश क्षेपक हैं।

प्रकीर्णक साहित्य

खड़ी बोली के आदि-कवि अमीर खुसरो इसी समय हुए है। खुसरो की पहेलियां और मुकरियां प्रख्यात हैं। मैथिल-कोकिल विद्यापति भी इसी समय के अंतर्गत हुए हैं। विद्यापति के मधुर पदों के कारण इन्हें 'अभिनव जयदेव' भी कहा जाता है। मैथिली और अवहट्ट में भी इनकी रचनाएं मिलती हैं। इनकी पदावली का मुख्य रस शृंगार माना गया है। अब्दुल रहमान कृत 'संदेश रासक' भी इसी समय की एक सुंदर रचना है। इस छोटे से प्रेम-संदेश-काव्य की भाषा अपभ्रंश से अत्यधिक प्रभावित होने से कुछ विद्वान इसको हिंदी की रचना न मानकर अपभ्रंश की रचना मानते हैं।

आश्रयदाताओं की अतिरंजित प्रशंसाएं, युद्धों का सुन्दर वर्णन, शृंगार-मिश्रित वीररस का आलेखन वगैरह इस साहित्य की प्रमुख विशेषताएं हैं। इस्लाम का भारत में प्रवेश हो चुका था। देशी रजवाड़े परस्पर कलह में व्यस्त थे। सब एक

साथ मिलकर मुसलमानों के साथ लड़ने के लिए तैयार नहीं थे। परिणाम यह हुआ कि अलग-अलग सबको हराकर मुसलमान यहीं स्थिर हो गए। दिल्ली की गद्दी उन्होंने प्राप्त कर ली और क्रमशः उनके राज्य का विस्तार बढ़ने लगा। तत्कालीन कविता पर इस स्थिति का प्रभाव देखा जा सकता है।

आदिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

हिन्दी साहित्य में आदिकाल साहित्यिक परम्पराओं के निर्माण का काल है। इस काल में संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में तो रचनाएँ हो ही रही थीं, साथ ही अपभ्रंश से धीरे-धीरे मुक्त होती हुई हिन्दी भी अपना रूप ग्रहण कर रही थी। अपभ्रंश साहित्य की परम्परा परवर्ती हिन्दी साहित्य में जीवित मिलती है। अनेक स्वतन्त्र परम्पराओं का उदय भी उन्हीं दिनों हुआ। आदिकालीन हिन्दी साहित्य की उपलब्ध सामग्री के दो रूप हैं–एक वर्ग में वे रचनाएँ हैं, जिनकी भाषा अपभ्रंश के प्रभाव से पूर्णतः मुक्त नहीं हैं और दूसरे वर्ग में वे रचनाएँ हैं, जिन्हें अपभ्रंश के प्रभाव से मुक्त हिन्दी की रचनाएँ कहा जा सकता है। अपभ्रंश प्रभावित रचनाओं में सिद्ध साहित्य, नाथ साहित्य आदि प्रमुख हैं और अपभ्रंश के प्रभाव से मुक्त हिन्दी की रचनाओं में बीसलदेव रासो, परमाल रासो, हम्मीर रासो, पृथ्वीराज रासो, खुसरो की पहेलियाँ आदि प्रमुख हैं।

हिन्दी साहित्य के आरम्भिक काल को 'आदिकाल' कहने से उस व्यापक पृष्ठभूमि का बोध होता है, जिस पर आगे का साहित्य खड़ा है। भाषा की दृष्टि से हम इस काल के साहित्य में हिन्दी के आदि रूप का बोध प्राप्त कर सकते हैं, तो भाव की दृष्टि से इसमें भक्तिकाल से आधुनिक काल तक की सभी प्रमुख प्रवृत्तियों के आदिम बीज खोज सकते हैं जहाँ तक रचना शैलियों का प्रश्न है, उनके भी वे सभी रूप जो परवर्ती काव्य में प्रयुक्त हुए, अपने आदि रूप में मिल जाते हैं। इस काल की आध्यात्मिक, शृंगारिक तथा वीरता की प्रवृत्तियों का ही विकसित रूप बाद के साहित्य में मिलता है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'आदिकाल' को अपभ्रंश काव्य और देश-भाषा काव्य में विभाजित करके देश-भाषा काव्य को 'वीरगाथा काल' नाम दिया। वे वीरगाथा को आदिकाल की प्रधान साहित्यिक प्रवृत्ति मानते हैं, जो उचित नहीं है। यद्यपि शुक्ल जी ने आदिकाल की अन्य प्रवृत्तियों की ओर भी संकेत किया है–"आदिकाल की इस दीर्घ परम्परा के बीच (संवत 1050 से 1375 तक) डेढ़ सौ वर्षों के भीतर तो रचना की किसी विशेष प्रवृत्ति का निश्चय नहीं होता

है–धर्म, नीति, शृंगार, वीर सब प्रकार की रचनाएँ दोहों में मिलती हैं।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 3) आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है–"दसवीं से चौदहवीं शताब्दी तक के समय में लोकभाषा में लिखित जो साहित्य उपलब्ध हुआ है, उसमें परिनिष्ठित अपभ्रंश से कुछ आगे बढ़ी हुई भाषा का रूप दिखाई देता है। दसवीं शताब्दी की भाषा के गद्य में तत्सम् शब्दों का व्यवहार बढ़ने लगा था, परन्तु पद्य की भाषा में तद्भव शब्दों का ही एकछत्र राज्य था। चौदहवीं शताब्दी तक के साहित्य में इसी प्रवृत्ति की प्रधानता मिलती है।3 इसी समय से हिन्दी भाषा का आदिकाल माना जा सकता है।" (हिन्दी साहित्य–उद्भव और विकास, पृ. 37)

हिन्दी का आदिकाल अनेक दृष्टियों से सन्धिकाल है। भाषा और साहित्य दोनों दृष्टियों से यह संक्रान्ति का काल है। कथ्य की दृष्टि से आदिकालीन साहित्य में एक साथ कई परम्पराओं का उदय दिखाई देता है। अपभ्रंश और संस्कृत की रचनाओं में इनमें से कुछ परम्पराओं के स्रोत अवश्य हैं, किन्तु उनकी शक्ति और गम्भीरता हिन्दी की अपनी देन है।

आदिकालीन हिन्दी साहित्य की परम्पराओं या प्रवृत्तियों का अध्ययन करने के लिए इसे कुछ वर्गों में विभाजित किया जा सकता है, जैसे–सिद्ध साहित्य, जैन साहित्य, नाथ साहित्य, सन्त साहित्य, रासो साहित्य, लौकिक साहित्य गद्य रचनाएँ आदि।

सिद्ध साहित्य

सिद्ध साहित्य के अन्तर्गत चौरासी सिद्धों की वे साहित्यिक रचनाएँ आती हैं, जो अपभ्रंश और तत्कालीन लोकभाषा के मिश्रित रूप में लिखी गई हैं। सिद्धों का सम्बन्ध बौद्धधर्म की वज्रयान शाखा से था। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में चौरासी सिद्धों के नाम दिए हैं। सिद्धों में प्रथम सिद्ध कवि सरहपा थे। उनका व्यक्तित्त्व नितान्त विद्रोही था। उन्होंने पाखण्ड और आडम्बर का विरोध किया, वर्णाश्रम व्यवस्था पर तीव्र प्रहार किया। परम्पराओं और व्यवस्थाओं के खण्डन का जो रूप कबीर में दिखाई देता है, वह सरहपा में विद्यमान है।

सरहपा की हिन्दी की रचनाओं में दोहाकोश प्रसिद्ध है। सरहपा ने दोहा और पदों की शैली अपनाई। यह शैली उनके बाद के हिन्दी कवियों ने परम्परा के रूप में अपनाई। सिद्ध साहित्य की भाषा अपभ्रंश और हिन्दी की सन्धि बेला की भाषा

है। भाषा और आध्यात्मिक चेतना की दृष्टि से इस साहित्य ने हिन्दी के निर्गुण सन्तों को काफी प्रभावित किया है। सरहपा के अलावा लुहिपा, कण्हपा, मीनपा आदि अन्य सिद्ध कवि हैं।

सिद्ध साहित्य में एक और प्रवृत्ति मिलती है, जो भक्तिकाल में आकर पूर्ण विकसित हुई। वह प्रवृत्ति है–भक्ति और कविता का सम्बन्ध। सरहपा सहज जीवन पर बहुत अधिक बल देते थे। उन्हें सहजयान का प्रवर्तक कहा जाता है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि सिद्ध कवियों ने हिन्दी साहित्य की कविता में, जो प्रवृत्तियाँ आरम्भ कीं, उनका प्रभाव भक्तिकाल तक चलता रहा।

जैन साहित्य

हिन्दी में साहित्य रचना आरम्भ करने का श्रेय जैन कवियों को है, जैन मतावलम्बी रचनाएँ दो प्रकार की हैं– (1) जिनमें नाथों-सिद्धों की तरह अन्तस्साधना, उपदेश, नीति, सदाचार पर बल देते हैं और कर्मकाण्ड का खण्डन है। ये मुक्तक हैं और प्रायः दोहों में रचित हैं। (2) जिनमें पौराणिक, जैन साधकों की प्रेरक जीवन कथा या लोक प्रचलित कथाओं को आधार बनाकर जैन मत का प्रचार किया गया है, जैन पौराणिक काव्य और चरित-काव्य इसी श्रेणी के काव्य हैं।

जैन कवियों ने अपनी अनुभूतियों एवं शिक्षाओं को लोकमानस तक पहुँचाने के लिए लोकभाषा का आश्रय ग्रहण किया। विभिन्न पर्वों एवं उत्सवों के अवसर पर रास और फागु गाए जाने की परम्पराओं को ग्रहण कर जैन कवियों ने इन्हें साहित्यिक रूप प्रदान किया।

दरअसल रासक या रासो काव्य की परम्परा का प्रादुर्भाव जैन कवियों द्वारा हुआ। इन कवियों ने अनेक रासक ग्रन्थों (प्रबन्ध काव्य) का प्रणयन किया। उपदेश रसायन, बुद्धि रास, जीवदया रास, चन्दनबाला रास, रेवन्तगिरिरासु, सप्तक्षेत्रि रासु, कच्छूलि रासु आदि ऐसे ही रासो ग्रन्थ हैं। उपदेश रसायन के रचनाकार जिनदत्त सूरि हैं। इस ग्रन्थ की रचना अपभ्रंश भाषा में हुई है, जैन कवियों द्वारा लिखे गए रासो ग्रंथों की संख्या बहुत अधिक है। इन रासो ग्रन्थों में काव्यतत्त्व का अभाव है पर काव्य प्रवृत्तियों के विकास में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान है।

जैन कवियों ने शान्त रस की पृष्ठभूमि में रसराज शृंगार के विभिन्न अंगों के अतिरिक्त करुण, वीर तथा अद्‌भुत आदि रसों की योजना विभिन्न प्रसंगों में

की है। व्यावहारिक जीवन में विरक्त होते हुए भी जैन कवियों ने अपने काव्यों में प्राकृतिक दृश्यों, विभिन्न ऋतुओं, पर्वों, उत्सवों आदि का चित्रण किया है।

नाथ साहित्य

राहुल सांकृत्यायन ने नाथ-पन्थ को सिद्धों की परम्परा का ही विकसित रूप माना है। डॉ. रामकुमार वर्मा का मत है कि नाथपन्थ से ही भक्तिकालीन सन्तमत का विकास हुआ था। (नाथपन्थ के प्रवर्तक मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य गोरखनाथ माने गए हैं।) गोरखनाथ ने हठयोग का उपदेश दिया था। उन्होंने ब्रह्मचर्य, शारीरिक-मानसिक शुचिता, वाक्संयम और मद्य-माँस के त्याग का आग्रह किया। ब्राह्मणों के कर्मकाण्ड और एवं वर्णाश्रम व्यवस्था पर उन्होंने तीव्र प्रहार किया।

गोरखनाथ ने सन्त साहित्य के लिए एक पृष्ठभूमि का निर्माण किया है। साखी, सबद जैसे–अनेक काव्यरूप यहीं से प्रारम्भ होते हैं। काजी व पण्डित दोनों के बाह्याडम्बर को फटकारने का कार्य यहीं से प्रारम्भ होता है। पिण्ड (शरीर) के भीतर ब्रह्माण्ड को देखने की बात यहीं से शुरू होती है। कबीर आदि संत कवियों में आक्रामक भाषा की जो दीप्ति दिखाई देती है, उसकी लौ गोरखनाथ में मिलती है। गोरखनाथ का निम्नलिखित पद द्रष्टव्य है–

हिन्दू ध्यावै देहुरा, मुसलमान मसीत।
जोगी ध्यावै परमपद, जहाँ देहुरा न मसीत॥

नाथपन्थ का जिक्र करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि–"इस पन्थ का प्रचार राजपूताने तथा पंजाब की ओर ही अधिक रहा, अतः जब मत के प्रचार के लिए इस पन्थ में भाषा के भी ग्रन्थ लिखे गए, तब उधर की ही प्रचलित भाषा का व्यवहार किया गया। उन्हें मुसलमानों को भी अपनी बानी सुनानी रहती थी, जिनकी बोली अधिकतर दिल्ली के आस-पास की खड़ीबोली थी। इससे उसका मेल भी उनकी बनियों में अधिकतर रहता था। इस प्रकार नाथपन्थ के इन जोगियों ने परम्परागत साहित्य की भाषा या काव्य भाषा से, जिसका ढाँचा नागर अपभ्रंश या ब्रज का था, अलग एक 'सधुक्कड़ी भाषा' का सहारा लिया, जिसका ढाँचा कुछ खड़ीबोली लिए राजस्थानी था। देशभाषा की इन पुस्तकों में पूजा, तीर्थाटन आदि के साथ हज, नमाज आदि का भी उल्लेख पाया जाता है। इस प्रकार की एक पुस्तक का नाम है–'काफिरबोध'।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 13)

सन्त काव्य

आदिकाल में सन्तकाव्य के रूप में हमें चक्रधर, ज्ञानेश्वर तथा नामदेव के हिन्दी पद मिलते हैं। इन सन्त कवियों ने सिद्धों और नाथपन्थियों द्वारा विकसित पद-शैली अपनाई। सन्त कवियों में परम्परागत धार्मिक विचारों या मत विशेष के प्रचार की अपेक्षा आत्मानुभूति के प्रकाशन की प्रवृत्ति है, जैन कवियों ने जहाँ प्रबन्धात्मक शैली को अधिक महत्त्व दिया, वहाँ सन्त कवियों ने मुक्तक गीत-शैली को। सन्तों ने अपने पदों में राग-रागनियों का भी समावेश किया।

इस प्रकार आदिकाल का धर्म से सम्बन्धित काव्य तत्कालीन लोकजीवन एवं लोकसाहित्य की परम्पराओं से प्रेरित, प्रभावित एवं सम्बन्धित दिखाई पड़ता है।

रासो काव्य

हिन्दी साहित्य के आदिकाल में रासो काव्य की परम्परा प्राप्त होती है। हिन्दी में रासो काव्यों की लम्बी शृंखला है, जिनमें पृथ्वीराज रासो, बीसलदेव रासो, हम्मीर रासो, परमाल रासो, विजयपाल रासो तथा खुमाण रासो आदि प्रमुख हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रासो काव्यों के आधार पर इस काल को वीरगाथा काल कहा है। उन्होंने लिखा है–"राजाश्रित कवि अपने राजाओं के शौर्य, पराक्रम और प्रताप का वर्णन अनूठी उक्तियों के साथ किया करते थे और अपनी वीरोल्लास भरी कविताओं से वीरों को उत्साहित किया करते थे।"

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है–"सातवीं-आठवीं शताब्दी से इस देश में ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम पर काव्य लिखने की प्रथा खूब चली। परन्तु भारतीय कवियों ने ऐतिहासिक नाम भर लिया, शैली उनकी वही पुरानी रही, जिसमें कल्पना विलास का अधिक मान था, तथ्य निरूपण का कम। ऐतिहासिक व्यक्ति को पौराणिक या काल्पनिक कथात्मक जैसा बना देने की प्रवृत्ति रही है।"

द्विवेदी जी ने अन्यत्र लिखा है–"परन्तु यह सत्य है कि इस काल की रचनाओं में वीरतत्त्व का एक नया स्वर सुनाई देता है। इस काल में वीर रस को बहुत प्रमुख स्थान प्राप्त है।"

रासो काव्य की विषय-वस्तु का मूल सम्बन्ध राजाओं के चरित तथा प्रशंसा से है, तथा इनमें वीर रस की प्रधानता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है–"ये वीर गाथाएँ दो रूपों में मिलती हैं प्रबन्धकाव्य के साहित्यिक रूप में और वीर गीतों (बैलाड्स) के रूप में। साहित्यिक प्रबन्ध के रूप में जो प्राचीन ग्रन्थ

उपलब्ध है, वह है पृथ्वीराज रासो, वीरगीत के रूप में हमें सबसे पुरानी पुस्तक बीसलदेव रासो मिलती है। यद्यपि उसमें समयानुसार भाषा के परिवर्तन का आभास मिलता है, जो रचना कई सौ वर्षों से लोगों में बराबर गाई जाती रही हो, उसकी भाषा अपने मूल रूप में नहीं रह सकती।"

शुक्ल जी के अनुसार चन्दबरदाई हिन्दी के प्रथम महाकवि हैं और इनका पृथ्वीराज रासो हिन्दी का प्रथम महाकाव्य है। द्विवेदी जी के अनुसार रासो में अनेक कथानक रूढ़ियों और काव्य रूढ़ियों का प्रयोग किया गया है। उसमें अनेक छन्दों का प्रयोग मिलता है। पृथ्वीराज रासो रासो काव्य परम्परा का काव्य तो है ही, इसमें चरित-काव्य, कथा-काव्य, आख्यायिका आदि के भी लक्षण मिलते हैं। इस काव्य में दो रस प्रमुख हैं– शृंगार और वीर। इस काव्य के नायक प्रसिद्ध हिन्दू सम्राट दिल्ली नरेश पृथ्वीराज हैं।

कवि ने एक ओर तो युद्धों के वर्णन के माध्यम से वीरता और पराक्रम की अद्‌भुत सृष्टि की है, दूसरी ओर रूप सौन्दर्य और प्रेम के भी सरस चित्र उतारे हैं। दोनों रसों के केन्द्र में नारी है। उसे पाने के लिए युद्ध होते हैं और पा लेने पर जीवन का विलास पक्ष अपनी पूरी रमणीयता के साथ उभरता है। वीर और शृंगार रसों के पोषण के लिए पृथ्वीराज रासो में आवश्यकतानुसार अन्य रसों की भी योजना की गई है। कवि ने नगरों, वनों, सरोवरों, किलों आदि का भी वर्णन तन्मयता से किया है। कुल मिलाकर इसमें वीर रस की प्रमुखता है।

दूसरी तरफ बीसलदेव रासो शृंगार प्रधान काव्य है। यह एक प्रेम काव्य है, जिसमें संयोग और वियोग दोनों मनोदशाओं का सुन्दर चित्रण हुआ है। यह एक 'सन्देश काव्य' है। मेघदूत और सन्देशरासक की सन्देश परम्परा इसमें मिलती है। बीसलदेव रासो की एक विशेषता यह भी है कि यह एक गेय काव्य है। सामन्ती जीवन के प्रति गहरी अरुचि का सजीव चित्रण इस काव्य में मिलता है। इस काव्य में मध्यकाल की एक ऐसी नारी है, जो अपने पति के अहंकार को तोड़कर उसकी प्रतिस्पर्धा में आत्मगौरव की अनुभूति करती हुई खड़ी होना चाहती है, लेकिन पुरुष का हठ और उसका अहंकार नारी को झुकने के लिए बाध्य कर देता है।

बीसलदेव रासो की रचना नरपति नाल्ह ने की है। इसमें साम्भर नरेश बीसलदेव (विग्रहराज चतुर्थ) तथा मालवा के भोज परमार की पुत्री राजमती के जीवन की एक कालखण्ड की कथा कही गई है। राजमती का विवाह बीसलदेव के साथ हुआ था। विवाह के कुछ ही दिनों बाद रानी की बात पर रूठकर

बीसलदेव उड़ीसा चले गए और वहाँ एक वर्ष रहे। राजमती के विरह वर्णन के इस सुन्दर अवसर का कवि ने भरपूर उपयोग किया है। रानी राजमती ने राजा के पास सन्देश भेजा। वे उड़ीसा से लौटे। राजा भोज अपनी पुत्री को घर ले आए। बीसलदेव वहाँ जाकर राजमती को चित्तौड़ ले आए। विरहजन्य कष्ट सहने के बाद भी न तो राजमती का स्वभाव बदला, न ही उसके जुबान की तेजी कम हुई है।

बीसलदेव रासो में हिन्दी काव्य में प्रयुक्त होने वाला बारहमासा वर्णन सबसे पहले है। बीसलदेव रासो की शृंगारिक काव्यधारा हिन्दी की सूफी काव्यधारा, कृष्णभक्ति काव्य तथा रीतिकालीन काव्य को बहुत अधिक प्रभावित करती है। इसी समय अर्थात आदिकाल में भाषा के दो रूप 'डिंगल' और 'पिंगल' मिलते हैं। बीसलदेव रासो और पृथ्वीराज रासो के अलावा परमालरासो, विजयपाल रासो, हम्मीर रासो और खुमाण रासो आदि अन्य प्रसिद्ध रासो काव्य हैं।

लौकिक साहित्य

आदिकाल में उपर्युक्त प्रमुख प्रवृत्तियों के अतिरिक्त स्वच्छन्द रूप में लौकिक विषयों पर ग्रन्थ लिखने की प्रवृत्ति मिलती है। ढोला–मारू रा दूहा ग्यारहवीं शताब्दी में रचित एक लोकभाषा काव्य है। इसमें ढोला नामक राजकुमार और मारवणी नामक राजकुमारी की प्रेमकथा का वर्णन है। यह लोकप्रसिद्ध प्रेमगाथा आदिकालीन शृंगार काव्य परम्परा की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। इस काव्य में नारी हृदय की अत्यन्त मार्मिक व्यंजना मिलती है। ढोला–मारू रा दूहा मूल रूप से दोहों में लिखा गया है। ये दोहे शृंगार रस की जो परम्परा आरम्भ करते हैं, वह आगे जाकर बिहारी के काव्य में प्रतिफलित हुई।

बसन्त–विलास में चौरासी दोहों में बसन्त और स्त्रियों पर उसके विलासपूर्ण प्रभाव का मनोहारी चित्रण किया गया है। डॉ. नगेन्द्र द्वारा सम्पादित हिन्दी साहित्य का इतिहास में लिखा है कि–"आदिकाल के विद्वानों ने अब तक वीरगाथाओं और धार्मिक उपदेशों का ही युग माना था। बसन्त–विलास के सरस वर्णनों को पढ़कर सूर की शृंगार भावन या उसके पश्चात् रीतिकालीन कवियों की शृंगारिकता, साहित्य में अचानक आ जाने वाली प्रवृत्ति नहीं रह जाती और न उसके लिए संस्कृत साहित्य में परम्परा की खोज करना ही आवश्यक प्रतीत होता है।3 स्त्री–पुरुष–प्रकृति तीनों में अजस्र बहती मदोन्मत्तता का इस काव्य में जैसा चित्रण

मिलता है, वैसा रीतिकालीन हिन्दी कवि भी नहीं कर सके।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 77)

गद्य साहित्य

आदिकाल में काव्य रचना के साथ-साथ गद्य रचना की दिशा में भी कुछ प्रयास लक्षित होते हैं। राउलवेल नामक कृति में कवि ने 'राउल' नामक नायिका के सौन्दर्य का वर्णन आरम्भ में पद्य में किया है, फिर गद्य का प्रयोग किया है। राउलवेल से ही हिन्दी में नख-शिख वर्णन की शृंगार परंपरा आरम्भ हुई। इसकी भाषा में हिन्दी की सात बोलियों के शब्द मिलते हैं, जिनमें राजस्थानी प्रधान है। 'उक्ति व्यक्ति प्रकरण' से आदिकाल के काव्य रूपों के सम्बन्ध में थोड़ी बहुत जानकारी प्राप्त होती है। इससे गद्य और पद्य दोनों शैलियों की हिन्दी में तत्सम शब्दावली के प्रयोग की बढ़ती हुई प्रवृत्ति का पता चलता है। वर्णरत्नाकर मैथिली हिन्दी का प्राचीनतम उपलब्ध ग्रन्थ है, जो गद्य में है। हिन्दी गद्य के विकास में राउलवेल के पश्चात इसका योगदान प्रमुख है।

चन्दायन के रूप में सूफी काव्य परम्परा का आरम्भिक रूप–मुल्ला दाउद की रचना चन्दायन' से सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों की शुरुआत हुई। इसमें दोहा और चौपाई को मिलाकर लोरिक की कथा कही गई है। सूफी कवियों के काव्य के लिए यह रचना प्रेरक सिद्ध हुई है।

अमीर खुसरो

जन-जीवन के साथ घुल-मिलकर काव्य रचना करने वाले कवियों में खुसरो का स्थान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने जनता के मनोरंजन के लिए पहेलियाँ और मुकरियाँ लिखी थीं। आदिकाल में खड़ीबोली को काव्य की भाषा बनाने वाले वे पहले कवि हैं।

अमीर खुसरो एक संगीतज्ञ, इतिहासकार, कवि आदि बहुत कुछ थे। वे कई भाषाओं के जानकार थे। उन्होंने ऐसी पंक्तियाँ रची हैं, जिनमें फारसी और हिन्दी को एक ही ध्वनि प्रवाह में गुम्फित कर दिया गया है। इनकी अधिकांश रचनाएँ फारसी में है। अमीर खुसरो को इस बात का श्रेय है कि उन्होंने भारतीय शैली में फारसी साहित्य लिखा (पर्सियन लिटरेचर इन इण्डियन स्टाइल)। अमीर खुसरो ने अपनी रचनाओं में राग-रागिनियों का भी उपयोग किया।

अमीर खुसरो के भाषा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने बोलचाल की भाषा में रचना की। उनका प्रसिद्ध दोहा नीचे दिया जा रहा है, जिसकी चर्चा बार-बार की जाती है और जिससे लगता है कि इनकी भाषा बिहारी से अधिक बोल-चाल की भाषा है।

गोरी सोवे सेज पर, मुख पर डारे केस।
चल खुसरो घर आपने, रैनि भई चहुँ देस।

अमीर खुसरो की कविता के विभिन्न रूप मिलते हैं। उनकी पहेलियाँ, मुकरियाँ इस कदर जनता से जुड़ी हुई हैं कि उनमें से कुछ अभी तक लोगों की जबान पर हैं। खुसरो के पहेली की एक विशेषता यह है कि उसमें अन्त में समाधान नहीं दिया गया है। पहेलियाँ संवाद की भाषा में हैं, इसलिए अधिक लोकप्रिय हुईं। अमीर खुसरो की कविता का रूप मुकरी भी है। इसमें वाग्विदग्धता, हास्य-व्यंग्य का मिला रूप दिखाई देता है। खुसरो ने छोटी-छोटी सवालनुमा कविताएँ लिखी हैं। उन्होंने राग-रागिनियों का उल्लेख करते हुए कुछ गीत भी लिखे। उन्होंने कुछ दोहे भी लिखे। उनके दोहों में दार्शनिक गहराई होने के बाद भी पारदर्शिता है। गजल को आगे बढ़ाने का श्रेय भी अमीर खुसरो को है।इस प्रकार हम देखते हैं कि अमीर खुसरो की रचनाओं में एक साथ अनेक परम्पराएँ मिलती हैं।

विद्यापति

विद्यापति को आचार्य शुक्ल ने फुटकल कवियों में रख दिया है, किन्तु आदिकाल के ये सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कवि हैं। विद्यापति ने तीन भाषाओं में साहित्य लिखा–संस्कृत, अपभ्रंश के एक रूप अवहट्ट और लोकभाषा मैथिली। विद्यापति को अपभ्रंश साहित्य का अन्तिम महत्त्वपूर्ण कवि और हिन्दी साहित्य का प्रथम महत्त्वपूर्ण कवि कहा जा सकता है।

विद्यापति की रचनाओं में मुख्य रूप से दो परम्पराएँ मिलती हैं–

चरित काव्य की परम्परा

गीतों की परम्परा

उपर्युक्त दोनों से एक तीसरी परम्परा का संकेत मिलता है, वह है, काव्य एवं संगीत की एकता की परम्परा। इसकी शुरुआत का श्रेय विद्यापति को ही है। विद्यापति की तीन रचनाएँ प्रसिद्ध हैं–कीर्तिलता, कीर्तिपताका एवं पदावली।

कीर्तिलता और कीर्तिपताका चरितकाव्य की परम्परा में आती हैं। ये दोनों रचनाएँ आगे चलकर चरित काव्य का आधार बनती हैं। कीर्तिलता के सम्बन्ध में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है–"सब मिलाकर कीर्तिलता अपने समय का बहुत ही सुन्दर चित्र उपस्थित करती है। वह इतिहास का कविदृष्ट जीवन्त रूप है।"

विद्यापति की कीर्तिलता में गद्य का प्रचुर प्रयोग हुआ है। इसकी भाषा अवहट्ट है। कीर्तिपताका में प्रेमकथा वर्णित है।विद्यापति की ख्याति का आधार उनकी पदावली है। आधुनिक भारतीय भाषाओं में कृष्ण-काव्य का प्रारम्भ विद्यापति की पदावली से माना जाता है। राधाकृष्ण की प्रेम लीलाओं का वर्णन करने के लिए विद्यापति ने पदावली की रचना की। इनकी पदावली में भक्ति और शृंगार का समन्वय मिलता है। वस्तुतः जयदेव का गीत गोविन्द, विद्यापति की पदावली और सूरदास का सूरसागर लगभग एक तरह की रचनाएँ हैं, जिनमें भक्ति का आधार शृंगार है। विद्यापति की पदावली से अनेक प्रकार की परम्पराएँ शुरू होती हैं, जिनमें कुछ प्रमुख हैं–पद रचना की परम्परा, कविता और संगीत की एकता की परम्परा, लोककाव्य की लिखित परम्परा। विद्यापति की पदावली से उपर्युक्त बातें स्पष्ट होती हैं। आदिकाल में हिन्दी भाषा साहित्यिक अपभ्रंश के साथ-साथ चलती हुई क्रमशः जनभाषा के रूप में साहित्य रचना का माध्यम बन रही थी। आदिकालीन हिन्दी साहित्य में वीर रस की रचनाओं में डिंगल शैली का प्रयोग होता था तथा कोमल भावों की अभिव्यंजना पिंगल शैली में की जाती थी। पिंगल अर्थात क्षेत्रीय बोलियों से प्रभावित ब्रज साहित्यिक भाषा बनती जा रही थी, आगे चलकर भक्तिकाल में ब्रजभाषा साहित्यिक भाषा बन गई।

हिन्दी साहित्य का आदिकाल विविध साहित्यिक प्रवृत्तियों के विकास का काल है। इस काल में अनेक साहित्यिक प्रवृत्तियाँ निर्मित हो रहीं थी और साहित्यिक भाषा भी एक नया रूप लेने लगी थी। इस काल में एक तरफ तो हमें सिद्धों, नाथों और जैन कवियों की रचनाएँ मिलती हैं तो दूसरी ओर वीरता और शृंगार से परिपूर्ण रासो काव्य। आदिकाल को भाषा का सन्धिकाल कहा जाता है। इस काल में अपभ्रंश में रचनाएँ हो रही थीं तो अपभ्रंश का परिवर्तित स्वरूप भी स्पष्ट दिखाई दे रहा था। मुक्तकों की रचना के साथ-साथ प्रबन्ध काव्यों का भी प्रणयन हो रहा था। यह काल क्रमशः लोकोन्मुख होती हुई काव्य संवेदना और भाषा का काव्य है। इसी काल में हमें गद्य का स्वरूप निर्मित होते हुए भी दिखाई देता है।

3

भक्ति कालीन हिंदी साहित्य का इतिहास

आदिकाल के बाद आये इस युग को पूर्व मध्यकाल भी कहा जाता है, जिसकी समयावधि संवत् 1325 ई से संवत् 1650 ई तक की मानी जाती है। यह हिंदी साहित्य (साहित्यिक दो प्रकार के हैं- धार्मिक साहित्य और लौकिक साहित्य) का श्रेष्ठ युग है, जिसको जॉर्ज ग्रियर्सन ने स्वर्णकाल, श्यामसुन्दर दास ने स्वर्णयुग, आचार्य राम चंद्र शुक्ल ने भक्ति काल एवं हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लोक जागरण कहा। सम्पूर्ण साहित्य के श्रेष्ठ कवि और उत्तम रचनाएं इसी युग में प्राप्त होती हैं।

दक्षिण में आलवार बंधु नाम से कई प्रख्यात भक्त हुए हैं। इनमें से कई तथाकथित नीची जातियों के भी थे। वे बहुत पढे-लिखे नहीं थे, परंतु अनुभवी थे। आलवारों के पश्चात दक्षिण में आचार्यों की एक परंपरा चली, जिसमें रामानुजाचार्य प्रमुख थे। रामानुजाचार्य की परंपरा में रामानंद हुए। उनका व्यक्तित्त्व असाधारण था। वे उस समय के सबसे बड़े आचार्य थे। उन्होंने भक्ति के क्षेत्र में ऊंच-नीच का भेद तोड़ दिया। सभी जातियों के अधिकारी व्यक्तियों को आपने शिष्य बनाया। उस समय का सूत्र हो गया:

जाति-पांति पूछे नहिं कोई।
हरि को भजै सो हरि का होई॥

रामानंद ने विष्णु के अवतार राम की उपासना पर बल दिया। रामानंद ने और उनकी शिष्य-मंडली ने दक्षिण की भक्तिगंगा का उत्तर में प्रवाह किया। समस्त उत्तर-भारत इस पुण्य-प्रवाह में बहने लगा। भारत भर में उस समय पहुंचे हुए संत और महात्मा भक्तों का आविर्भाव हुआ।

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने पुष्टि-मार्ग की स्थापना की और विष्णु के कृष्णावतार की उपासना करने का प्रचार किया। उनके द्वारा जिस लीला-गान का उपदेश हुआ उसने देशभर को प्रभावित किया। अष्टछाप के सुप्रसिद्ध कवियों ने उनके उपदेशों को मधुर कविता में प्रतिबिंबित किया।

इसके उपरांत माध्व तथा निंबार्क संप्रदायों का भी जन-समाज पर प्रभाव पड़ा है। साधना-क्षेत्र में दो अन्य संप्रदाय भी उस समय विद्यमान थे। नाथों के योग-मार्ग से प्रभावित संत संप्रदाय चला, जिसमें प्रमुख व्यक्तित्त्व संत कबीरदास का है। मुसलमान कवियों का सूफीवाद हिंदुओं के विशिष्टाद्वैतवाद से बहुत भिन्न नहीं है। कुछ भावुक मुसलमान कवियों द्वारा सूफीवाद से रंगी हुई उत्तम रचनाएं लिखी गई।

संक्षेप में भक्ति-युग की चार प्रमुख काव्य-धाराएं मिलती हैं–

सगुण भक्ति

रामाश्रयी शाखा

कृष्णाश्रयी शाखा

निर्गुण भक्ति

ज्ञानाश्रयी शाखा

प्रेमाश्रयी शाखा

भक्ति काल के उदय के बारे में सबसे पहले जॉर्ज ग्रियर्सन ने मत व्यक्त किया वे इसे 'ईसायत की देंन' मानते हैं। ताराचंद के अनुसार- भक्तिकाल का उदय अरबों की देन है।

रामचंद्र शुक्ल के मतानुसार-देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिंदू जनता के हृदय में गौरव गर्व और उत्साह के लिए वह अवकाश न रह गया। उसके सामने ही उनके देव मंदिर गिराए जाते थे। देव मूर्तियां तोड़ी जाती थी और पूज्य पुरुषों का अपमान होता था और वे कुछ भी नहीं कर सकते थे। ऐसी दशा में अपनी वीरता के गीत न तो वे गा ही सकते थे और न ही बिना लज्जित हुए सुन सकते थे।

अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शरणागति में जाने के अलावा दूसरा मार्ग ही क्या था। भक्ति का जो सीता दक्षिण की ओर से धीरे-धीरे उत्तर भारत की ओर पहले से ही आ रहा था उसे राजनीतिक परिवर्तन के कारण शून्य पढ़ते हुए जनता के हिरदय क्षेत्र में फैलने के लिए पूरा स्थान मिला।

भक्ति काल के कवि और उनकी रचना

भक्ति काल के प्रमुख कवि- सूरदास, संत शिरोमणि रविदास, ध्रुवदास, रसखान, व्यासजी, स्वामी हरिदास, मीराबाई, गदाधरभट्ट, हितहरिवंश, गोविन्दस्वामी, छीतस्वामी, चतुर्भुजदास, कुंभनदास, परमानंद, कृष्णदास, श्रीभट्ट, सूरदास, मदनमोहन, नंददास, चैतन्य महाप्रभु आदि।

भक्ति काल के कवियों का विभाजन

भक्ति काल के कवि मुख्यत: दो धाराओं में विभाजित हैं-1. निर्गुण काव्य धारा, 2. सगुण काव्य धारा

निर्गुण काव्य धारा के कवि

ईश्वर ने निर्गुण अर्थात निराकार रूप की आराधना करते थे। इनमें भी दो धाराएँ थीं-(1) संत काव्य धारा (2) सूफी काव्य धारा।

संत कवि

निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख संत कवियों का परिचयकबीर, कमाल, रैदास या रविदास, धर्मदास, गुरू नानक, दादूदयाल, सुंदरदास, रज्जब, मलूकदास, अक्षर अनन्य, जंभनाथ, सिंगा जी, हरिदास निरंजनी।

परिचय

तेरहवीं सदी तक धर्म के क्षेत्र में बड़ी अस्तव्यस्तता आ गई। जनता में सिद्धों और योगियों आदि द्वारा प्रचलित अंधविश्वास फैल रहे थे, शास्त्रज्ञानसंपन्न वर्ग में भी रूढ़ियों और आडंबर की प्रधानता हो चली थी। मायावाद के प्रभाव से लोकविमुखता और निष्क्रियता के भाव समाज में पनपने लगे थे। ऐसे समय में भक्तिआंदोलन के रूप में ऐसा भारतव्यापी विशाल सांस्कृतिक आंदोलन उठा जिसने समाज में उत्कर्षविधायक सामाजिक और वैयक्तिक मूल्यों की प्रतिष्ठा की।

भक्ति आंदोलन का आरंभ दक्षिण के आलवार संतों द्वारा दसवीं सदी के लगभग हुआ। वहाँ शंकराचार्य के अद्वैतमत और मायावाद के विरोध में चार वैष्णव संप्रदाय खड़े हुए। इन चारों संप्रदायों ने उत्तर भारत में विष्णु के अवतारों का प्रचार प्रसार किया। इनमें से एक के प्रवर्तक रामानुजाचार्य थे, जिनकी शिष्य परंपरा में आने वाले रामानंद ने (पंद्रहवीं सदी) उत्तर भारत में रामभक्ति का प्रचार किया। रामानंद के राम ब्रह्म के स्थानापन्न थे, जो राक्षसों का विनाश और अपनी लीला का विस्तार करने के लिए संसार में अवतीर्ण होते हैं।

भक्ति के क्षेत्र में रामानंद ने ऊँच-नीच का भेदभाव मिटाने पर विशेष बल दिया। राम के सगुण और निर्गुण दो रूपों को मानने वाले दो भक्तों-कबीर और तुलसी को इन्होंने प्रभावित किया। विष्णुस्वामी के शुद्धाद्वैत मत का आधार लेकर इसी समय बल्लभाचार्य ने अपना पुष्टिमार्ग चलाया। बारहवीं से सोलहवीं सदी तक पूरे देश में पुराणसम्मत कृष्णचरित् के आधार पर कई संप्रदाय प्रतिष्ठित हुए, जिनमें सबसे ज्यादा प्रभावशाली वल्लभ का पुष्टिमार्ग था। उन्होंने शांकर मत के विरुद्ध ब्रह्म के सगुण रूप को ही वास्तविक कहा। उनके मत से यह संसार मिथ्या या माया का प्रसार नहीं है, बल्कि ब्रह्म का ही प्रसार है, अतः सत्य है। उन्होंने कृष्ण को ब्रह्म का अवतार माना और उसकी प्राप्ति के लिए भक्त का पूर्ण आत्मसमर्पण आवश्यक बतलाया। भगवान् के अनुग्रह या पुष्टि के द्वारा ही भक्ति सुलभ हो सकती है। इस संप्रदाय में उपासना के लिए गोपीजनवल्लभ, लीलापुरुषोत्तम कृष्ण का मधुर रूप स्वीकृत हुआ। इस प्रकार उत्तर भारत में विष्णु के राम और कृष्ण अवतारों प्रतिष्ठा हुई।

यद्यपि भक्ति का स्रोत दक्षिण से आया तथापि उत्तर भारत की नई परिस्थितियों में उसने एक नया रूप भी ग्रहण किया। मुसलमानों के इस देश में बस जाने पर एक ऐसे भक्तिमार्ग की आवश्यकता थी, जो हिंदू और मुसलमान दोनों को ग्राह्य हो। इसके अतिरिक्त निम्न वर्ग के लिए भी अधिक मान्य मत वही हो सकता था, जो उन्हीं के वर्ग के पुरुष द्वारा प्रवर्तित हो। महाराष्ट्र के संत नामदेव ने 14वीं शताब्दी में इसी प्रकार के भक्तिमत का सामान्य जनता में प्रचार किया जिसमें भगवान् के सगुण और निर्गुण दोनों रूप गृहीत थे। कबीर के संतमत के ये पूर्वपुरुष हैं। दूसरी ओर सूफी कवियों ने हिंदुओं की लोककथाओं का आधार लेकर ईश्वर के प्रेममय रूप का प्रचार किया।

इस प्रकार इन विभिन्न मतों का आधार लेकर हिंदी में निर्गुण और सगुण के नाम से भक्तिकाव्य की दो शाखाएँ साथ-साथ चलीं। निर्गुणमत के दो

उपविभाग हुए–ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी। पहले के प्रतिनिधि कबीर और दूसरे के जायसी हैं। सगुणमत भी दो उपधाराओं में प्रवाहित हुआ–रामभक्ति और कृष्णभक्ति। पहले के प्रतिनिधि तुलसी हैं और दूसरे के सूरदास।

भक्तिकाव्य की इन विभिन्न प्रणलियों की अपनी अलग–अलग विशेषताएँ हैं पर कुछ आधारभूत बातों का सन्निवेश सब में है। प्रेम की सामान्य भूमिका सभी ने स्वीकार की। भक्तिभाव के स्तर पर मनुष्यमात्रा की समानता सबको मान्य है। प्रेम और करुणा से युक्त अवतार की कल्पना तो सगुण भक्तों का आधार ही है पर निर्गुणोपासक कबीर भी आने राम को प्रिय, पिता और स्वामी आदि के रूप में स्मरण करते हैं। ज्ञान की तुलना में सभी भक्तों ने भक्तिभाव को गौरव दिया है। सभी भक्त कवियों ने लोकभाषा का माध्यम स्वीकार किया है।

ज्ञानश्रयी शाखा के प्रमुख कवि कबीर पर तात्कालिक विभिन्न धार्मिक प्रवृत्तियों और दार्शनिक मतों का सम्मिलित प्रभाव है। उनकी रचनाओं में धर्मसुधारक और समाजसुधारक का रूप विशेष प्रखर है। उन्होंने आचरण की शुद्धता पर बल दिया। बाह्याडंबर, रूढ़ियों और अंधविश्वासों पर उन्होंने तीव्र कशाघात किया। मनुष्य की क्षमता का उद्घोष कर उन्होंने निम्नश्रेणी की जनता में आत्मगौरव का भाव जगाया। इस शाखा के अन्य कवि रैदास, दादू हैं।

अपनी व्यक्तिगत धार्मिक अनुभूति और सामाजिक आलोचना द्वारा कबीर आदि संतों ने जनता को विचार के स्तर पर प्रभावित किया था। सूफी संतों ने अपने प्रेमाख्यानों द्वारा लोकमानस को भावना के स्तर पर प्रभावित करने का प्रयत्न किया। ज्ञानमार्गी संत कवियों की वाणी मुक्तकबद्ध है, प्रेममार्गी कवियों की प्रेमभावना लोकप्रचलित आख्यानों का आधार लेकर प्रबंधकाव्य के रूप में ख्यायित हुई है। सूफी ईश्वर को अनंत प्रेम और सौंदर्य का भंडार मानते हैं। उनके अनुसार ईश्वर को जीव प्रेम के मार्ग से ही उपलब्ध कर सकता है। साधाना के मार्ग में आनेवाली बाधाओं को वह गुरु या पीर की सहायता से साहसपूर्वक पार करके अपने परमप्रिय का साक्षात्कार करता है। सूफियों ने चाहे अपने मत के प्रचार के लिए अपने कथाकाव्य की रचना की हो, पर साहित्यिक दृष्टि से उनका मूल्य इसलिए है कि उसमें प्रेम और उससे प्रेरित अन्य संवेगों की व्यंजना सहजबोध्य लौकिक भूमि पर हुई है। उनके द्वारा व्यंजित प्रेम ईश्वरोन्मुख है पर सामान्यत: यह प्रेम लौकिक भूमि पर ही संक्रमण करता है। परमप्रिय के सौंदर्य, प्रेमक्रीड़ा और प्रेमी के विरहोद्वेग आदि का वर्णन उन्होंने इतनी तन्मयता से किया

है और उनके काव्य का मानवीय आधार इतना पुष्ट है कि आध्यात्मिक प्रतीकों और रूपकों के बावजूद उनकी रचनाएँ प्रेमसमर्पित कथाकाव्य की श्रेष्ठ कृतियाँ बन गई हैं। उनके काव्य का पूरा वातावरण लोकजीवन का और गार्हस्थिक है। प्रेमाख्यानकों की शैली फारसी के मसनवी काव्य जैसी है।

इस धारा के सर्वप्रमुख कवि जायसी हैं, जिनका 'पदमावत' अपनी मार्मिक प्रेमव्यंजना, कथारस और सहज कलाविन्यास के कारण विशेष प्रशंसित हुआ है। इनकी अन्य रचनाओं में 'अखरावट' और 'आखिरी कलाम' आदि हैं, जिनमें सूफी संप्रदायसंगत बातें हैं1 इस धारा के अन्य कवि हैं कुतबन, मंझन, उसमान, शेख, नबी और नूरमुहम्मद आदि।

ज्ञानमार्गी शाखा के कवियों में विचार की प्रधानता है तो सूफियों की रचनाओं में प्रेम का एकांतिक रूप व्यक्त हुआ है। सगुण धारा के कवियों ने विचारात्मक शुष्कता और प्रेम की एकांगिता दूरकर जीवन के सहज उल्लासमय और व्यापक रूप की प्रतिष्ठा की। कृष्णभक्तिशाखा के कवियों ने आनंदस्वरूप लीलापुरुषोत्तम कृष्ण के मधुर रूप की प्रतिष्ठा कर जीवन के प्रति गहन राग को स्फूर्त किया। इन कवियों में सूरसागर के रचयिता महाकवि सूरदास श्रेष्ठतम हैं, जिन्होंने कृष्ण के मधुर व्यक्तित्त्व का अनेक मार्मिक रूपों में साक्षात्कार किया। ये प्रेम और सौंदर्य के निसर्गसिद्ध गायक हैं। कृष्ण के बालरूप की जैसी विमोहक, सजीव और बहुविध कल्पना इन्होंने की है वह अपना सानी नहीं रखती। कृष्ण और गोपियों के स्वच्छंद प्रेमप्रसंगों द्वारा सूर ने मानवीय राग का बड़ा ही निश्छल और सहज रूप उद्घाटित किया है। यह प्रेम अपने सहज परिवेश में सहयोगी भाववृत्तियों से संपृक्त होकर विशेष अर्थवान् हो गया है। कृष्ण के प्रति उनका संबंध मुख्यत: सख्यभाव का है। आराध्य के प्रति उनका सहज समर्पण भावना की गहरी से गहरी भूमिकाओं को स्पर्श करनेवाला है। सूरदास वल्लभाचार्य के शिष्य थे। वल्लभ के पुत्र बिट्ठलनाथ ने कृष्णलीलागान के लिए अष्टछाप के नाम से आठ कवियों का निर्वाचन किया था। सूरदास इस मंडल के सर्वोत्कृष्ट कवि हैं। अन्य विशिष्ट कवि नंददास और परमानंददास हैं। नंददास की कलाचेतना अपेक्षाकृत विशेष मुखर है।

मध्ययुग में कृष्णभक्ति का व्यापक प्रचार हुआ और वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग के अतिरिक्त अन्य भी कई संप्रदाय स्थापित हुए, जिन्होंने कृष्णकाव्य को प्रभावित किया। हितहरिवंश (राधावल्लभी संप्र.), हरिदास (टट्टी संप्र.), गदाधर भट्ट और सूरदास मदनमोहन (गौड़ीय संप्र.) आदि अनेक कवियों ने

विभिन्न मतों के अनुसार कृष्णप्रेम की मार्मिक कल्पनाएँ कीं। मीरा की भक्ति दांपत्यभाव की थी जो अपने स्वतरूस्फूर्त कोमल और करुण प्रेमसंगीत से आंदोतिल करती हैं। नरोत्तमदास, रसखान, सेनापति आदि इस धारा के अन्य अनेक प्रतिभाशाली कवि हुए, जिन्होंने हिंदी काव्य को समृद्ध किया। यह सारा कृष्णकाव्य मुक्तक या कथाश्रित मुक्तक है। संगीतात्मकता इसका एक विशिष्ट गुण है।

कृष्णकाव्य ने भगवान् के मधुर रूप का उद्घाटन किया, पर उसमें जीवन की अनेकरूपता नहीं थी, जीवन की विविधता और विस्तार की मार्मिक योजना रामकाव्य में हुई। कृष्णभक्तिकाव्य में जीवन के माधुर्य पक्ष का स्फूर्तिप्रद संगीत था, रामकाव्य में जीवन का नीतिपक्ष और समाजबोध अधिक मुखरित हुआ। एक ने स्वच्छंद रागतत्त्व को महत्व दिया तो दूसरे ने मर्यादित लोकचेतना पर विशेष बल दिया। एक ने भगवान की लोकरंजनकारी सौंदर्यप्रतिमा का संगठन किया तो दूसरे ने उसके शक्ति, शील और सौंदर्यमय लोकमंगलकारी रूप को प्रकाशित किया। रामकाव्य का सर्वोत्कृष्ट वैभव 'रामचरितमानस' के रचयिता तुलसीदास के काव्य में प्रकट हुआ जो विद्याविद् ग्रियर्सन की दृष्टि में बुद्धदेव के बाद के सबसे बड़े जननायक थे, पर काव्य की दृष्टि से तुलसी का महत्व भगवान् के एक ऐसे रूप की परिकल्पना में है, जो मानवीय सामर्थ्य और औदात्य की उच्चतम भूमि पर अधिष्ठित है।

तुलसी के काव्य की एक बड़ी विशेषता उनकी बहुमुखी समन्वयभावना है, जो धर्म, समाज और साहित्य सभी क्षेत्रों में सक्रिय है। उनका काव्य लोकोन्मुख है। उसमें जीवन की विस्तीर्णता के साथ गहराई भी है। उनका महाकाव्य रामचरितमानस राम के संपूर्ण जीवन के माध्यम से व्यक्ति और लोकजीवन के विभिन्न पक्षों का उद्घाटन करता है। उसमें भगवान् राम के लोकमंगलकारी रूप की प्रतिष्ठा है। उनका साहित्य सामाजिक और वैयक्तिक कर्त्तव्य के उच्च आदर्शों में आस्था दृढ़ करने वाला है। तुलसी की 'विनयपत्रिका' में आराध्य के प्रति, जो कवि के आदर्शों का सजीव प्रतिरूप है, उनका निरंतर और निश्छल समर्पणभाव, काव्यात्मक आत्माभिव्यक्ति का उत्कृष्ट दृष्टांत है। काव्याभिव्यक्ति के विभिन्न रूपों पर उनका समान अधिकार है। अपने समय में प्रचलित सभी काव्यशैलियों का उन्होंने सफल प्रयोग किया। प्रबंध और मुक्तक की साहित्यिक शैलियों के अतिरिक्त लोकप्रचलित अवधी और ब्रजभाषा दोनों के व्यवहार में वे समान रूप से समर्थ हैं। तुलसी के अतिरिक्त रामकाव्य के अन्य

रचयिताओं में अग्रदास, नाभादास, प्राणचंद चौहान और हृदयराम आदि उल्लेख्य हैं।

कृष्णाश्रयी शाखा

इस गुण की इस शाखा का सर्वाधिक प्रचार हुआ है। विभिन्न संप्रदायों के अंतर्गत उच्च कोटि के कवि हुए हैं। इनमें वल्लभाचार्य के पुष्टि-संप्रदाय के अंतर्गत अष्टछाप के सूरदास कुम्भनदास रसखान जैसे-महान कवि हुए हैं। वात्सल्य एवं श्रृंगार के सर्वोत्तम भक्त-कवि सूरदास के पदों का परवर्ती हिंदी साहित्य पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है। इस शाखा के कवियों ने प्रायः मुक्तक काव्य ही लिखा है। भगवान श्रीकृष्ण का बाल एवं किशोर रूप ही इन कवियों को आकर्षित कर पाया है, इसलिए इनके काव्यों में श्रीकृष्ण के ऐश्वर्य की अपेक्षा माधुर्य का ही प्राधान्य रहा है। प्रायः सब कवि गायक थे, इसलिए कविता और संगीत का अद्‌भुत सुंदर समन्वय इन कवियों की रचनाओं में मिलता है। गीति-काव्य की जो परंपरा जयदेव और विद्यापति द्वारा पल्लवित हुई थी, उसका चरम-विकास इन कवियों द्वारा हुआ है। नर-नारी की साधारण प्रेम-लीलाओं को राधा-कृष्ण की अलौकिक प्रेमलीला द्वारा व्यंजित करके उन्होंने जन-मानस को रसाप्लावित कर दिया। आनंद की एक लहर देश भर में दौड़ गई। इस शाखा के प्रमुख कवि थे सूरदास, नंददास, मीरा बाई, हितहरिवंश, हरिदास, रसखान, नरोत्तमदास वगैरह। रहीम भी इसी समय हुए।

कृष्ण-काव्य-धारा की विशेषताएँ

कृष्ण-काव्य-धारा के मुख्य प्रवर्तक हैं- श्री वल्लभाचार्य। उन्होंने निम्बार्क, मध्व और विष्णुस्वामी के आदर्शों को सामने रखकर श्रीकृष्ण का प्रचार किया। श्री वल्लभाचार्य द्वारा प्रचारित पुष्टिमार्ग में दीक्षित होकर सूरदास आदि अष्टछाप के कवियों ने कृष्ण-भक्ति-साहित्य की रचना की। वल्लभाचार्य ने पुष्टिमार्ग का प्रचार-प्रसार किया। जिसका अर्थ है- भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति से उनकी कृपा और अनुग्रह की प्राप्ति करना।

कृष्ण-काव्य-धारा की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. श्रीकृष्ण-साहित्य का मुख्य विषय कृष्ण की लीलाओं का गान करना है। वल्लभाचार्य के सिद्धांतो से प्रभावित होकर इस शाखा के कवियों ने कृष्ण की बाल-लीलाओं का ही अधिक वर्ण किया है। सूरदास इसमें प्रमुख है।

2. इस शाखा में वात्सल्य एवं माधुर्य भाव का ही प्राधान्य है। वात्सल्य भाव के अंतर्गत कृष्ण की बाल-लीलाओं, चेष्टाओं तथा माँ यशोदा के हृदय की झाँकी मिलती है। माधुर्य भाव के अंतर्गत गोपी-लीला मुख्य है। सूरदास के बारे में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है- वात्सल्य के क्षेत्र में जितना अधिक उद्घाटन सूर ने अपनी बंद आँखों से किया, इतना किसी और कवि ने नहीं। इन क्षेत्रों का तो वे कोना-कोना झाँक आये।
3. इस धारा के कवियों ने भगवान कृष्ण की उपासना माधुर्य एवं सख्य भाव से की है। इसीलिए इसमें मर्यादा का चित्रण नहीं मिलता।
4. श्रीकृष्ण काव्य में मुक्त रचनाएँ ही अधिक पाई जाती हैं। काव्य-रचना के अधिकांशत: उन्होंने पद ही चुने हैं।
5. इस काव्य में गीति-काव्य की मनोहारिणी छटा है। इसका कारण है- कृष्ण-काव्य की संगीतात्मक्ता। कृष्ण-काव्य में राग-रागिनियों का सुंदर उपयोग हुआ है
6. श्रीकृष्ण काव्य में विषय की एकता होने के कारण भावों में अधिकतर एकरूपता पाई जाती है।
7. श्रीकृष्ण को भगवान मानकर पदों की विनयावली द्वारा पूजे जाने के कारण इसमें भावुकता की तीव्रता अधिक पाई जाती है।
8. इस काव्य-धारा में उपमा, रूपक तथा उत्प्रेक्षा अलंकारों का प्रयोग किया गया है।
9. कृष्ण-काव्य-धारा की भाषा ब्रज है। ब्रजभाषा की कोमलकांत पदावली का प्रयोग इसमें हुआ है। यह मधुर और सरस है।
10. इस काव्य में रसमयी उक्तियों के लिए तथा साकार ईश्वर के प्रतिपादन के लिए भ्रमरगीत लिखने की परंपरा प्राप्त होती है।
11. श्रीकृष्ण-काव्य स्वतंत्र प्रेम-प्रधान काव्य है। इन्होंने प्रेमलक्षणा भक्ति को अपनाया है। इसलिए इसमें मर्यादा की अवहेलना की गई है।
12. कृष्ण-काव्य व्यंग्यात्मक है। इसमें उपालंभ की प्रधानता है। सूर का भ्रमरगीत इसका सुंदर उदाहरण है।
13. श्रीकृष्ण काव्य में लोक-जीवन के प्रति उपेक्षा की भावना पाई जाती है। इसका मुख्य कारण है- कृष्ण के लोकरंजक रूप की प्रधानता।
14. श्री कृष्ण-काव्य-धारा में ज्ञान और कर्म के स्थान पर भक्ति को प्रधानता दी गई है। इसमें आत्म-चिंतन की अपेक्षा आत्म-समर्पण का महत्व है।

15. प्रकृति-वर्णन भी इस धारा में मिलता है। ग्राम्य-प्रकृति के सुंदर चित्र इसमें हैं।

रामाश्रयी शाखा

कृष्णभक्ति शाखा के अंतर्गत लीला-पुरुषोत्तम का गान रहा तो रामभक्ति शाखा के प्रमुख कवि तुलसीदास ने मर्यादा-पुरुषोत्तम का ध्यान करना चाहा। इसलिए आपने रामचंद्र को आराध्य माना और 'रामचरित मानस' द्वारा राम-कथा को घर-घर में पहुंचा दिया। तुलसीदास हिंदी साहित्य के श्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। समन्वयवादी तुलसीदास में लोकनायक के सब गुण मौजूद थे। आपकी पावन और मधुर वाणी ने जनता के तमाम स्तरों को राममय कर दिया। उस समय प्रचलित तमाम भाषाओं और छंदों में आपने रामकथा लिख दी। जन-समाज के उत्थान में आपने सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य किया है। इस शाखा में अन्य कोई कवि तुलसीदास के सम। न उल्लेखनीय नहीं है तथापि अग्रदास, नाभादास तथा प्राण चन्द चौहान भी इस श्रेणी में आते हैं।

रामभक्ति शाखा की प्रवृत्तियाँ रामकाव्य धारा का प्रवर्तन वैष्णव संप्रदाय के स्वामी रामानंद से स्वीकार किया जा सकता है। यद्यपि रामकाव्य का आधार संस्कृत साहित्य में उपलब्ध राम-काव्य और नाटक रहें हैं। इस काव्य धारा के अवलोकन से इसकी निम्न विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं –

राम का स्वरूप–रामानुजाचार्य की शिष्य परम्परा में श्री रामानंद के अनुयायी सभी रामभक्त कवि विष्णु के अवतार दशरथ-पुत्र राम के उपासक हैं। अवतारवाद में विश्वास है। उनके राम परब्रह्म स्वरूप हैं। उनमें शील, शक्ति और सौंदर्य का समन्वय है। सौंदर्य में वे त्रिभुवन को लजावन हारे हैं। शक्ति से वे दुष्टों का दमन और भक्तों की रक्षा करते हैं तथा गुणों से संसार को आचार की शिक्षा देते हैं। वे मर्यादापुरुषोत्तम और लोकरक्षक हैं।

भक्ति का स्वरूप–इनकी भक्ति में सेवक-सेव्य भाव है। वे दास्य भाव से राम की आराधना करते हैं। वे स्वयं को क्षुद्रातिक्षुद्र तथा भगवान को महान बतलाते हैं। तुलसीदास ने लिखा है–सेवक-सेव्य भाव बिन भव न तरिय उरगारि। राम-काव्य में ज्ञान, कर्म और भक्ति की पृथक-पृथक महत्ता स्पष्ट करते हुए भक्ति को उत्कृष्ट बताया गया है। तुलसी दास ने भक्ति और ज्ञान में अभेद माना है–भगतहिं ज्ञानहिं नहिं कुछ भेदा। यद्यपि वे ज्ञान को कठिन मार्ग तथा भक्ति को सरल और सहज मार्ग स्वीकार करते हैं। इसके अतिरिक्त तुलसी की भक्ति

का रूप वैधी रहा है, वह वेदशास्त्र की मर्यादा के अनुकूल है। लोक-मंगल की भावना–रामभक्ति साहित्य में राम के लोक-रक्षक रूप की स्थापना हुई है। तुलसी के राम मर्यादापुरुषोत्तम तथा आदर्शों के संस्थापक हैं। इस काव्य धारा में आदर्श पात्रों की सर्जना हुई है। राम आदर्श पुत्र और आदर्श राजा हैं, सीता आदर्श पत्नी हैं तो भरत और लक्ष्मण आदर्श भाई हैं। कौशल्या आदर्श माता है, हनुमान आदर्श सेवक हैं। इस प्रकार रामचरितमानस में तुलसी ने आदर्श गृहस्थ, आदर्श समाज और आदर्श राज्य की कल्पना की है। आदर्श की प्रतिष्ठा से ही तुलसी लोकनायक कवि बन गए हैं और उनका काव्य लोकमंगल की भावना से ओतप्रोत है।

समन्वय भावना–तुलसी का मानस समन्वय की विराट चेष्टा है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में-उनका सारा काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है। लोक और शास्त्र का समन्वय, गार्हस्थ्य और वैराग्य का समन्वय, भक्ति और ज्ञान का समन्वय, भाषा और संस्कृत का समन्वय, निर्गुण और सगुण का समन्वय, पांडित्य और अपांडित्य का समन्वय रामचरितमानस में शुरु से आखिर तक समन्वय का काव्य है। हम कह सकते हैं कि तुलसी आदि रामभक्त कवियों ने समाज, भक्ति और साहित्य सभी क्षेत्रों में समन्वयवाद का प्रचार किया है। राम भक्त कवियों की भारतीय संस्कृति में पूर्ण आस्था रही। पौराणिकता इनका आधार है और वर्णाश्रम व्यवस्था के पोषक हैं। लोकहित के साथ-साथ इनकी भक्ति स्वांत: सुखाय थी। सामाजिक तत्त्व की प्रधानता रही। काव्य शैलियाँ–रामकाव्य में काव्य की प्राय: सभी शैलियाँ दृष्टिगोचर होती हैं।

तुलसीदास ने अपने युग की प्राय: सभी काव्य-शैलियों को अपनाया है। वीरगाथाकाल की छप्पय पद्धति, विद्यापति और सूर की गीतिपद्धति, गंग आदि भाट कवियों की कवित्त-सवैया पद्धति, जायसी की दोहा पद्धति, सभी का सफलतापूर्वक प्रयोग इनकी रचनाओं में मिलता है। रामायण महानाटक (प्राणचंद चौहान) और हनुमननाटक (ह्रदयराम) में संवाद पद्धति और केशव की रामचंद्रिका में रीति-पद्धति का अनुसरण है।

रस–रामकाव्य में नव रसों का प्रयोग है। राम का जीवन इतना विस्तृत व विविध है कि उसमें प्राय: सभी रसों की अभिव्यक्ति सहज ही हो जाती है। तुलसी के मानस एवं केशव की रामचंद्रिका में सभी रस देखे जा सकते हैं। रामभक्ति के रसिक संप्रदाय के काव्य में श्रृंगार रस को प्रमुखता मिली है। मुख्य रस यद्यपि शांत रस ही रहा। भाषा–रामकाव्य में मुख्यत: अवधी भाषा प्रयुक्त हुई

है, किंतु ब्रजभाषा भी इस काव्य का शृंगार बनी है। इन दोनों भाषाओं के प्रवाह में अन्य भाषाओं के भी शब्द आ गए हैं। बुंदेली, भोजपुरी, फारसी तथा अरबी शब्दों के प्रयोग यत्र-तत्र मिलते हैं। रामचरितमानस की अवधी प्रेमकाव्य की अवधी भाषा की अपेक्षा अधिक साहित्यिक है। छंद–रामकाव्य की रचना अधिकतर दोहा-चौपाई में हुई है। दोहा चौपाई प्रबंधात्मक काव्यों के लिए उत्कृष्ट छंद हैं। इसके अतिरिक्त कुण्डलिया, छप्पय, कवित्त, सोरठा, तोमर, त्रिभंगी आदि छंदों का प्रयोग हुआ है। ज्ूव इंअप

अलंकार–रामभक्त कवि विद्वान पंडित हैं। इन्होंने अलंकारों की उपेक्षा नहीं की। तुलसी के काव्य में अलंकारों का सहज और स्वाभाविक प्रयोग मिलता है। उत्प्रेक्षा, रूपक और उपमा का प्रयोग मानस में अधिक है।

ज्ञानाश्रयी मार्गी

इस शाखा के भक्त-कवि निर्गुणवादी थे और राम की उपासना करते थे। वे गुरु को बहुत सम्मान देते थे तथा जाति-पाँति के भेदों को अस्वीकार करते थे। वैयक्तिक साधना पर वे बल देते थे। मिथ्या आडंबरों और रूढ़ियों का वे विरोध करते थे। लगभग सब संत अनपढ़ थे, परंतु अनुभव की दृष्टि से समृद्ध थे। प्रायः सब सत्संगी थे और उनकी भाषा में कई बोलियों का मिश्रण पाया जाता है, इसलिए इस भाषा को 'सधुक्कड़ी' कहा गया है। साधारण जनता पर इन संतों की वाणी का जबरदस्त प्रभाव पड़ा है। इन संतों में प्रमुख कबीरदास थे। अन्य मुख्य संत-कवियों के नाम हैं-नानक, रैदास, दादूदयाल, सुंदरदास तथा मलूकदास।

प्रोफेसर महावीर सरन जैन ने निर्गुण भक्ति के स्वरूप के बारे में प्रश्न उठाए हैं तथा प्रतिपादित किया है कि संतों की निर्गुण भक्ति का अपना स्वरूप है, जिसको वेदांत दर्शन के सन्दर्भ में व्याख्यायित नहीं किया जा सकता। उनके शब्द हैं–

भक्ति या उपासना के लिए गुणों की सत्ता आवश्यक है। ब्रह्म के सगुण स्वरूप को आधार बनाकर तो भक्ति/उपासना की जा सकती है, किन्तु जो निर्गुण एवं निराकार है, उसकी भक्ति किस प्रकार सम्भव है ? निर्गुण के गुणों का आख्यान किस प्रकार किया जा सकता है ? गुणातीत में गुणों का प्रवाह किस प्रकार माना जा सकता है ? जो निरालम्ब है, उसको आलम्बन किस प्रकार बनाया जा सकता है, जो अरूप है, उसके रूप की कल्पना किस प्रकार सम्भव है, जो रागातीत है, उसके प्रति रागों का अर्पण किस प्रकार किया जा सकता है

? रूपातीत से मिलने की उत्कंठा का क्या औचित्य हो सकता है, जो नाम से भी अतीत है, उसके नाम का जप किस प्रकार किया जा सकता है।

शास्त्रीय दृष्टि से उपर्युक्त सभी प्रश्न 'निर्गुण-भक्ति' के स्वरूप को ताल ठोंककर चुनौती देते हुए प्रतीत होते हैं। कबीर आदि संतों की दार्शनिक विवेचना करते समय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने यह मान्यता स्थापित की है कि उन्होंने निराकार ईश्वर के लिए भारतीय वेदांत का पल्ला पकड़ा है।इस सम्बन्ध में जब हम शांकर अद्वैतवाद एवं संतों की निर्गुण भक्ति के तुलनात्मक पक्षों पर विचार करते हैं तो उपर्युक्त मान्यता की सीमायें स्पष्ट हो जाती हैं–

(क) शांकर अद्वैतवाद में भक्ति को साधन के रूप में स्वीकार किया गया है, किन्तु उसे साध्य नहीं माना गया है। संतों ने (सूफियों ने भी) भक्ति को साध्य माना है।

(ख) शांकर अद्वैतवाद में मुक्ति के प्रत्यक्ष साधन के रूप में 'ज्ञान' को ग्रहण किया गया है। वहाँ मुक्ति के लिए भक्ति का ग्रहण अपरिहार्य नहीं है। वहाँ भक्ति के महत्व की सीमा प्रतिपादित है। वहाँ भक्ति का महत्व केवल इस दृष्टि से है कि वह अन्तःकरण के मालिन्य का प्रक्षालन करने में समर्थ सिद्ध होती है। भक्ति आत्म-साक्षात्कार नहीं करा सकती, वह केवल आत्म साक्षात्कार के लिए उचित भूमिका का निर्माण कर सकती है। संतों ने अपना चरम लक्ष्य आत्म साक्षात्कार या भगवद्-दर्शन माना है तथा भक्ति के ग्रहण को अपरिहार्य रूप में स्वीकार किया है, क्योंकि संतों की दृष्टि में भक्ति ही आत्म-साक्षात्कार या भगवद्दर्शन कराती है।

प्रेमाश्रयी शाखा

मुसलमान सूफी कवियों की इस समय की काव्य-धारा को प्रेममार्गी माना गया है, क्योंकि प्रेम से ईश्वर प्राप्त होते हैं ऐसी उनकी मान्यता थी। ईश्वर की तरह प्रेम भी सर्वव्यापी तत्त्व है और ईश्वर का जीव के साथ प्रेम का ही संबंध हो सकता है, यह उनकी रचनाओं का मूल तत्त्व है। उन्होंने प्रेमगाथाएं लिखी हैं। ये प्रेमगाथाएं फारसी की मसनवियों की शैली पर रची गई हैं। इन गाथाओं की भाषा अवधी है और इनमें दोहा-चौपाई छंदों का प्रयोग हुआ है। मुसलमान होते हुए भी उन्होंने हिंदू-जीवन से संबंधित कथाएं लिखी हैं। खंडन-मंडन में न पड़कर इन फकीर कवियों ने भौतिक प्रेम के माध्यम से ईश्वरीय प्रेम का वर्णन किया है। ईश्वर को माशूक माना गया है और प्रायः प्रत्येक गाथा में कोई

राजकुमार किसी राजकुमारी को प्राप्त करने के लिए नानाविध कष्टों का सामना करता है, विविध कसौटियों से पार होता है और तब जाकर माशूक को प्राप्त कर सकता है। इन कवियों में मलिक मुहम्मद जायसी प्रमुख हैं। आपका 'पद्मावत' महाकाव्य इस शैली की सर्वश्रेष्ठ रचना है। अन्य कवियों में प्रमुख हैं–मंझन, कुतुबन और उसमान।

आज की दृष्टि से इस संपूर्ण भक्तिकाव्य का महत्व उसक धार्मिकता से अधिक लोकजीवनगत मानवीय अनुभूतियों और भावों के कारण है। इसी विचार से भक्तिकाल को हिंदी काव्य का स्वर्ण युग कहा जा सकता है।

संत काव्य धारा के प्रमुख कवि

कबीरदास– कबीर सन्त परम्परा के प्रमुख और प्रतिनिधि कवि हैं। इनके जन्म के विषय में प्रामाणित साक्ष्य उपलब्ध नहीं है, जनश्रुतियों के अनुसार कबीर का जन्म 1398 ई.में और मृत्यु 1518 ई.में हुई। कबीर नीरु और नीमा नामक जुलाहा दम्पति को तालाब की किनारे मिले थे। इन्होंने बच्चे का लालन–पालन किया। यही बच्चा बाद में बड़ा होकर कबीर के नाम से जाना गया। कबीर के गुरु रामानन्द थे। कबीर अनपढ थे। उनके शिष्यों ने कबीर की वाणी को सजोकर रखा तथा बाद में पुस्तक का आकार दिया। इनकी रचना 'बीजक' नाम से जानी जाती है। कबीर ने जीवन भर धार्मिक तथा सामाजिक अंधविश्वासों का तीखा विरोध किया तथा समाजिक बुराइयों का भी विरोध किया।

रामानन्द– रामानन्द जी के आविर्भाव काल, निधन काल, जीवन चरित आदि के सम्बंध में कोई प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं है। ये लगभग 15 वीं शती के उत्तार्द्ध में हुए थे। इनकी शिक्षा–दीक्षा काशी में हुआ। ये रामानुजाचार्य परम्परा के शिष्य थे।

नामदेव– ये महाराष्ट्र के भक्त के रुप में प्रसिद्ध है। सतारा जिले के नरसी बैनी गांव में सन् 1267 ई.में इनका जन्म हुआ था। इनके गुरु का नाम सन्त विसोवा खेवर था। नामदेव मराठी और हिंदी दोनो भाषाओ में भजन गाते थे। उन्होने हिन्दू और मुस्लमान की मिथ्या रूढ़ियों का विरोध किया।

सूफी काव्य धारा के प्रमुख कवि

मलिक मुहम्मद जायसी– इनका जन्म 1492 ई.के लगभग हुआ था। रायबरेली जिले के जायस नामक स्थान पर जन्म लेने वाले मलिक मुहम्मद

जायसी के बचपन का नाम मलिक शेख मुंसफी था। जायस के निवासी होने कारण वे जायसी कहलाते थे। मलिक मुहम्मद जायसी सूफी काव्य धारा (प्रेममार्गी शाखा) के प्रतिनिधि कवि है। इन्होंने पद्मावत, अखरावट, आखिरी कलाम, चित्ररेखा आदि रचनाएं लिखीं।

मुल्ला दाउद- सूफी कवि मुल्ला दाउद की रचना 'चन्दायन' है। इस ग्रंथ की रचना 1379 ई.में हुई थी। यह प्रेमाख्यानक परम्परा का दूसरा काव्य है।

कुतुबन- कुतुबन की रचना 'मृगावती' है, जिसका रचना काल 1503 ई. है। ये चिश्ती वंश के शेख बुरहान के शिष्य थे, तथा जौनपुर के बादशाह हुसैनशाह के आश्रित थे। यह ग्रन्थ अवधी भाषा में लिखा गया है।

निर्गुण काव्य की विशेषता

जैसा कि आप सभी जानते हैं भक्तिकाल में काव्य की दो प्रधान धाराएँ प्रचलित हुई-निर्गुण काव्यधारा और सगुण काव्यधारा, निर्गुण काव्यधारा की भी दो शाखाएं बनी-ज्ञानाश्रयी शाखा और प्रेमाश्रयी शाखा।

ज्ञानाश्रयी शाखा को संतों ने पोषित किया और नतीजा यह हुआ कि काव्य की यह धारा जन-जन में जीवन को पवित्र बनाने वाली सिद्ध हुई।. डॉ. श्यामसुंदर दास का मत है-संत कवियों में अपनी निर्गुण भक्ति द्वारा जनता के हृदय में अपूर्व आशा उत्पन्न की। उसे कुछ अधिक समय तक विप्पति की अथाह जलराशि के ऊपर बने रहने की उत्तेजना दी। संत कवियों ने समाज में फैले हुए विभिन्न आडम्बरों, रुढ़ियों, अंध विश्वासों आदि का पर्दाफाश किया और जनता के सच्चे एवं अच्छे मार्ग की ओर अग्रसर किया।

ज्ञानाश्रयी शाखा या संत काव्यधारा में हम निम्नलिखित विशेषताएँ या प्रवृत्तियों को देख सकते हैं–

निजी धार्मिक सिद्धांतों का अभाव-संत साहित्य में निजी सिद्धांतों का अभाव है .ब्रह्म, जीव, माया, संसार आदि के सम्बन्ध में इन कवियों ने जिन बातों का वर्णन किया है, वे पूर्ववर्ती आचार्यो और कवियों की देन है।

आचार पक्ष की प्रधानता-संत कवियों ने अपने काव्यों में असंयम, अनाचार और आडम्बर का विरोध किया है, इनमे खानपान, अचार -विचार, शुद्धता और सदाचार को विशेष महत्व दिया गया है, इनकी सहज साधना और सहज आचारों को पालन करने की साधना है, इन्ही आचारों के आधार पर अनेक

पंथ बने हैं, आज भारत में नानक, कवीर पंथ, दादू पंथ आदि बने हैं, इनमें मौलिक एकता है।

गुरु के प्रति श्रद्धा–संत कवियों ने अपनी रचनाओं में गुरु को सबसे ऊँचा स्थान दिया है, इन्होने ईश्वर के प्राप्ति हेतु सद्गुरु को आवश्यक बताया है .सद्गुरु अनंत प्रकार से शिष्य का उपकार करता है, वह अपनी अध्यात्मिक शक्ति के सहारे जीव को ब्रह्म का अलौकिक दर्शन कराता है।

निम्न जाति के कवि–निर्गुण काव्यधारा के अधिकांश कवि निम्न जाति में उत्पन्न हुए, समाज के निचले स्तर की गिरी जातियों में जन्म लेने के कारण इन्हें ऊंच–नीच सम्बन्धी कटु अनुभव था, इन कवियों में कबीर जुलाहा, रैदास चमार, सेन नाई, दादू धुनिया, सदन कसाई, नाभा दास डोम के घर में जन्मे थे।

सामाजिक कुरीतियों के विरोधी–इन कवियों ने एक स्वर से जाति पाति ऊंच–नीच आदि कुरूतियों का व्यापक पैमाने पर विरोध किया है .समाज के निचले स्तर से आने के कारण इन कवियों के लिए ज्ञान प्राप्ति के दरवाजे बंद थे, ज्ञान की प्यास बुझाने हेतु इन कवियों ने अनेक दरवाजे खटखटाया, किन्तु कोई भी पंडित या महात्मा इन्हें शिक्षा देने के लिए तैयार न था।

शिक्षा की कमी–संत कवि अधिक पढ़े–लिखे नहीं थे, कबीर के सम्बन्ध में तो यहाँ तक कहा जाता है–

मसि कागद छूयो नहीं, कलम गही नहिं हाथ।
चारिक जुग को महातम, मुखहिं जनाई बात।

इसका परिणाम यह हुआ है कि इन कवियों के ज्ञान का भण्डार पंडितों, महात्माओं, संतों तथा स्थान भ्रमण की देन है, इनके काव्य में मन की गुनी, कान की सुनी और आँख की देखि बातों की चर्चा है।

काव्य रूप–निर्गुण धारा का समस्त साहित्य मुक्तक रूप में लिखा गया है, इनमें प्रबंध का अभाव है, अधिकाँश रचनाएँ दोहे और पद में लिखी गयी है, इन कवियों में अक्कहद पन और मस्तमौला स्वभाव के अनुकूल पद और दोहे स्वछंद होते थे।

भाषा–संत कवियों की भाषा खिचड़ी या सधुक्कड़ी है, ये एक स्थान से दूसरे स्थान तक भटक–भटक कर स्थान–स्थान की भाषा ग्रहण करते थे, कारण इनका भाषा भंडार विविधता से भरा था। इन सधुक्कड़ी भाषा अनगढ़ और अपरिमार्जित है। कहीं–कहीं गूढ़ ज्ञान के कारण भाषा क्लिष्ट हो गयी है, किन्तु यह सत्य है कि इन कवियों का भाषा पर जबरदस्त अधिकार है।

सगुण काव्य धारा

सगुण काव्य धारा के कवि ईश्वर के सगुण अर्थात साकार रूप की आराधना करते थे। इनमें भी मुख्यत: दो शाखाएँ थीं- (1) राम भक्ति काव्य धारा (2) कृष्ण भक्ति काव्य धारा।

राम काव्य धारा के प्रमुख कवि

तुलसीदास- तुलसीदास को किसी परिचय की आवश्यकता नहीं है। इन्होंने रामकथा को अवधी रूप दे कर घर-घर में प्रसारित कर दिया।इनका जन्म काल विवादित रहा है। इनके कुल 13 ग्रंथ मिलते हैं – दोहावली 2. कवितावली 3. गीतावली 4.कृष्ण गीतावली 5. विनय पत्रिका 6. राम लला नहछू 7. वैराग्य-संदीपनी 8.बरवै रामायण 9. पार्वती मंगल 10. जानकी मंगल 11.हनुमान बाहुक 12. रामाज्ञा प्रश्न 13. रामचरितमानस।

नाभादास- अग्रदास जी के शिष्य, बड़े भक्त और साधुसेवी थे। संवत् 1657 के लगभग वर्तमान थे और गोस्वामी तुलसीदास जी की मृत्यु के बहुत पीछे तक जीवित रहे। इनकी 3 रचनाएं उपलब्ध हैं–रामाष्टयाम 2. भक्तमाल 3. रामचरित संग्रह।

स्वामी अग्रदास- अग्रदास जी कृष्णदास पयहारी के शिष्य थे जो रामानंद की परंपरा के थे। सन् 1556 के लगभग वर्तमान थे। इनकी बनाई चार पुस्तकों का पता है। प्रमुख कृतियां हैं–1. हितोपदेश उपखाणाँ बावनी ध्यानमंजरी 3. रामध्यानमंजरी 4. राम-अष्ट्याम।

कृष्ण काव्यधारा के प्रमुख कवि

सूरदास- ये कृष्णभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं। सूरदास नेत्रहीन थे। इनका जन्म 1478 में हुआ था तथा मृत्यु 1573 में हुई थी। इनके पद गेय हैं। इनकी रचनाएं 3 पुस्तकों में संकलित हैं। सूर सारावली–इसमें 1103 पद हैं। 2. साहित्य लहरी 3. सूरसागर–इसमें 12 स्कंध हैं और सवा लाख पद थे, किंतु अब 45000 पद ही मिलते हैं। इसका आधार श्रीमद भागवत पुराण है।

कुंभनदास- यह अष्टछाप के प्रमुख कवि हैं। जिनका जन्म 1468 में गोवर्धन, मथुरा में हुआ था तथा मृत्यु 1582 में हुई थी। इनके फुटकल पद ही मिलते हैं।

नंददास- ये 16वीं शती के अंतिम चरण के कवि थे। इनका जन्म 1513 में रामपुर हुआ था तथा मृत्यु 1583 में हुई थी। इनकी भाषा ब्रज थी। इनकी 13 रचनाएं प्राप्त हैं। 1. रासपंचाध्यायी 2. सिद्धांत पंचाध्यायी 3. अनेकार्थ मंजरी 4. मानमंजरी 5. रूपमंजरी 6. विरहमंजरी 7. भँवरगीत 8. गोवर्धनलीला 9. श्यामसगाई 10. रुक्मिणीमंगल 11. सुदामाचरित 12. भाषादशम-स्कंध 13. पदावली।

रसखान- इनका असली नाम सैरयद इब्राहिम था। इनका जन्म हरदोई में 1533 से 1558 के बीच हुआ था। इन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन कृष्णभक्ति को समर्पित कर दिया था। इन्हें प्रेम रस की खान कहा जाता है। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं। सुजान रसखान 2. प्रेमवाटिका।

मीरा- मीराबाई स्वयं ही एक लोकनायिका हैं।इनका जन्म1498 में हुआ था तथा मृत्यु 1547 में। इन्होंने मध्य काल में स्त्रियों की पराधीन बेड़ियों को तोड़ कर स्वतंत्र हो कर कृष्णप्रेम का प्रदर्शन करने का साहस किया। इन्होंने सामाजिक और पारिवारिक दस्तूरों का बहादुरी से मुकाबला किया और कृष्ण को अपना पति मानकर उनकी भक्ति में लीन हो गयीं। उनके ससुराल पक्ष ने उनकी कृष्ण भक्ति को राजघराने के अनुकूल नहीं माना और समय-समय पर उनपर अत्याचार किये। मीरा स्वयं को कृष्ण की प्रेयसी मानती हैं, तथा अपने सभी पदों में उसी तरह व्यवहार करती है। इनके मृत्यु को ले कर कई किवंदतियां प्रसिद्ध हैं। इनके सभी पद गेय हैं। इनकी रचनाएँ मीराबाई पदावली में संग्रहित हैं।

सगुण भक्ति काव्य की विशेषता

भक्तिकाल अथवा पूर्व मध्यकाल हिंदी साहित्य का महत्वपूर्ण काल है, जिसे 'स्वर्णयुग' विशेषण से विभूषित किया जाता है। इस काल की समय सीमा विद्वानों द्वारा संवत 1375 से 1700 तक मान्य है।राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, दार्शनिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से अंतर्विरोधों से परिपूर्ण होते हुए भी इस काल में भक्ति की ऐसी धारा प्रवाहित हुयी कि विद्वानों ने एकमत से इसे भक्ति काल कहा।

'भज' धातु में 'क्तिन' प्रत्यय के साथ निर्मित शब्द 'भक्ति' अत्यंत व्यापक एवं गहन है। शांडिल्य और नारद भक्ति सूत्र में 'भक्ति' को 'सा परानुरक्तिरीश्वरे' एवं 'सा त्वस्मिन परम प्रेम रूपा' कहकर पारिभाषित किया है। वस्तुतः भक्ति और प्रेम मनुष्य की सहजात भाव स्थितियां हैं, जिनके आधार पर

भक्ति दो रूपों में प्रस्फुटित हुई–निर्गुण और सगुण। सगुण भक्ति का अर्थ है- आराध्य के रूप–गुण, आकर की कल्पना अपने भावानुरूप कर उसे अपने बीच व्याप्त देखना, सगुण भक्ति में ब्रह्म के अवतार रूप की प्रतिष्ठा है और अवतारवाद पुराणों के साथ प्रचार में आया, इसी से विष्णु अथवा ब्रह्म के दो अवतार राम और कृष्ण के उपासक जन-जन के हृदय में बसने लगे, राम और कृष्ण के उपासक उन्हें विष्णु का अवतार मानने की अपेक्षा परब्रह्म ही मानते हैं, इसकी चर्चा यथास्थान की जाएगी।

भक्तिकाल की सगुण काव्य धरा के अंतर्गत आराध्य देवताओं में श्रीकृष्ण का स्थान सर्वोपरि है। वेदों में श्रीकृष्ण का उल्लेख हुआ है, ऋगवेद में कृष्ण (आंगिरस) का उल्लेख है। पुराणों तक आते- आते राम और कृष्ण अवतार रूप में प्रतिष्ठित हो गए. श्रीमद्भाग्वद्पुराण में उन्हें पूर्ण ब्रह्म के रूप में चित्रित किया गया है।

भक्तिकाल में कृष्ण भक्ति का प्रचार कृष्ण की जन्म एवं लीलाभूमि में व्यापक रूप में हुआ। वैष्णव भक्ति सम्प्रदायों में वल्लभाचार्य–पुष्टिमार्ग. निम्बार्काचार्य- निम्बार्क, श्री हितहरिवंश–राधावल्लभ, स्वामी हरिदास- हरिदासी, चैतन्य महाप्रभु- गौडीय संप्रदाय सभी सम्प्रदायों में पूर्ण ब्रह्म श्री कृष्ण तथा श्री राधा उनकी आह्लादिनी शक्ति की उपासना की गयी. सत, चित, आनंद स्वरुप श्री कृष्ण नन्द और यशोदा के आँगन में विभिन्न बाल लीलाओं के माध्यम से समस्त गोकुलवासियों को आनंद प्रदान करते हैं। बाल रूप में ही राक्षस–राक्षसियों का विनाश कर अपने दिव्य रूप को सहज ग्राह्य बना देते हैं, वे ही सर्वव्यापक, अविनाशी, अजर, अमर, अगम आदि विशेषणों से युक्त होते हुए भी ब्रज के प्रत्येक प्राणी को उसके भावानुरूप आनंद प्रदान करते हैं।

हिंदी साहित्य में कृष्ण भक्ति पर आधारित काव्यों की लम्बी परंपरा है (आदिकालीन कृष्ण काव्य में चंदवरदाई और विद्यापति उल्लेखनीय है) भक्तिकालीन कृष्ण भक्त कवियों पर महाप्रभु वल्लभाचार्य का विशेष प्रभाव है। उन्होंने श्रीकृष्ण के बाल एवं किशोर रूप की लीलाओं का गायन किया तथा गोवर्धन पर श्रीनाथ जी को प्रतिष्ठित कर एक मंदिर बनवाया, उन्होंने भगवान के अनुग्रह की महत्ता पर बल दिया।

दर्शन के क्षेत्र में विष्णुस्वामी के शुद्धाद्वैत का प्रभाव इन पर दिखाई देता है। अपने इस भक्ति मार्ग को उन्होंने पुष्टिमार्ग कहा और अनेक शिष्यों को कृष्ण भक्ति का मन्त्र देकर दीक्षित भी किया, जिन्हें अष्टछाप के कवि अथवा अष्ट

सखा कहा गया, इनमें सूरदास, कुम्भनदास, परमानंददास, कृष्णदास–चार श्री बल्लभाचार्य के शिष्य और गोविन्दस्वामी, नन्ददास, छीतस्वामी और चतुर्भुजदास–चार बल्लभाचार्य के पुत्र श्री विट्ठलनाथ के शिष्य थे। आठ की संख्या होने से इन्हें अष्ट छाप कहा गया।

इन सभी भक्त कवियों ने श्रीमदभागवत के आधार पर ही कृष्ण लीला गान किया है। इसके लिए अपने आराध्य श्रीकृष्ण की कृपा से प्राप्त भगवत प्रेम ही महत्वपूर्ण है। पुष्टिमार्ग का अनुयायी भक्त आत्मसमर्पण युक्त रसात्मक प्रेम द्वारा भगवान की लीला में तल्लीन हो आनन्दावस्था को प्राप्त होता है।

सभी कृष्ण भक्त कवियों की रचनाएँ भक्ति, संगीत और कवित्व का समन्वित रूप है। लीलामय श्रीकृष्ण के प्रति भक्ति के आवेश में इन अष्टछाप कवियों के हृदय से गीतिकाव्य की जो निर्झरिणी प्रस्फुटित हुई उसने भगवदभक्तों को आकंठ निमग्न कर दिया।

हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग 'भक्तिकाल'

हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल 'स्वर्ण युग' के नाम से जाना जाता है। इसे स्वर्णकाल या स्वर्ण युग कहने का बहुत बड़ा अर्थ और अभिप्राय है। इस काल में ही शताब्दियों से चली आती हुई दासता को तोड़ने के लिए आत्मचेतना के प्रेरक कवियों और समाज सुधारकों का उदय हुआ। रामानंद, रामानुजाचार्य, बल्लभाचार्य, शंकराचार्य, कबीर, सूर, तुलसी, जायसी, मीरा, दादूदयाल, रैदास, तुकाराम, रसखान, रहीम आदि ने देशभक्ति की लहरों को जगाते हुए मानवतावाद का दिव्य सन्देश दिया। इस काल में ही राष्ट्रीय चेतना और सामाजिक जागृति की अभूतपूर्व आँधी आयी। उसने गुलामी की झाड़ झंखड़ों को कंपाते हुए तोड़ने, झुकाना शुरू कर दिया। समग्र राष्ट्र का स्वतंत्र रूप सामने आने लगा। एक प्रकार से वैचारिक क्रान्ति की ध्वनि गूँजित होने लगी। भाषा साहित्य की पहचान के द्वारा नैराष्यमय अन्धवातावरण धीरे धीरे छिन्न भिन्न होने लगा और समाज स्वावलम्बन की दिशा में आगे बढ़ने लगे।

भक्तिकाल में धार्मिक भावनाओं से उत्प्रेरित विभिन्न मतवादी काव्य साधनाओं को जन्म हुआ। इस प्रकार मतवादों का प्रवाह दक्षिण भारत में आलवार भक्तों के द्वारा प्रवाहित हुआ था। आलवारों के बाद दक्षिण में आचार्यों की परम्परा में विशिष्टाद्वैव, अद्वैत, द्वैत और अद्वैताद्वैत वाद का प्रतिपादन हुआ। विशिष्टाद्वैत के प्रतिपादक रामानुजाचार्य हुए। रामानुजाचार्य की ही परम्परा में रामानन्द जी हुए

थे। रामानन्द की लम्बी शिष्यश्रृंखला थी। उसमें कबीरदास जुलाहा, भवानन्द ब्राहमण, पीपा राजपूत धन्ना जाट, सेना नाई, रैदास चमार तथा सदना कसाई थे। इस प्रकार रामानन्द ने जात-पात के भेदों को दूर करके मानवतावाद के स्थापना की थी। रामानन्द के शिष्यों में कबीर सर्वाधिक चर्चित और लोकप्रिय हुए थे। कबीरदास का निर्गुण मत का प्रचार प्रसार बहुत तेजी से हुआ था। विष्णु स्वामी की परम्परा में महाप्रभु बल्लभाचार्य का प्रभाव स्थापित हुआ। उन्होंने पुष्टिमार्ग की स्थापना की। इसकी स्थापना के बाद यह सम्प्रदाय अष्टछाप के नाम से जाना गया। इसे यह नाम इसलिए दिया गया कि उसमें आठ कवियों सूरदास, कुभनदास, परमानन्ददास, कृष्णदास, नन्ददास, छीतस्वामी, गोबिन्द स्वामी और चतुर्भुज दास का योगदान था। इनमें सर्वाधिक ख्यातिलब्ध रचनाकार महाकवि सूरदास जी हुए थे। इन्हें सगुण काव्यधारा कृष्णभक्ति मार्ग के सर्वश्रेष्ठ कवि के रूप में मान्यता दी गई है।

रामभक्ति के वास्तविक प्रवर्त्तक तो रामानन्द जी ही थे, क्योंकि इनसे प्रचारित भक्तिधारा का स्त्रोत निर्गुण और सगुण दोनों ही रूपों में प्रस्फुटित हुआ था। निर्गुण धारा में कबीर, रैदास, दादूदयाल, पीपा, धन्ना आदि प्रवाहित हुए थे। इसी रामानन्द की भक्ति परम्परा में सगुण भक्ति काव्यधारा के रामाश्रयी शाखा के सर्वप्रधान कवि तुलसीदास जी हुए, जिन्होंने रामोपासना के विभिन्न ग्रन्थों के द्वारा लोक प्रतिष्ठा अर्जित कर ली।

भक्ति काव्यधारा में निर्गुण भक्ति शाखा के प्रेममार्गी काव्य रचना के शिरोमणि कवि मलिक मुहम्मद जायसी हुए, जिन्होंने अपनी काव्य रचनाओं के द्वारा दिखाई पड़ती है, जो निम्नलिखित हैं-

1. गुरू महिमा- भक्तिकाल में सबसे अधिक गुरूमहत्व पर प्रकाश डाला गया है। कबीरदास में अपनी साखी रचना में कहा है-

गुरू गोबिन्द दोऊ, खड़े, काके लागो पाय।
बलिहारी गुरू आपने, गोबिन्द दियो बताय।।

इसी तरह तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई जायसी आदि ने गुरू महत्व को बतलाया है।

2. इष्टदेव का महत्वांकन- भक्तिकाल के सभी कवियों ने अपने-अपने इष्टदेव के महत्व को अंकित किया है। तुलसीदास ने अपनी महाकाव्य कृति रामचरितमानस में स्पष्ट लिखा है-

रामहिं केवल मोहिं पियारा। जान लेहु जो जाननिहारा।

3. नाम की महिमा– भक्तिकाल के कवियों ने अपने इष्ट के नाम का प्रतिपादन सबसे बढ़कर किया है। इस संदर्भ में तुलसीदास जी ने स्पष्टत कहा कि–

राम एक तापस तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारी।।
कहाँ कहा कहि नाम बड़ाई। राम न सकहिं नाम गुन गाई।।

4. अपार भक्तिधारा– भक्ति का आग्रह या भक्ति की अपार धारा इस काल में कहीं भी देखी जा सकती है। इसकी प्रधानता के कारण ही इस काल का नाम भक्तिकाल रखना सर्वथा उचित और न्यायसंगत लगता है।

5. सत्संगति का महत्वोल्लेख– सज्जनों की प्रशंसा और दुर्जनों की निन्दा करके समाज में इसकी आवश्यकता पर बल दिया–

कबीरा संगति साधु की, हरै और व्याधि।
संगति बुरी असाधु, की बढ़ै कोटि अपराधि।।

6. आडम्बरों का खण्डन विरोध– भक्तिकाल में सभी प्रकार के आडम्बरों का खंडन करते हुए मानवतावाद की स्थापना की गयी। कबीरदास ने मूर्ति पूजा के विरोध में कहा–

कंकर पत्थर जोरि के, मस्जिद लई बनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, क्या बहरा हुआ खुदाय।।

भक्तिकाल की विशेषताओं का चरितार्थ करने वाले रचनाकारों के ग्रन्थों में तुलसीदासकृत रामचरितमानस, विनय पत्रिका, दोहावली, कवितावली, पार्वती मंगल, जानकी मंगल, वरवै, रामायण, वैराग्य संदीपनी, हनुमान बाहुक, सूरदास जी कृत सूरसागर, सूर सारावली और साहित्य लहरी कबीरदास जी कृत साखी, सबद, रमैनी, मलिक मुहम्मद जायसी कृत पदमावतु, अखरावट और आखिरी कलाम आदि प्रमुख ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थों में भक्ति सम्बन्धित रचनाओं के साथ साथ काव्य के आवश्यक अंग जैसे–रस, छनद, अलंकार, बिम्ब प्रतीक, योजना, रूपक, भाव आदि का सुन्दर चित्रण हुआ है। इस प्रकार से भक्तिकाल का महत्व साहित्य और भक्ति भावना दोनों ही दृष्टियों से बहुत अधिक है। इससे सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना को अपेक्षित दिशाबोध प्राप्त हुआ। इसी कारण इस काल को स्वर्ण युग कहा जाता है।

4

रीति काल-हिंदी साहित्य का इतिहास

उत्तर मध्य काल हिंदी साहित्य का इतिहास या रीतिकाल साहित्य (1650 ई.- 1850 ई.)रू नामांकरण की दृष्टि से उत्तर-मध्यकाल हिंदी साहित्य के इतिहास में विवादास्पद है। इसे मिश्र बंधु ने -अलंकृत काल, तथा रामचंद्र शुक्ल ने -रीतिकाल और विश्वनाथ प्रसाद ने- श्रृंगार काल कहा है। रीतिकाल के उदय के संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का मत है- इसका कारण जनता की रुचि नहीं, आश्रय दाताओं की रूचि थी, जिसके लिए वीरता और अकर्मण्यता का जीवन बहुत कम रह गया था।

'रीति' शब्द संस्कृत के काव्यशास्त्रीय 'रीति' शब्द से भिन्न अर्थ रखने वाला है। संस्कृत साहित्य में रीति को 'काव्य की आत्मा' मानने वाला एक सिद्धान्त है, जिसका प्रतिपादन आचार्य वामन ने अपने ग्रन्थ 'काव्यालंकारसूत्र' में किया था- 'रीतिरात्मा काव्यस्य'। रीति काव्य की आत्मा है और काव्य की श्रेष्ठता की कसौटी रीति है, यह मान्यता इस सिद्धान्त की है। वैदर्भी, पांचाली, गौड़ी, लाटी रीतियाँ हैं। रीति का आधार गुण है। संस्कृत की रीति सम्बन्धी यह धारणा हिन्दी काव्यशास्त्र के कुछ ही ग्रन्थों में ग्रहण की गयी है, परन्तु रीति की काव्य रचना की प्रणाली के रूप में ग्रहण करने की अपेक्षा प्रणाली के अनुसार काव्य रचना करना, रीति का अर्थ मान्य हुआ। इस प्रकार रीतिकाल का अर्थ

हुआ- 'ऐसा काव्य जो अलंकार, रस, गुण, ध्वनि, नायिका भेद आदि की काव्यशास्त्रीय प्रणालियों के आधार पर रचा गया हो।' इनके लक्षणों के साथ या स्वतंत्र रूप से इनके आधार पर काव्य लिखने की पद्धति ही रीति नाम से विख्यात हुई और यह पद्धति जिस काल में सर्वप्रधान रही, वह काल 'रीतिकाल' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

रीतिकालीन कविता में लक्ष्मण ग्रंथ, नायिका भेद, शृंगारिकता आदि की जो प्रवृत्तियां मिलती है, उसकी परंपरा संस्कृत साहित्य से चली आ रही थी। हिंदी में 'रीति' या 'काव्यरीति' शब्द का प्रयोग काव्यशास्त्र के लिए हुआ था। इसलिए काव्यशास्त्रबद्ध सामान्य सृजनप्रवृत्ति और रस, अलंकार आदि के निरूपक बहुसंख्यक लक्षणग्रंथों को ध्यान में रखते हुए इस समय के काव्य को 'रीतिकाव्य' कहा गया। इस काव्य की शृंगारी प्रवृत्तियों की पुरानी परंपरा के स्पष्ट संकेत संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, फारसी और हिंदी के आदिकाव्य तथा कृष्णकाव्य की शृंगारी प्रवृत्तियों में मिलते हैं।

हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार संस्कृत के प्राचीन साहित्य विशेषता रामायण और महाभारत से यदि भक्तिकाल के कवियों ने प्रेरणा ली तो रीतिकाल के कवियों ने उत्तर कालीन संस्कृत साहित्य से प्रेरणा व प्रभाव लिया। लक्ष्मण ग्रंथ, नायिका भेद, अलंकार और संचारी भावों के पूर्व निर्मित वर्गीकरण का आधार लेकर यह कवि बधी-सधी बोली में बंधे सदे भाव की कवायद करने लगे।।

इस काल में कई कवि ऐसे हुए हैं, जो आचार्य भी थे और जिन्होंने विविध काव्यांगों के लक्षण देने वाले ग्रंथ भी लिखे। इस युग में शृंगार की प्रधानता रही। यह युग मुक्तक-रचना का युग रहा। मुख्यतया कवित्त, सवैये और दोहे इस युग में लिखे गए। कवि राजाश्रित होते थे इसलिए इस युग की कविता अधिकतर दरबारी रही, जिसके फलस्वरूप इसमें चमत्कारपूर्ण व्यंजना की विशेष मात्रा तो मिलती है, परंतु कविता साधारण जनता से विमुख भी हो गई।

समृद्धि और विलासिता का काल

रीतिकाल समृद्धि और विलासिता का काल है। साधना के काल भक्तियुग से यह इसी बात में भिन्नता रखता है कि इसमें कोरी विलासिता ही उपास्य बन गयी, वैराग्यपूर्ण साधना का समादर न रहा। नवाब, जागीरदार, मनसबदार, सामन्त-सभी का उद्देश्य विलासिता और समृद्धि का जीवन था। इस समृद्धि के

जीवन के लिए साधन किसी भी प्रकार के क्यों न हों, समृद्धि का अर्जन ही सामर्थ्य की सार्थकता थी। ये उच्च वर्ग के लोग कला और कविता के संरक्षक थे। कुछ तो स्वयं कवि एवं कलाकार थे। इस प्रकार इस काव्य में ऐहिक जीवन के सुख-भोग पर बल दिया गया। यह जीवन की क्षणभंगुरता को भुलाकर नहीं, वरन् इसलिए कि इस क्षणभंगुर जीवन में जितने ही दिन सुख-भोग के बीत सकें, उतना ही अच्छा।

शृंगारिक साहित्य

सजाव- शृंगार की एक अदम्य लिप्सा इस युग के साहित्य में प्रतिबिम्बित है। उपासना के लिए जिन राम और कृष्ण का चरित्र भक्तिकाल में अत्युत्कृष्ट रूप में चित्रित हुआ, उनमें भी शृंगारिकता का आरोप कर शृंगारिक स्वरूप के उद्घाटन में प्रतिभा को लगाया गया। लोकैषणा का सीमित और भोग्य रूप इस काल के यथार्थवादी धरातल का संकेत करता है। पर यह यथार्थवाद सामाजिक क्रान्ति के बीज बोने वाले आधुनिक यथार्थवाद से भिन्न था। वह कला और कारीगरी का यथार्थ है, चिन्तना, ठेस, असन्तोष की चिनगारी बिखेरने वाला यथार्थ नहीं। इस काल की कलात्मक उपलब्धियों में एकरसता है, विविधता नहीं।

रीतिकाल के कवियो का इतिहास

रीतिकाल के अधिकांश कवि दरवारी थे अर्थात राजाओ के दरवार में अपनी कविता किया करते थे, जिससे उनकी कविता आम लोगो तक सही से नहीं मुखर हो पायी-

रु रीतिकाल के कवि	उनका दरवार
1. केशवदास	ओरछा
2. प्रताप सिंह	चरखारी
3. बिहारी	जयपुर, आमेर
4. मतिराम	बूँदी
5. भूषण	पन्ना
6. चिंतामणि	नागपुर
7. देव	पिहानी
8. भिखारीदास	प्रतापगढ़-अवध

9. रघुनाथ	काशी
10. बेनी	किशनगढ़
11. गंग	दिल्ली
12. टीकाराम	बड़ौदा
13. ग्वाल	पंजाब
14. चन्द्रशेखर बाजपेई	पटियाला
15. हरनाम	कपूरथला
16. कुलपति मिश्र	जयपुर
17. नेवाज	पन्ना
18. सुरति मिश्र	दिल्ली
19. कवीन्द्र उदयनाथ	अमेठी
20. ऋषिनाथ	काशी
21. रतन कवि	श्रीनगर-गढ़वाल
22. बेनी बन्दीजन	अवध
23. बेनी प्रवीन	लखनऊ
24. ब्रह्मदत्त	काशी
25. ठाकुर बुन्देलखण्डी	जैतपुर
26. बोधा	पन्ना
27. गुमान मिश्र	पिहानी

अनेक कवि तो राजा ही थे, जैसे- महाराज जसवन्त सिंह (तिर्वा), भगवन्त राय खीची, भूपति, रसनिधि (दतिया के जमींदार), महाराज विश्वनाथ, द्विजदेव (महाराज मानसिंह)।

रीतिकाव्य साहित्य का आरंभ

रीतिकाव्य रचना का आरंभ एक संस्कृतज्ञ ने किया। ये थे आचार्य केशवदास, जिनकी सर्वप्रसिद्ध रचनाएँ कविप्रिया, रसिकप्रिया और रामचंद्रिका हैं। कविप्रिया में अलंकार और रसिकप्रिया में रस का सोदाहरण निरूपण है। लक्षण दोहों में और उदाहरण कवित्तसवैए में हैं। लक्षण-लक्ष्य-ग्रंथों की यही परंपरा रीतिकाव्य में विकसित हुई। रामचंद्रिका केशव का प्रबंधकाव्य है, जिसमें भक्ति की तन्मयता के स्थान पर एक सजग कलाकार की प्रखर कलाचेतना प्रस्फुटित हुई।

केशव के कई दशक बाद चिंतामणि से लेकर अठारहवीं सदी तक हिंदी में रीतिकाव्य का अजस्र स्रोत प्रवाहित हुआ, जिसमें नर-नारी-जीवन के रमणीय पक्षों और तत्संबंधी सरस संवेदनाओं की अत्यंत कलात्मक अभिव्यक्ति व्यापक रूप में हुई।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रीतिकाव्य का शुरूआत केशवदास से न मानकर चिन्तामणि से माना है। उनका कहना है कि-केशवदास जी ने काव्य के सब अंगो का निरूपण शास्त्रीय पद्धति पर किया। यह निरूसन्देह है कि काव्यरीति का सम्यक समावेश पहले पहल ऑ.केशव ने ही किया। हिन्दी में रीतिग्रन्थों की अविरल और अखंडित परम्परा का प्रवाह केशव की 'कविप्रिया' के प्राय:पचास वर्ष पीछे चला और वह भी एक भिन्न आदर्श को लेकर केशव के आदर्श को लेकर नहीं द्य' वे कहते है कि-'हिन्दी रीतिग्रन्थो की अखण्ड परम्परा चिन्तामणि त्रि.से चली, अत:रीतिकाल का आरम्भ उन्हीं से मानना चाहिए'।

रीतिकाल के कवि राजाओं और रईसों के आश्रय में रहते थे। वहाँ मनोरंजन और कलाविलास का वातावरण स्वाभाविक था। बौद्धिक आनंद का मुख्य साधन वहाँ उक्तिवैचित्रय समझा जाता था। ऐसे वातावरण में लिखा गया साहित्य अधिकतर शृंगारमूलक और कलावैचित्रय से युक्त था। पर इसी समय प्रेम के स्वच्छंद गायक भी हुए, जिन्होंने प्रेम की गहराइयों का स्पर्श किया है। मात्रा और काव्यगुण दोनों ही दृष्टियों से इस समय का नर-नारी-प्रेम और सौंदर्य की मार्मिक व्यंजना करने वाला काव्यसाहित्य महत्वपूर्ण है।

इस समय वीरकाव्य भी लिखा गया। मुगल शासक औरंगजेब की कट्टर सांप्रदायिकता और आक्रामक राजनीति की टकराहट से इस काल में जो विक्षोभ की स्थितियाँ आई उन्होंने कुछ कवियों को वीरकाव्य के सृजन की भी प्रेरणा दी। ऐसे कवियों में भूषण प्रमुख हैं, जिन्होंने रीतिशैली को अपनाते हुए भी वीरों के पराक्रम का ओजस्वी वर्णन किया। इस समय नीति, वैराग्य और भक्ति से संबंधित काव्य भी लिखा गया। अनेक प्रबंधकाव्य भी निर्मित हुए। इधर के शोधकार्य में इस समय की शृंगारेतर रचनाएँ और प्रबंधकाव्य प्रचुर परिमाण में मिल रहे हैं। इसलिए रीतिकालीन काव्य को नितांत एकांगी और एकरूप समझना उचित नहीं है। इस समय के काव्य में पूर्ववर्ती कालों की सभी प्रवृत्तियाँ सक्रिय हैं। यह प्रधान धारा शृंगारकाव्य की है, जो इस समय की काव्यसंपत्ति का वास्तविक निदर्शक मानी जाती रही है। शृंगारी काव्य तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है। पहला वर्ग रीतिबद्ध कवियों का है, जिसके प्रतिनिधि केशव,

चिंतामणि, भिखारीदास, देव, मतिराम और पद्माकर आदि हैं। इन कवियों ने दोहों में रस, अलंकार और नायिका के लक्षण देकर कवित्त सवैए में प्रेम और सौंदर्य की कलापूर्ण मार्मिक व्यंजना की है। संस्कृत साहित्यशास्त्र में निरूपित शास्त्रीय चर्चा का अनुसरण मात्रा इनमें अधिक है, पर कुछ ने थोड़ी मौलिकता भी दिखाई है, जैसे–भिखारीदास का हिंदी छंदों का निरूपण। दूसरा वर्ग रीतिसिद्ध कवियों का है। इन कवियों ने लक्षण नहीं निरूपित किए, केवल उनके आधार पर काव्यरचना की। बिहारी इनमें सर्वश्रेष्ठ हैं, जिन्होंने दोहों में अपनी 'सतसई' प्रस्तुत की। विभिन्न मुद्राओं वाले अत्यंत व्यंजक सौंदर्य चित्रों और प्रेम की भावदशाओं का अनुपम अंकन इनके काव्य में मिलता है। तीसरे वर्ग में घनानंद, बोधा, द्विजदेव ठाकुर आदि रीतिमुक्त कवि आते हैं, जिन्होंने स्वच्छंद प्रेम की अभिव्यक्ति की है। इनकी रचनाओं में प्रेम की तीव्रता और गहनता की अत्यंत प्रभावशाली व्यंजना हुई है।

रीतिकाव्य मुख्यतः मांसल शृंगार का काव्य है। इसमें नर–नारीजीवन के रमणीय पक्षों का सुंदर उद्घाटन हुआ है। अधिक काव्य मुक्तक शैली में है, पर प्रबंधकाव्य भी हैं। इन दो सौ वर्षों में शृंगारकाव्य का अपूर्व उत्कर्ष हुआ। पर धीरे धीरे रीति की जकड़ बढ़ती गई और हिंदी काव्य का भावक्षेत्र संकीर्ण होता गया। आधुनिक युग तक आते–आते इन दोनों कमियों की ओर साहित्यकारों का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट हुआ।

इतिहास साक्षी है कि अपने पराभव काल में भी यह युग वैभव विकास का था। मुगल दरबार के हरम में पाँच–पाँच हजार रूपसियाँ रहती थीं। मीना बाजार लगते थे, सुरा–सुन्दरी का उन्मुक्त व्यापार होता था। डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं– 'वासना का सागर ऐसे प्रबल वेग से उमड़ रहा था कि शुद्धिवाद सम्राट के सभी निषेध प्रयत्न उसमें बह गये। अमीर–उमराव ने उसके निषेध पत्रों को शराब की सुराही में गर्क कर दिया। विलास के अन्य साधन भी प्रचुर मात्रा में थे।' पद्माकर ने एक ही छन्द में तत्कालीन दरबारों की रूपरेखा का अंकन कर दिया है–

गुलगुली गिल में गलीचा है, गुनीजन है,
चाँदनी है, चिक है चिरागन की माला हैं।
कहैं पद्माकर त्यौं गजक गिजा है सजी
सेज है सुराही है सुरा है और प्याला हैं।
सिसिर के पाला को व्यापत न कसाला तिन्हें,
जिनके अधीन ऐते उदित मसाला है।

तान तुक ताला है, विनोद के रसाला है,
सुबाला है, दुसाला है विसाला चित्रसाला है।

ऐहलौकिकता, श्रृंगारिकता, नायिकाभेद और अलंकार-प्रियता इस युग की प्रमुख विशेषताएं हैं। प्रायः सब कवियों ने ब्रज-भाषा को अपनाया है। स्वतंत्र कविता कम लिखी गई, रस, अलंकार वगैरह काव्यांगों के लक्षण लिखते समय उदाहरण के रूप में-विशेषकर श्रृंगार के आलंबनों एवं उद्दीपनों के उदाहरण के रूप में-सरस रचनाएं इस युग में लिखी गईं। भूषण कवि ने वीर रस की रचनाएं भी दीं। भाव-पक्ष की अपेक्षा कला-पक्ष अधिक समृद्ध रहा। शब्द-शक्ति पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया, न नाटयशास्त्र का विवेचन किया गया। विषयों का संकोच हो गया और मौलिकता का ह्रास होने लगा। इस समय अनेक कवि हुएकृ केशव, चिंतामणि, देव, बिहारी, मतिराम, भूषण, घनानंद, पद्माकर आदि। इनमें से केशव, बिहारी और भूषण को इस युग का प्रतिनिधि कवि माना जा सकता है। बिहारी ने दोहों की संभावनाओं को पूर्ण रूप से विकसित कर दिया। आपको रीति-काल का प्रतिनिधि कवि माना जा सकता है।

रीतिकाल के कवि

इस काल के कवियों को तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है-

(1) रीतिबद्ध कवि
(2) रीतिसिद्ध कवि
(3) रीतिमुक्त कवि

विद्वानों का यह भी मत है कि इस काल के कवियों ने काव्य में मर्यादा का पूर्ण पालन किया है। घोर श्रृंगारी कविता होने पर भी कहीं भी मर्यादा का उल्लंघन देखने को नहीं मिलता है।

रीतिबद्ध कवि

रीतिबद्ध कवियों ने अपने लक्षण ग्रंथों में प्रत्यक्ष रूप से रीति परंपरा का निर्वाह किया है, जैसे- केशवदास, चिंतामणि, मतिराम, सेनापति, देव, आदि। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने केशवदास को कठिन काव्य का प्रेत कहा है।

रीतिसिद्ध कवि

रीतिसिद्ध कवियों की रचना की पृष्ठभूमि में अप्रत्यक्ष रूप से रीति परिपाटी काम कर रही होती है। उनकी रचनाओं को पढ़ने से साफ पता चलता

है कि उन्होंने काव्यशास्त्र को पचा रखा है। बिहारी, रसनिधि आदि इस वर्ग में आते हैं।

रीतिमुक्त कवि

रीति परंपरा से मुक्त कवियों को रीतिमुक्त कवि कहा जाता है। घनानंद, आलम, ठाकुर, बोधा आदि इस वर्ग में आते हैं।

आलम -आलम इस धारा के प्रमुख कवि हैं। इनकी रचना 'आलम केलि' है।

घनानंद- रीतिमुक्त कवियों में सबसे अधिक प्रसिद्द कवि हैं। इनकी रचनाएँ हैं-कृपाकंद निबन्ध, सुजान हित प्रबन्ध, इश्कलता, प्रीती पावस, पदावली।

बोधा- विरह बारिश, इश्कनामा।

ठाकुर- ठाकुर ठसक, ठाकुर शतक।

रीति काव्य की विशेषता

- हिंदी में रीति-काव्य का आधार संस्कृत के लक्षण-ग्रंथ हैं।
- संस्कृत में कवि और आचार्य, दो अलग-अलग व्यक्ति होते थे, किंतु हिंदी में यह भेद मिट गया।
- प्रत्येक कवि आचार्य बनने की कोशिश करने लगा, जिसका परिणाम यह हुआ कि वे सफल आचार्य तो बन नहीं पाए, उनके कवित्व पर भी कहीं-कहीं दाग लग गए।
- इन रीति-ग्रंथकारों में मौलिकता का सर्वथा अभाव रहा।
- परिणामस्वरूप उनका शास्त्रीय विवेचन सुचारू रूप से नहीं हो सका।

रीति काल के काव्य अंगो का विवेचन

काव्यांगों का विवेचन करते हुए हिंदी के आचार्यों ने काव्य के सब अंगों का समान विवेचन नहीं किया। शब्द-शक्ति की ओर किसी का ध्यान ही नहीं गया। रस में भी केवल शृंगार को ही प्रधानता दी गई। लक्षण पद्य में देने की परम्परा के कारण इन कवियों के लक्षण अस्पष्ट और कहीं-कहीं अपूर्ण रह गए हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का निष्कर्ष द्रष्टव्य है-'हिंदी में लक्षण-ग्रंथों की परिपाटी पर रचना करने वाले सैकड़ों कवि हुए हैं, वे आचार्य की कोटि में नहीं आ सकते। वे वास्तव में कवि ही थे।'

लक्षण ग्रंथों की दृष्टि से कुछ त्रुटियाँ होते हुए भी इन ग्रंथों का कवित्व की दृष्टि से बहुत महत्त्व है। अलंकारों अथवा रसों के उदाहरण के लिए जो पद्य उपस्थित किए गए हैं, वे अत्यंत सरस और रोचक हैं।

श्रृंगार रस के जितने उदाहरण अकेले रीतिकाल में लिखे गए हैं, उतने सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में भी उपलब्ध नहीं होते।

इनकी कविता में भावों की कोमलता, कल्पना की उड़ान और भाषा की मधुरता का सुंदर समन्वय हुआ है।

रचनाएँ

हिन्दी रीतिकाल के अन्तर्गत सामान्यत: दो प्रकार की रचनाएँ मिलती हैं-

एक तो वे रचनाएँ, जिनमें मुख्यत: काव्यशास्त्र सिद्धान्तों को छन्दोबद्ध किया गया है। स्पष्टत: हिन्दी कवियों का यह प्रयास बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं हो सका है। सिद्धान्त प्रतिपादन की दृष्टि से इनका अधिक महत्त्व इस कारण नहीं है कि उनमें मौलिकता का अंश बहुत कम है। इस प्रकार के रीतिग्रन्थ अधिकतर संस्कृत लक्षण ग्रन्थों के अनुवाद हैं या फिर उनकी छाया पर आधारित है। काव्य-रस की दृष्टि से इनका स्तर ऊँचा नहीं है, क्योंकि इन आचार्य कवियों का मुख्य ध्येय काव्य लक्षणों को वर्णित करना था, स्वतंत्र रूप से अनुभूतिपरक काव्य-सर्जन करना नहीं। फिर भी यह अवश्य है कि इन कवियों के उदाहरणों में से कुछ अंश शुद्ध काव्य के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं।

दूसरे वर्ग के अन्तर्गत वे रचनाएँ आती हैं, जो काव्य लक्षणों को प्रतिपादित करने की दृष्टि से नहीं लिखी गयी। इस प्रकार के काव्य में भाषा, भाव तथा शैली-सभी का अत्यन्त निखरा हुआ रूप मिलता है। यह लक्षण मुक्त कविता ही वास्तव में रीतिकाल का प्राणतत्त्व है।

रीतिकालीन काव्य की भाषा

रीतिकालीन काव्य प्राय: ब्रजभाषा तथा उसके स्थानीय रूपों में लिखा गया। अधिकांश काव्य राजाश्रय में लिखा गया था। अधिक प्रवृत्ति अलंकृत काव्य लिखने की रही है। श्रृंगार के अन्तर्गत काम-वासना और नारी-सौन्दर्य का चित्रण

हुआ है, कहीं-कहीं भक्ति-भावना भी दिखाई दे जाती है। कुछ रचनाओं में वीर-भावना, नीति-उपदेश, लोक ज्ञान, व्यवहार आदि से सम्बन्धित सामग्री मिलती है। इस युग के कवियों का जीवन के प्रति दृष्टिकोण आध्यात्मिक न होकर ऐहिक अधिक है।

साहित्य का विकास

हिन्दी में रीति साहित्य के विकास के अनेक कारण हैं। एक कारण तो संस्कृत में इसकी विशाल परम्परा है, जिस समय भाषा-साहित्य का प्रारम्भ हुआ, उस समय भी संस्कृत में लक्षण या अलंकार-साहित्य की रचना चल रही थी। दूसरा कारण भाषा-कवियों को प्राप्त राज्याश्रय है। अकबर ने सबसे पहले हिन्दी कवियों को दरबार में आश्रय प्रदान किया और इस प्रकार हिन्दी काव्य को प्रोत्साहन मिला। आगे चलकर अन्य राजाओं ने भी इस प्रवृत्ति का अनुसरण किया। राजपूताना तथा मध्यभारत की रियासतों, ओरछा, नागपुर आदि में भाषा-कवियों को राज्याश्रय प्राप्त हुआ और आगे इन्हें हिन्दू और मुसलमान, दोनों के ही दरबार में प्रतिष्ठा मिली। इसके फलस्वरूप व्यापक रीति-साहित्य की रचना हुई। हिन्दी रीति-साहित्य के विकास का तीसरा कारण भी सामने आता है, जो है कवि और काव्य के स्वतंत्र रूप की प्रतिष्ठा। इस क्षेत्र में केशवदास का कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और इसी कारण उनको आगे के युग में दीर्घ काल तक इतना सम्मान प्राप्त हुआ।

रीति-काव्य के विकास में तत्कालीन राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों का महत्त्वपूर्ण योग रहा है। वस्तुतः ये परिस्थितियाँ इस प्रकार के काव्य सर्जन के अनुकूल थीं। इस समय की राजनीतिक उथल-पुथल और सत्ता एवं वैभव की क्षणभंगुरता ने जीवन के दो अतिरेकपूर्ण दृष्टिकोण विकसित करने में सहायता दी। एक ने जीवन के प्रति पूर्ण विरक्ति और त्याग का भाव जागरित किया, जबकि दूसरे ने पूर्ण भोग का दृष्टिकोण। ऐहिक काव्य को इस प्रकार का विलासपूर्ण चित्रण करने की प्रेरणा देने में राजनीतिक स्थिति का भी हाथ था।

सामंतवादी समाज

जहाँ तक सामाजिक पक्ष का सम्बन्ध है, मध्ययुग का समाज सामन्तवादी पद्धति पर आधारित था, जिसमें सम्राट शीर्ष पर था, जिसके बाद उसके अन्तर्गत राजा, अधिकारी और सामन्त थे, जिन्हें समाज में विशेष अधिकार और सम्मान

प्राप्त थे। कवियों को अपने इन आश्रयदाताओं की रुचि के अनुसार या उन्हें प्रभावित करने वाला काव्य लिखना आवश्यक था, जिससे उनकी ऐहिक सन्तुष्टि होती थी और प्रतिभा का भी कम से कम एक क्षेत्र में विकास होता रहता था। मध्य काल के अमीर और सामन्त अत्यन्त विलासपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। एक राजा, अमीर अथवा सामन्त के यहाँ दो, तीन, चार या इससे भी अधिक रानियाँ रहती थीं, जिनका काम अपने को अलंकृत करके पति को रिझाना और उसके प्रसन्न होने पर विलास-सामग्री की और वृद्धि करते रहने के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। नारी उनके हाथों में भोग-विलास का एक उपकरण मात्रा बनकर रह गयी थी। मुगलकालीन भारतीय समाज के जीवन का एक पक्ष रीतिकाव्य के सौन्दर्य और विलासपूर्ण चित्रण को प्रेरणा देने वाला था, परन्तु इसका दूसरा पक्ष जन साधारण का है। नैतिकता की दृष्टि से जन साधारण का चरित्र इन विलासी दरबारियों की अपेक्षा कहीं अच्छा था, उस पर भक्तिकाल का प्रभाव था।

हिन्दी काव्य पर प्रभाव

मध्ययुगीन मुगल शासन के परिणामस्वरूप कई बातें जीवन में परिव्याप्त हुई दिखती हैं-

प्रथम तो एक केन्द्रीय सुदृढ़ शासक होने से देश के भीतर तुलनात्मक दृष्टि से शान्ति का वायुमण्डल बन गया।

द्वितीय इस शान्ति के अवसर पर जीवन में कला और संस्कृति को विशेष महत्त्व प्राप्त हुआ। शिष्ट और सुसंस्कृत व्यवहार का सम्मान बढ़ा।

तीसरी बात यह है कि इसी शान्ति और समृद्ध के परिणामस्वरूप कला-प्रेम और विलासिता की भावना भी प्रखरता से जाग्रत हुई। जीवन में धर्म को, चाहे वह संकीर्ण अर्थ में ही क्यों न हो, प्रमुख स्थान मिला।

चौथी बात यह है कि भाषा-साहित्य को राजाओं और सामन्तों से संरक्षण और आश्रय मिला।

इन सभी बातों का रीतिकालीन हिन्दी काव्य पर प्रभाव परिलक्षित होता है।

मत

रीतिकालीन काव्य के सम्बन्ध में सामान्यत: दो प्रकार के मत हैं-

एक उसे नितान्त हेय और पतनोन्मुख काव्य कहकर उसके प्रति घृणा और द्वेष का भाव जगाता है।

दूसरा उस पर अत्यधिक रीझकर केवल उसे ही काव्य मानता है और अन्य रचनाओं, जैसे–भक्ति और आधुनिक काल की कृतियों को उत्तम काव्य में परिगणित नहीं करता।

रीतिकालीन काव्य पर दोष

रीतिकालीन काव्य पर जो दोष लगाये जाते हैं, वे ये हैं–

अश्लीलता

रीतिकालीन समस्त काव्य को दृष्टि में रखकर जब इन दोषों पर विचार करते हैं तो यह कह सकते हैं कि ये समस्त दोष उस युग के काव्य या समस्त रीतिकाव्य पर लागू नहीं किये जा सकते। साथ ही इन दोषों में से अधिकांश प्रत्येक युग के काव्य में किसी न किसी अंश में पाये जाते हैं जहाँ तक अश्लीलता का प्रश्न है, तो यह भावना वस्तुतः युग सापेक्ष है। एक ही प्रकार का वस्तु रूप एक युग में अथवा एक स्थिति या अवस्था में अश्लील होता है और दूसरे में नहीं। कालिदास तथा अन्य संस्कृत कवियों की रचनाओं में शरीर के कुछ अवयवों का काव्य में वर्णन और उल्लेख उन दिनों अश्लील नहीं समझा जाता था। आज वह अश्लील समझा जाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अश्लील सापेक्ष पद है, जिन शब्दों (जैसे–नीवी, नितम्ब, उरोज आदि) और जिन वर्णनों को आज अश्लील कहते हैं, उन सबकी परम्परा संस्कृत काव्य में गहराई के साथ रही है और बहुत कुछ वहाँ से उस शब्दावली का प्रवेश हिन्दी साहित्य में हुआ है।

समाज को प्रगति प्रदान करने की अक्षमता

दूसरा दोष प्रायः यह लगाया जाता है कि यह काव्य समाज को प्रगति प्रदान करने में समर्थ नहीं है। रीतिकाव्य और कुछ प्रबन्ध काव्यों में भी हमें व्यापक जीवन-दर्शन नहीं मिलता, इसमें कोई सन्देह नहीं। रीतिकाव्य वास्तव में यौवन का मादक, विलासपूर्ण काव्य है। फिर भी उसमें ऐसी उक्तियाँ तथा स्थितियाँ मिलती हैं, जो जीवन का अनुभव और कभी-कभी आदर्श बताती है, अतः आधुनिक दृष्टि से सामाजिक प्रगति को प्रेरणा प्रदान न करते हुए भी, इसमें जीवनोपयोगी तथ्यों का अभाव नहीं है।

आश्रयदाता की प्रशंसा

आश्रयदाता की प्रशंसा में उठी हुई काव्य-स्फूर्ति का सामाजिक तो नहीं, परन्तु ऐतिहासिक महत्त्व अवश्य है। आश्रयदाता की प्रशंसा, कला और काव्य के संरक्षण और आश्रय के कारण भी थी और इसके लिए उनकी उदार भावना सराहनीय है। ये राज्याश्रय, जिनमें रीतिकालीन कलाकृतियों का विकास हुआ, कवि-प्रतिभा को प्रोत्साहित कर सके, साथ ही साथ दूर-दूर से प्रति-भावों को अपने गुणों और कला-प्रेम के कारण खींच सके, अत: मध्ययुगीन राज्याश्रय ने कला, काव्य के संरक्षण और प्रेरणा के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किया है, यह मानना पड़ेगा।

साहित्य के पक्ष

जैसा कि कहा गया है, रीतिकाल के अन्तर्गत विकसित होने वाले रीति-साहित्य के दो पक्ष हैं-शास्त्रीय और शास्त्रनिरपेक्ष। इन दोनों ही पक्षों के प्रति दृष्टिकोणों में अन्तर है। लगभग एक-सी परिस्थितियों में और कहीं-कहीं तो एक ही कवि द्वारा लिखे जाने पर भी इन दोनों प्रकार की काव्य प्रवृत्तियों में अन्तर, उनके कवियों के दृष्टिकोण के कारण है। पहले वर्ग के कवि अपनी प्रवृत्ति में आचार्य अधिक थे। रीतिग्रन्थ उन्होंने या तो अपनी प्रेरणा से या अधिकांशत: अपने आश्रयदाता की इच्छा से लिखे थे। दूसरे वर्ग के कवि आचार्य रहे हों या न रहे हों, कवि वे अवश्य ही थे।

लेखन परम्परा

रीतिशास्त्र या रीतिकाव्य लिखने की परम्परा हिन्दी को संस्कृत से प्राप्त हुई। संस्कृत साहित्यशास्त्र के पाँच काव्यसिद्धान्तों में से प्राय: सभी का कुछ न कुछ प्रभाव हिन्दी रीतिशास्त्र पर पड़ा है, परन्तु जहाँ तक शास्त्रीय विवेचन का प्रश्न है, वह रीति और वक्रोक्ति-सिद्धान्तों के आधार पर अधिक नहीं लिखा गया। अलंकार, रस और ध्वनि के ही लक्षण और उदाहरण देने का सामान्यत: प्रयत्न देखने को मिलता है। इन सिद्धान्तों का भी विवेचनात्मक निरूपण कम हुआ है। इसके कई कारण हैं। पहला कारण तो यह है कि हिन्दी में रीतिशास्त्र लिखने वाले कवियों के पूर्ववर्ती तथा समकालीन संस्कृत के ऐसे विद्वान् आचार्य थे, जिन्होंने काव्यशास्त्र के एक या अधिक अंगों को लेकर उनकी बड़ी ही विस्तृत और स्पष्ट व्याख्या की थी। ऐसी दशा में हिन्दी कवियों के लिए कुछ

भी मौलिक कार्य करना कठिन था। फिर हिन्दी में लिखने वाले सभी काव्यशास्त्री संस्कृत साहित्य के पूर्ण विद्वान् नहीं थे। इसके अतिरिक्त जिन लोगों के लिए ये ग्रन्थ निर्मित किये जा रहे थे- अर्थात् कवियों के आश्रयदातागण और सामान्य जनता-वे स्वयं इस प्रकार के विवेचन में रुचि नहीं रखते थे। वे मुख्यतः अपने मनोरंजनार्थ हिन्दी काव्य चाहते थे।

संस्कृत काव्यशास्त्र

हिन्दी के रीतिशास्त्र का आधार पूर्ण रूप से संस्कृत काव्यशास्त्र है, परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि हिन्दी में रीतिशास्त्र लिखने वाले प्रत्येक लेखक ने संस्कृत काव्यशास्त्र का पूरा अध्ययन किया था या किसी अन्य ग्रन्थ को पूर्णतः हिन्दी में उतारा था। प्रायः अपनी योजना के अनुकूल हिन्दी रीतिशास्त्र के लेखक ने अपने आधारभूत ग्रन्थ का पठित या श्रुत ज्ञान प्राप्त किया था। इस कार्य के लिए जिन संस्कृत ग्रन्थों का अधिकांश आधार लिया गया है, वे हैं-

भरत का 'नाट्यशास्त्र'
भामह का 'काव्यालंकार'
दण्डी का 'काव्यादर्श'
उद्भट का 'अलंकारसारसंग्रह'
केशव मिश्र का 'अलंकारशेखर'
अमरदेव का 'काव्यकल्पलताकृति'
जयदेव का 'चन्द्रालोक'
अप्पय दीक्षित का 'कुवलयानन्द'
भानुदत्त के 'रसमंजरी', 'रसतरंगिणी'
विश्वनाथ का 'साहित्यदर्पण'

केशवदास का योगदान

हिन्दी के पूर्ववर्ती अपभ्रंश साहित्य में रीतिशास्त्र की परम्परा नहीं रही। इसको प्रेरणा देने वाला संस्कृत साहित्य ही है और इस परम्परा को हिन्दी में डालने वाले प्रमुख व्यक्ति आचार्य केशवदास (1550 से 1610 ई.) हैं। केशव के पूर्व भी कुछ ग्रन्थ लिखे गये हैं, जिन्हें 'रीतिशास्त्र के ग्रन्थ' कह सकते हैं, परन्तु वे विशिष्ट रचनाएँ-सी ही है, प्रेरक प्रयास के रूप में उन्हें ग्रहण नहीं कर सकते। 'शिवसिंहसरोज' के आधार पर जिस

ग्रन्थ का उल्लेख साहित्य के इतिहासकार सर्वप्रथम करते हैं, वह पुण्ड या पुष्य कवि है, जिसने 713 ई.के लगभग हिन्दी भाषा में संस्कृत के किसी अलंकारग्रन्थ का अनुवाद किया था, परन्तु वह ग्रन्थ अभी तक किसी के देखने में नहीं आया। यदि वास्तव में उस समय का कोई इस प्रकार का लिखा ग्रन्थ मिल जाता है, तो वह न केवल रीतिशास्त्र का, वरन् हिन्दी का पहला ग्रन्थ ठहरता है, परन्तु अभी तक इस सम्बन्ध की कोई प्रामाणिक सूचना प्राप्त नहीं हो सकी है।

ऐसी अवस्था में रीतिशास्त्र पर प्राप्त सबसे पहला ग्रन्थ कृपाराम का 'हिततरंगिणी' ही है। इसकी रचना सन् 1541 ई.में हुई। यह पाँच तरंगों में विभक्त है और प्रायः भरत के 'नाट्यशास्त्र' के आधार पर है। इसके पश्चात् 1551 ई. का लिखा मोहनलाल मिश्र का ' श्रृंगारसागर' ग्रन्थ रस और नायिका-भेद का विवरण प्रस्तुत करता है तथा 'अष्टछाप' के प्रसिद्ध कवि नन्ददास का लिखा 'रसमंजरी' ग्रन्थ भी इसी समय के आस-पास का है। करनेस बन्दीजन के ग्रन्थ भी केशव के पूर्ववर्ती ग्रन्थों में ही रखे जा सकते हैं, परन्तु इन आचार्यों और ग्रन्थों में कोई भी विशेष महत्त्वपूर्ण प्रभाव रखने वाला नहीं है, अतः कह सकते हैं कि रीतिशास्त्रीय परम्परा डालने वाले पहले आचार्य केशवदास ही हैं।

रस तथा अलंकार का प्रयोग

केशवदास तथा उनके पूर्ववर्ती कवियों का काव्य, प्रवृत्ति की दृष्टि से तो रीतिकाल में आता है, परन्तु कालक्रम की दृष्टि से नहीं। काल विभाजन की दृष्टि से केशव (1550 से 1610 तक), सुन्दर तथा चिन्तामणि (रचनाकाल 1643 ई.के लगभग प्रारम्भ होता है) का स्थान भक्तिकाल के ही अन्तर्गत है। केशवदास के ग्रन्थों में 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' हैं। प्रबन्ध रचना की पद्धति पर लिखा गया 'रामचन्द्रिका' हिन्दी महाकाव्यों की पंक्ति में समादृत है। केशव मूलतः अलंकार सम्प्रदाय के अनुयायी थे। रस सम्प्रदाय के अन्तर्गत सुन्दर तथा चिन्तामणि पूर्व-रीतिकालीन प्रसिद्ध कवि हैं। चिन्तामणि त्रिपाठी की गणना हिन्दी रीतिशास्त्र के उत्कृष्ट और बड़े आचार्यों में है। इनके प्राप्त ग्रन्थों में से 'पिंगल श्रृंगारमंजरी', 'कविकुलकल्पतरु' का विशेष महत्त्व है। रीतिकाल के अन्तर्गत जिन कवियों की गणना की जाती है, वे प्रमुखतः संस्कृत के अलंकार, रस तथा ध्वनि सम्प्रदायों के अनुयायी थे। रीति और वक्रोक्ति सिद्धान्त के आधार पर हिन्दी में कुछ विशेष नहीं लिखा गया।

अलंकार सम्प्रदाय

अलंकार सम्प्रदाय के अनुयायियों में केशव के उपरान्त कालक्रम की दृष्टि से जसवन्त सिंह का नाम आता है। इनका सबसे अधिक प्रसिद्ध रीतिग्रन्थ 'भाषाभूषण' रहा है। मतिराम (1617 ई.) की प्रवृत्ति रस की ओर अधिक है और लक्षणकार की अपेक्षा वे कवि अधिक हैं, फिर भी उनके 'अलंकारपंचाशिका' (1690 ई.) और 'ललितललाम' ग्रन्थ अलंकार पर हैं। भूषण (1613 से 1715 ई.) मतिराम के भाई थे। इन्हें आलंकारिक भी कहना चाहिए। तथापि इनकी उक्तियाँ वीर रस से पूर्ण हैं, फिर भी इनके प्रधान ग्रन्थ 'शिवराजभूषण' (1653 ई.) में अलंकार के ही लक्षण उदाहरण हैं। भूषण महाराज शिवाजी के मित्र तथा उनके दरबारी कवि थे। इस सम्प्रदाय के अन्य प्रमुख कवियों में गोप, रसिक, सुमति, गोविन्द, दूलह (रचनाकाल 1750 से 1755 ई.), बैरीसाल, गोकुलनाथ तथा पद्माकर हैं। पद्माकर (1753 से 1832 ई.) को रीतिकाल का अन्तिम आलंकारिक कवि कहना चाहिए। कवि और रीति ग्रन्थकार, दोनों के ही रूप में पद्माकर का नाम अत्यन्त प्रसिद्ध हुआ।

रस सम्प्रदाय

रस सम्प्रदाय के अन्तर्गत तोष तथा मतिराम की ख्याति विशेष है। तोष कवि का 1637 ई.का लिखा हुआ ग्रन्थ 'सुधानिधि' है। इसकी सरसता उदाहरणों में है। लक्षणों में कोई विवेचन सम्बन्धी नवीनता नहीं है। इसी प्रकार का ग्रन्थ मतिराम (1617 ई.) का 'रसराज' है। इसमें शृंगार का नायक-नायिका भेदरूप में वर्णन है। मतिराम के लक्षण महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, उदाहरण अवश्य बड़े ही सरस, कोमल तथा कल्पनायुक्त हैं। रस के क्षेत्र में सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य आचार्य देव (1673-1768) का है। देव ने रस पर अनेक ग्रन्थ लिखे हैं, जिनमें अधिकतर शृंगार और नायिकाभेद की ही चर्चा है और एक ही प्रकार के भाव अन्य ग्रन्थों में भी आये हैं। रस सम्बन्धी भावना प्रमुखतः 'भावविलास', 'भवानीविलास' और 'काव्यरसायन' में प्रकट हुई है। देव ने रस के दो भेद माने हैं-लौकिक और आलौकिक। देव के पश्चात् कालिदास, कृष्णभट्ट, कुमारमणि, श्रीपति, सोमनाथ, उदयनाभ, 'कवीन्द्र' दास आदि अनेक आचार्यों ने नायिकाभेद और रस पर लिखा है, परन्तु रस के सम्बन्ध में कोई महत्त्वपूर्ण विचार प्रकट नहीं हुए हैं। इस सम्प्रदाय के अन्य कवियों में रसलीन (अंगदर्पण, रसप्रबोध), दास, रूपसाहि,

समनेस, उजियारे, यशवंत सिंह, रामसिंह ('रामनिवास', 1782 ई.) पद्माकर, रसिक, गोविन्द, बेनी प्रवीन तथा काव्य-सौन्दर्य, दोनों ही दृष्टियों से रामसिंह तथा ग्वाल का कार्य महत्त्वपूर्ण है।

ध्वनि के आचार्य

हिन्दी रीतिशास्त्र के अन्तर्गत ध्वनि के सर्वप्रथम आचार्य कुलपति मिश्र हैं। कूर्मवंशी जयसिंह के लिए इन्होंने 'रसरहस्य' की रचना की। 'रसरहस्य' का रचनाकाल 1670 ई.है। कुलपति के विचार प्रौढ़ और प्रामाणिक हैं, पर कोई नवीन विचार देखने को नहीं मिलते। कुलपति के बाद देव ने ध्वनि पर लिखा है। इस काल के अन्य कवियों में सूरति मिश्र, कुमारमणि भट्ट, श्रीपति, सोमनाथ, भिखारीदास, प्रतापसाहि तथा रामदास के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। रीतिकाल के आचार्य कवियों में भिखारीदास (रचनाकाल 1728-1750 ई.) का नाम प्रथमपंक्तिय है। दास ने 'रससारांश', 'छन्दोर्णवपिंगल', 'काव्यनिर्णय' और ' श्रृंगारनिर्णय' ग्रन्थ काव्यशास्त्र पर लिखे। काव्यशास्त्र की दृष्टि से सबसे प्रौढ़ और प्रसिद्ध ग्रन्थ 'काव्यनिर्णय' है, जिसमें ध्वनि का विवेचन और रस, अलंकार, गुण, दोष आदि का वर्णन है। हिन्दी रीतिकाव्य (लक्षणरहित काव्य) की परम्परा भक्तिकाल ही प्रारम्भ हो जाती है। कृपाराम, ब्रह्म (बीरबल), गंग, बलभद्र मिश्र, केशवदास, रहीम तथा मुबारक कालक्रम की दृष्टि से यद्यपि भक्तिकाल के अन्तर्गत आते हैं, परन्तु उनकी काव्यपद्धति प्रायः रीतिप्रधान ही थी। उनके कृतित्त्व में प्रमुख ध्यान काव्य रचना का है और कोई यदि है तो गौण। रीतिकाव्य की प्रेरणा मुख्यतः आचार्य केशवदास और अकबर के दरबारी कवियों से ही प्राप्त हुई थी। इस परम्परा के साथ काव्य की एक स्वच्छन्द धारा का विकास हुआ, जिसके प्रवाह ने रीतिकाल में समस्त काव्य रसिकों को ओत-प्रोत कर दिया।

अन्य कवि

इस युग के रीति-कवियों में सबसे प्रथम सेनापति (1589 ई.) का नाम आता है। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'कवित्तरत्नाकर' है। सेनापति की विशेष प्रसिद्धि उनके प्रकृति चित्रण तथा श्लेषचमत्कार के कारण है। 'कवित्तरत्नाकर' की रचना सन् 1649 ई.में हुई। रीतिकाव्य की इस प्रथम महत्त्वपूर्ण रचना ने हिन्दी रीतिकाव्य को अतिशय प्रेरणा प्रदान की, इसमें सन्देह नहीं। बिहारीलाल

(1603–1662 ई.) रीतिकाव्य के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं और उनकी यह ख्याति उनके अन्यतम ग्रन्थ 'सतसई' पर आधारित है, जिसे उन्होंने जयपुर के महाराज जयशाह के आदेश पर लिखा था। मुक्तक रचना होते हुए भी सतसई में सतसई का ध्यान अलंकार, रस, भाव, नायिका-भेद, ध्वनि, वक्रोक्ति, रीति, गुण आदि सब पर है और सभी के सुन्दर उदाहरण इसमें हैं।

रीति-परम्परा का पालन करते हुए और भाई होते हुए भी भूषण (1613–1715) की प्रकृति मतिराम के बिल्कुल विपरीत है। भूषण का काव्य ओजपूर्ण और वीर रस से ओत-प्रोत है, अतः रीतिकाव्य की श्रृंगारिक परम्परा का अनुगमन न करके ये वीर-परम्परा का मार्ग प्रशस्त करने वाले हैं। वीर रस पर लिखने वाले तो रीतिकाल में और भी कवि हैं, पर रीति परम्परा पर वीर काव्य लिखने वाले भूषण अकेले हैं। शिवाजी की वीरता तथा अन्य गुणों से प्रेरित भूषण का 'शिवराजभूषण' अलंकारिक सौन्दर्य से भरपूर है। ललित शब्दावली में कोमल भावनाओं को व्यक्त करने वाले सुकुमार कल्पना के कवि मतिराम (1617 ई.) का काव्य रीतिकाव्य का प्रतिनिधित्व करता है। उनके ग्रन्थ 'ललितललाम', 'रसराज', 'अलंकारपंचाशिका' आदि में यद्यपि लक्षण दिये हुए हैं, फिर भी प्रधानता उदाहरण काव्य की है, अतः उनकी गणना रीतिशास्त्रियों में अधिक रीति-कवियों में होती है।

घनानन्द (रचनाकाल 1658 ई.) प्रसिद्ध प्रेमी, भक्त और कवि थे। उनका ध्यान अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, नायिका-भेद, रस आदि की ओर नहीं है, फिर भी इनकी रचना में आलंकारिक चमत्कार तथा श्रृंगार के संयोग और वियोग, दोनों ही पक्षों का इतना दक्षतापूर्ण वर्णन है कि रीति-परम्परा का प्रयास उससे स्पष्ट लक्षित होता है। घनानन्द का 'सुजानसागर' रीतिकाव्य के प्रसिद्ध ग्रन्थों में एक है। देव (1673 ई.) को आचार्य और कवि, दोनों ही रूपों में सफलता प्राप्त हुई है। उनके कृतित्त्व में मौलिकता तथा कवित्वशक्ति का विलक्षण संयोग हुआ है। भाव की पकड़, सूक्ष्म निरीक्षण, भाषा पर अधिकार, छन्द की गति, शब्दवर्णमैत्री, सरसता और उक्तिवैचित्य, सब मिलकर देव की रचना को स्मरणीय बनाते हैं। मानव स्वभाव का उन्हें बड़ा सूक्ष्म ज्ञान था। अपने ग्रन्थ 'भावविलास' की रचना देव ने 16 वर्ष की अवस्था में की थी।

भिखारीदास (रचनाकाल 1728–1750 ई.) आचार्य और कवि, दोनों ही रूपों में उत्कृष्ट हैं जहाँ अपने ग्रन्थों में इन्होंने ध्वनि, अलंकार, रस, नायिका-भेद, छन्द आदि के लक्षण और विवेचन प्रस्तुत किये हैं, वहाँ उनके उदाहरणों द्वारा

प्रस्तुत कविता रीतिकाव्य का सुन्दर नमूना है। भिखारीदास के समकालीन रसलीन (सैयद गुलाम नबी बिलग्रामी) का काव्य बड़ा ही चुटीला है और उक्तिचमत्कार के कारण इनके दोहे अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इनके लिखे दो ग्रन्थ मिले हैं-'अंगदर्पण' और 'रसप्रबोध'। बेनी प्रबीन (1753-1833 ई.) रीतिकाव्य के अन्तिम प्रतिभासम्पन्न कवि हैं। इनके ग्रन्थ 'जगद्विनोद' तथा फुटकर छन्दों में रीतिकाव्य की प्रवृत्तियों का सुन्दर परिचय मिलता है। पद्माकर में भावविवृत्ति की विलक्षण शक्ति है। ग्वाल (रचनाकाल 1822-1861 ई.) भी पद्माकर की परिपाटी पर हैं। इनकी भाषा अधिक प्रांजल न होकर बाजारूपन लिये हैं। फिर भी इनके वर्णन सुन्दर हैं।

5

आधुनिक काल : हिंदी साहित्य

आधुनिक काल हिंदी साहित्य (1850 ईसवी- अब तक): आधुनिक काल रीतिकाल के बाद का काल है। आधुनिक काल को हिंदी भाषा साहित्य का सर्वश्रेष्ठ युग माना जा सकता है, जिसमें पद्य के साथ-साथ गद्य, कहानी, समालोचना, नाटक व पत्रकारिता का भी विकास हुआ।

1800 विक्रम संबत के उपरांत भारत में अनेक यूरोपीय जातियां व्यापार के लिए आईं। उनके संपर्क से यहां पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव पड़ना प्रारंभ हुआ। विदेशियों ने यहां के देशी राजाओं की पारस्परिक फूट से लाभ उठाकर अपने पैर जमाने में सफलता प्राप्त की। जिसके परिणाम-स्वरूप यहां पर ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना हुई। अंग्रेजों ने यहां अपने शासन कार्य को सुचारु रूप से चलाने एवं अपने धर्म-प्रचार के लिए जन-साधारण की भाषा को अपनाया। इस कार्य के लिए गद्य ही अधिक उपयुक्त होती है। इस कारण आधुनिक युग की मुख्य विशेषता गद्य की प्रधानता रही।

इस काल में होने वाले मुद्रण कला के आविष्कार ने भाषा-विकास में महान योगदान दिया। स्वामी दयानंद ने भी आर्य समाज के ग्रंथों की रचना राष्ट्रभाषा हिंदी में की और अंग्रेज मिशनरियों ने भी अपनी प्रचार पुस्तकें हिंदी गद्य में ही छपवाई। इस तरह विभिन्न मतों के प्रचार कार्य से भी हिंदी गद्य का समुचित विकास हुआ।

इस काल में राष्ट्रीय भावना का भी विकास हुआ। इसके लिए शृंगारी ब्रजभाषा की अपेक्षा खड़ी बोली उपयुक्त समझी गई। समय की प्रगति के साथ गद्य और पद्य दोनों रूपों में खड़ी बोली का पर्याप्त विकास हुआ। भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र तथा बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री ने खड़ी बोली के दोनों रूपों को सुधारने में महान प्रयत्न किया। उन्होंने अपनी सर्वतोन्मुखी प्रतिभा द्वारा हिंदी साहित्य की सम्यक संवर्धना की।

इस काल के आरंभ में राजा लक्ष्मण सिंह, भारतेंदु हरिश्चंद्र, जगन्नाथ दास रत्नाकर, श्रीधर पाठक, रामचंद्र शुक्ल आदि ने ब्रजभाषा में काव्य रचना की। इनके उपरांत भारतेंदु जी ने गद्य का समुचित विकास किया और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इसी गद्य को प्रांजल रूप प्रदान किया। इसकी सत्प्रेरणाओं से अन्य लेखकों और कवियों ने भी अनेक भांति की काव्य रचना की। इनमें मैथिलीशरण गुप्त, रामचरित उपाध्याय, नाथूराम शर्मा शंकर, ला. भगवान दीन, रामनरेश त्रिपाठी, जयशंकर प्रसाद, गोपाल शरण सिंह, माखन लाल चतुर्वेदी, अनूप शर्मा, रामकुमार वर्मा, श्याम नारायण पांडेय, दिनकर, सुभद्रा कुमारी चौहान, महादेवी वर्मा आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रभाव से हिंदी-काव्य में भी स्वच्छंद (अतुकांत) छंदों का प्रचलन हुआ।

भारतेंदु युग

भारतेंदु युग का नामकरण हिंदी नवजागरण के अग्रदूत भारतेंदु हरिश्चंद्र के नाम पर किया गया है। भारतेंदु युग की प्रवृत्तियां नवजागरण, सामाजिक, चेतना, भक्ति भावना, शृंगारिक्ता रीति निरूपण समस्या पूर्ति थी। हिंदी साहित्य के भारतेंदु युग में भारतेंदु को केंद्र में रखते हुए अनेक कृति साहित्यकारों का एक उज्जवल मंडल प्रस्तुत हुआ, जिसे भारतेंदु मंडल के नाम से जाना गया। इसमें भारतेंदु के समान धर्मा रचनाकार थे। इस मंडल के रचनाकारों ने भारतेंद्र से प्रेरणा ग्रहण की और हिंदी साहित्य की श्रीवृद्धि का काम किया।

आधुनिक हिंदी काव्य के प्रथम चरण को 'भारतेन्दु युग' की संज्ञा प्रदान की गई है। भारतेन्दु हरिश्चंद्र को हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग का प्रतिनिधि माना जाता है। उन्होंने 'कविवचन सुधा', 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' और 'हरिश्चंद्र पत्रिका' भी निकाली। इसके साथ ही अनेक नाटकों आदि की रचना भी की। भारतेन्दु युग में निबंध, नाटक, उपन्यास तथा कहानियों की रचना हुई।

नवजागरण काल–भारतेंदु काल को 'नवजागरण काल' भी कहा गया है। हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के संक्राति काल के दो पक्ष हैं। इस समय के दरम्यान एक और प्राचीन परिपाटी में काव्य रचना होती रही और दूसरी ओर सामाजिक राजनीतिक क्षेत्रों में जो सक्रियता बढ़ रही थी और परिस्थितियों के बदलाव के कारण जिन नये विचारों का प्रसार हो रहा था, उनका भी धीरे–धीरे साहित्य पर प्रभाव पड़ने लगा था।

प्रारंभ के 25 वर्षों (1843 से 1869) तक साहित्य पर यह प्रभाव बहुत कम पड़ा, किन्तु सन् 1868 के बाद नवजागरण के लक्षण अधिक स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगे थे। विचारों में इस परिवर्तन का श्रेय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को है। इसलिए इस युग को 'भारतेन्दु युग' भी कहते हैं। भारतेन्दु के पहले ब्रजभाषा में भक्ति और शृंगार परक रचनाएँ होती थीं और लक्षण ग्रंथ भी लिखे जाते थे।

भारतेन्दु के समय से काव्य के विषय चयन में व्यापकता और विविधता आई। शृंगारिकता, रीतिबद्धता में कमी आई। राष्ट्र–प्रेम, भाषा–प्रेम और स्वदेशी वस्तुओं के प्रति प्रेम कवियों के मन में भी पैदा होने लगा। उनका ध्यान सामाजिक समस्याओं और उनके समाधान की ओर भी गया। इस प्रकार उन्होंने सामाजिक राजनीतिक क्षेत्रों में गतिशील नवजागरण को अपनी रचनाओं के द्वारा प्रोत्साहित किया।

भारतेंदु युग के प्रमुख रचनाकार

भारतेंदु मंडल के प्रमुख रचनाकार भारतेंदु हरिश्चंद्र, प्रताप नारायण मिश्र, बद्रीनारायण चौधरी (प्रेमघन), बालकृष्ण भट्ट, अंबिकादत्त व्यास, राधा चरण गोस्वामी, ठाकुर जगमोहन सिंह, लाला श्रीनिवास दास, सुधाकर द्विवेदी, राधा कृष्ण दास आदि थे। (देखें–भारतेंदु युग के प्रमुख रचनाकार और उनकी रचनाएँ)

द्विवेदी युग

हिंदी साहित्य में दिवेदी युग बीसवीं सदी के पहले दो दशकों का युग है। द्विवेदी युग का समय सन् 1900 से 1920 तक माना जाता है। बीसवीं शताब्दी के पहले दो दशक के पथ–प्रदर्शक, विचारक और साहित्य नेता आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर ही इस काल का नाम 'द्विवेदी युग' पड़ा। इसे 'जागरण सुधारकाल' भी कहा जाता है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी हिन्दी के ऐसे पहले लेखक थे, जिन्होंने अपनी जातीय परंपरा का गहन अध्ययन ही नहीं किया था, अपितु उसे आलोचकीय दृष्टि से भी देखा। उन्होंने वेदों से लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक के संस्कृत साहित्य की निरंतर प्रवाहमान धारा का अवगाहन किया एवं उपयोगिता तथा कलात्मक योगदान के प्रति एक वैज्ञानिक नजरिया अपनाया। कविता की दृष्टि से द्विवेदी युग 'इतिवृत्तात्मक युग' था। इस समय आदर्शवाद का बोलबाला रहा।

भारत का उज्ज्वल अतीत, देश-भक्ति, सामाजिक सुधार, स्वभाषा-प्रेम आदि कविता के मुख्य विषय थे। नीतिवादी विचारधारा के कारण शृंगार का वर्णन मर्यादित हो गया। कथा-काव्य का विकास इस युग की विशेषता है। मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी आदि इस युग के यशस्वी कवि थे।

जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने इसी युग में ब्रजभाषा में सरस रचनाएँ प्रस्तुत कीं। दो दशकों के कालखंड में हिंदी कविता को शृंगारिकता से राष्ट्रीयता, जड़ता से प्रगति तथा रूढ़ि से स्वच्छंदता के द्वार पर ला खड़ा किया। द्विवेदी युग को जागरण सुधार काल भी कहा जाता है .द्विवेदी युग के पथ प्रदर्शक विचारक और सर्व स्वीकृत साहित्य नेता आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर इसका नाम द्विवेदी युग रखा गया है।

सन् 1903 में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' पत्रिका के संपादन का भार संभाला। उन्होंने खड़ी बोली गद्य के स्वरूप को स्थिर किया और पत्रिका के माध्यम से रचनाकारों के एक बड़े समुदाय को खड़ी बोली में लिखने को प्रेरित किया। इस काल में निबंध, उपन्यास, कहानी, नाटक एवं समालोचना का अच्छा विकास हुआ। इस युग के निबंधकारों में महावीर प्रसाद द्विवेदी, माधव प्रसाद मिश्र, श्यामसुंदर दास, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, बालमुकंद गुप्त और अध्यापक पूर्णसिंह आदि उल्लेखनीय हैं। इनके निबंध गंभीर, ललित एवं विचारात्मक हैं, किशोरीलाल गोस्वामी और बाबू गोपाल राम गहमरी के उपन्यासों में मनोरंजन और घटनाओं की रोचकता है।

हिन्दी कहानी का वास्तविक विकास 'द्विवेदी युग' से ही शुरू हुआ। किशोरी लाल गोस्वामी की 'इंदुमती' कहानी को कुछ विद्वान् हिन्दी की पहली कहानी मानते हैं। अन्य कहानियों में बंग महिला की 'दुलाई वाली', रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय', जयशंकर प्रसाद की 'ग्राम' और चंद्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था' आदि महत्त्वपूर्ण हैं। समालोचना के क्षेत्र में पद्मसिंह

शर्मा उल्लेखनीय हैं। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', शिवनंदन सहाय तथा राय देवीप्रसाद पूर्ण द्वारा भी कुछ नाटक लिखे गए

द्विवेदी युग के प्रमुख कवि

इस युग के प्रसिद्ध कवियों में जिन्हें गिना जाता है, उनके नाम इस प्रकार हैं- ' आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, ' अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', ' रामचरित उपाध्याय, ' जगन्नाथदास 'रत्नाकर', ' गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', ' श्रीधर पाठक, ' रामनरेश त्रिपाठी, ' मैथिलीशरण गुप्त, ' लोचन प्रसाद पाण्डेय, ' सियारामशरण गुप्त।

द्विवेदी युग की विशेषताएँ

'द्विवेदी युग' की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

- अशिक्षा, गरीबी, अनाचार, अत्याचार आदि से छुटकारा दिलाने की कामना।
- देश प्रेम एवं राष्ट्रीयता का सन्देश।
- नारी के प्रति सहानुभूति की भावना।
- समाज सुधार के प्रयास।
- नैतिकता एवं आर्दशवाद की पुष्टि।
- सत्यम, शिवम, सुन्दरम का विधान।
- मनोरम प्रकृति चित्रण।
- सरल, सुबोध एवं सरस खड़ी बोली में काव्य की रचना।

छायावादी युग

हिंदी साहित्य के इतिहास में छायावाद युग के वास्तविक अर्थ को लेकर विद्वानों में विभिन्न मतभेद है। छायावाद का अर्थ मुकुटधर पांडे ने 'रहस्यवाद, सुशील कुमार ने 'अस्पष्टता' महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'अन्योक्ति पद्धति' रामचंद्र शुक्ल ने 'शैली बैचिल्य' 'नंददुलारे बाजपेई ने 'आध्यात्मिक छाया का भान' डॉ. नगेंद्र ने 'स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह' बताया है।

छायावाद युग

'द्विवेदी युग' के बाद के समय को छायावाद युग कहा जाता है। बीसवीं सदी का पूर्वार्द्ध छायावादी कवियों का उत्थान काल था। इस युग को जयशंकर

प्रसाद, महादेवी वर्मा, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' और सुमित्रानंदन पंत जैसे–छायावादी प्रकृति उपासक–सौन्दर्य पूजक कवियों का युग कहा जाता है। 'द्विवेदी युग' की प्रतिक्रिया का परिणाम ही 'छायावादी युग' है।

इस युग में हिन्दी साहित्य में गद्य गीतों, भाव तरलता, रहस्यात्मक और मर्मस्पर्शी कल्पना, राष्ट्रीयता और स्वतंत्र चिन्तन आदि का समावेश होता चला गया। इस समय की हिन्दी कविता के अंतरंग और बहिरंग में एकदम परिवर्तन हो गया। वस्तु निरूपण के स्थान पर अनुभूति निरूपण को प्रधानता प्राप्त हुई थी। प्रकृति का प्राणमय प्रदेश कविता में आया। जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रनन्दन पंत और महादेवी वर्मा 'छायावादी युग' के चार प्रमुख स्तंभ माने जाते हैं।

छायावाद के कवि

जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रनंदन पंत और महादेवी वर्मा इस युग के चार प्रमुख कवि हैं।

• 'छायावाद' का केवल पहला अर्थात् मूल अर्थ लेकर तो हिन्दी काव्य क्षेत्र में चलने वाली महादेवी वर्मा ही हैं।

रामकुमार वर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी, हरिवंशराय बच्चन और रामधारी सिंह दिनकर को भी 'छायावाद' ने प्रभावित किया, किंतु रामकुमार वर्मा आगे चलकर नाटककार के रूप में प्रसिद्ध हुए, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रवादी धारा की ओर रहे, बच्चन ने प्रेम के राग को मुखर किया और दिनकर जी ने विद्रोह की आग को आवाज दी।

अन्य कवियों में हरिकृष्ण 'प्रेमी', जानकी वल्लभ शास्त्री, भगवतीचरण वर्मा, उदयशंकर भट्ट, नरेन्द्र शर्मा, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

रचना की दृष्टि से छायावाद के कवि

समालोचक– आचार्य द्विवेदी जी, पद्म सिंह शर्मा, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, डाक्टर रामकुमार वर्मा, श्यामसुंदर दास, डॉ. रामरतन भटनागर आदि हैं।

कहानी लेखक–प्रेमचंद, विनोद शंकर व्यास, प्रसाद, पंत, गुलेरी, निराला, कौशिक, सुदर्शन, जैनेंद्र, हृदयेश आदि।

उपन्यासकार-प्रेमचंद, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, प्रसाद, उग्र, हृदयेश, जैनेंद्र, भगवतीचरण वर्मा, वृंदावन लाल वर्मा, गुरुदत्त आदि।

नाटककार- प्रसाद, सेठ गोविंद दास, गोविंद वल्लभ पंत, लक्ष्मी नारायण मिश्र, उदय शंकर भट्ट, रामकुमार वर्मा आदि हैं।

निबंध लेखक- आचार्य द्विवेदी, माधव प्रसाद शुक्ल, रामचंद्र शुक्ल, बाबू श्यामसुंदर दास, पद्म सिंह, अध्यापक पूर्णसिंह आदि।

कवि क्रम अनुसार छायावादी रचनाएँ

जयशंकर प्रसाद (1889-1936 ई.) के काव्य- 'चित्रधार' (ब्रज भाषा में रचित कविताएँ), 'कानन-कुसुम', 'महाराणा का महत्त्व', 'करुणालय', 'झरना', 'आंसू', 'लहर' और 'कामायनी'।

सुमित्रनंदन पंत (1900-1977ई.) के काव्य- 'वीणा', 'ग्रंथि', 'पल्लव', 'गुंजन', 'युगांत', 'युगवाणी', 'ग्राम्या', 'स्वर्ण-किरण', 'स्वर्ण-धूलि', 'युगान्तर', 'उत्तरा', 'रजत-शिखर', 'शिल्पी', 'प्रतिमा', 'सौवर्ण', 'वाणी', 'चिदंबरा', 'रश्मिबंध', 'कला और बूढ़ा चाँद', 'अभिषेकित', 'हरीश सुरी सुनहरी टेर', 'लोकायतन', 'किरण वीणा'।

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (1898-1961 ई.) के काव्य-'अनामिका', 'परिमल', 'गीतिका', 'तुलसीदास', 'आराधना', 'कुकुरमुत्ता', 'अणिमा', 'नए पत्ते', 'बेला', 'अर्चना'।

महादेवी वर्मा (1907-1988 ई.) की काव्य रचनाएँ- 'रश्मि', 'निहार', 'नीरजा', 'सांध्यगीत', 'दीपशिखा', 'यामा'।

डॉ. रामकुमार वर्मा की काव्य रचनाएँ- 'अंजलि', 'रूपराशि', 'चितौड़ की चिता', 'चंद्रकिरण', 'अभिशाप', 'निशीथ', 'चित्ररेखा', 'वीर हमीर', 'एकलव्य'।

हरिकृष्ण 'प्रेमी' की काव्य रचनाएँ- 'आखों में', 'अनंत के पथ पर', 'रूपदर्शन', 'जादूगरनी', 'अग्निगान', 'स्वर्णविहान'।

छायावादी युग में कवियों का एक वर्ग ऐसा भी था, जो सूरदास, तुलसीदास, सेनापति, बिहारी और घनानंद जैसी समर्थ प्रतिभा संपन्न काव्य-धारा को जीवित रखने के लिए ब्रजभाषा में काव्य रचना कर रहे थे।

'भारतेंदु युग' में जहाँ ब्रजभाषा का काव्य प्रचुर मात्रा में लिखा गया, वहीं छायावाद आते-आते ब्रजभाषा में गौण रूप से काव्य रचना लिखी जाती रहीं। इन

कवियों का मत था कि ब्रजभाषा में काव्य की लंबी परम्परा ने उसे काव्य के अनुकूल बना दिया है।

छायावादी युग में ब्रजभाषा में काव्य रचना करने वाले कवियों में रामनाथ जोतिसी, रामचंद्र शुक्ल, राय कृष्णदास, जगदंबा प्रसाद मिश्र 'हितैषी', दुलारे लाल भार्गव, वियोगी हरि, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', अनूप शर्मा, रामेश्वर 'करुण', किशोरीदास वाजपेयी, उमाशंकर वाजपेयी 'उमेश' प्रमुख हैं।

- रामनाथ जोतिसी की रचनाओं में 'रामचंद्रोदय' मुख्य है। इसमें रामकथा को युग के अनुरूप प्रस्तुत किया गया है। इस काव्य पर केशव की 'रामचंद्रिका' का प्रभाव लक्षित होता है। विभिन्न छंदों का सफल प्रयोग हुआ है।
- रामचंद्र शुक्ल, जो मूलत: आलोचक थे, ने 'एडविन आर्नल्ड' के आख्यान काव्य 'लाइट ऑफ एशिया' का 'बुद्धचरित' शीर्षक से भावानुवाद किया। शुक्ल जी की भाषा सरल और व्यावहारिक है।
- राय कृष्णदास कृत 'ब्रजरस', जगदम्बा प्रसाद मिश्र 'हितैषी' द्वारा रचित 'कवित्त-सवैये' और दुलारेलाल भार्गव की 'दुलारे-दोहावली' इस काल की प्रमुख व उल्लेखनीय रचनाएँ हैं।
- वियोगी हरि की 'वीर सतसई' में राष्ट्रीय भावनाओं की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति हुई है।
- बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने अनेक स्फुट रचनाएँ लिखीं, लेकिन इनका ब्रजभाषा का वैशिष्टय 'ऊर्मि्मला' महाकाव्य में लक्षित होता है, जहाँ इन्होंने उर्मिला का उज्ज्वल चरित्र-चित्रण किया है।
- अनूप शर्मा के चम्पू काव्य 'फेरि-मिलिबो' (1938) में कुरुक्षेत्र में राधा और कृष्ण के पुनर्मिलन का मार्मिक वर्णन है।
- रामेश्वर 'करुण' की 'करुण-सतसई' (1930) में करुणा, अनुभूति की तीव्रता और समस्यामूलक अनेक व्यंग्यों को देखा जा सकता है।
- किशोरी दास वाजपेयी की 'तरंगिणी' में रचना की दृष्टि से प्राचीनता और नवीनता का सुंदर समन्वय देखा जा सकता है।
- उमाशंकर वाजपेयी 'उमेश' की रचनाओं में भी भाषा और संवेदना की दृष्टि से नवीनता दिखाई पड़ती है।

'इन रचनाओं में नवीनता और छायावादी काव्य की सूक्ष्मता प्रकट हुई है, यदि इस भाषा का काव्य परिमाण में अधिक होता तो यह काल ब्रजभाषा का छायावाद साबित होता।

आधुनिक काल की विशेषता आधुनिक काल की प्रवृत्तियाँ

आधुनिक रीतिकाल के बाद का काल है। सन् 1857 से लेकर अब तक आधुनिक काल कहलाता है–। सन् 1857 में एक ऐसी घटना घटी कि सारा देश हिल और सिहर गया और उसका परिणाम अति दूरगामी सिद्ध हुआ–यह थी प्रथम भारतीय स्वंतंत्र संग्राम की घटना। इसके बाद भारत में एक नयी चेतना जागी और रीतिकाल के विलासितापूर्ण मादक प्रभाव से मुक्त होकर वह नवयुग की अंगडाई लेने लगा–और सन् 1857 ई. में आधुनिक काल का जन्म हुआ, इस समय भारतेंदु हरिश्चंद्र जो आधुनिक गद्य के निर्माता और जनक कहे जाते हैं, 7 वर्ष के थे और कविता करने लगे। इस काल में धर्म, साहित्य, कला तथा दर्शन के क्षेत्र में नए दृष्टिकोण का सूत्रपात हुआ। यह आधुनिक काल विभिन्न राजनितिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिश्तितियों के संपर्क और सम्नाश्व्य का परिणाम है। इस काल की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ तथा विशेषताओं में काफी विविधता है। इसमें भारतेंदु युग से लेकर नयी कविता तक का काल समाविष्ट है, किन्तु इतने दीर्घकाल में अनेक काव्यधाराओं के बाद भी कुछ सामान्य विशेषताएँ मिलती हैं, जो कि निम्नलिखित है–

1. राष्ट्रीयता एवं अतीत का गौरवगान–राष्ट्रीयता हिंदी साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति है . आधुनिक काल के प्रारंभ से हिंदी कवियों ने भारत माता तथा उसकी संतानों की दुर्दशा में छटपटाते देखा। उनका हृदय भक्ति, रीति और श्रृंगार परंपरा से हटकर राष्ट्र प्रेम की ओर मुड़ गया। इन कवियों ने देशवासियों को उनके अतीत गौरव याद दिलाकर उनमें उत्साह का भाव भरा। भारतेंदु युग के बाद दिवेदी युग और बाद में भी यह भावना बनी रही। भारतेंदु हरिश्चंद, हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान, रामधारी सिंह दिनकर श्यामनारायण पाण्डेय आदि कवियों ने देश का अतीत गौरव गाकर राष्ट्रीयता की धारा प्रवाहित की है।

2. छायावाद–भारतेंदु युग और द्वेदी युग में रीतिकालीन श्रृंगार धारा जो क्षीण पद गयी थी। छायावाद नामक एक नयी प्रवृत्ति के रूप में प्रथम विश्व युद्ध के बाद उभरी। इसमें व्यक्तिगत धरातल पर प्रभाव और कल्पना लोक में प्रकृति प्रेम और नारी सौन्दर्य को चित्रित किया गया है। इस प्रवृत्ति में कवियों का अतृप्त प्रणय भावना वेदना से रो पड़ी है। प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी वर्मा, रामकुमार वर्मा आदि इस धारा के कवि हैं।

3. रहस्यवाद–छायावादी काव्य की ही यह एक उपधारा है। भक्तिकालीन कवियों के रहस्यवाद से इसमें बड़ी भिन्नता है। प्रकृत्ति के सभी उपकरणों में चेतना का आरोप ही रहस्यवाद है। कतिपय भिन्नता के कारण इसे नवीनता रहस्यवाद भी कहा जाता है। वह आधुनिक काल में छायावादी कवियों में पल्लवित हुई और बाद तक चलती आई है। पन्त, प्रसाद, निराला, महादेवी वर्मा, रामकुमार वर्मा, अज्ञेय आदि कवियों के काव्य में यह धारा देखी जा सकती है।

4. प्रगतिवाद–प्रगतिवाद पूंजीवाद व्यवस्था के विरोध में दीन हीन मजदूरों एवं शोषितों के समर्थन की एक प्रवृत्ति है। इसमें छायावादी सौन्दर्य भावना, रूढ़िवादी संस्कृति, आदर्शवाद आदि का भी विरोध पाया जाता है। सन् 1936 के बाद हिंदी में यह प्रवृत्ति पनपी, निराला, पन्त, अंचल, अश्क, नागार्जुन, रामविलाश शर्मा, अमृत राय, यशपाल, राजेन्द्र यादव आदि ने इस प्रवृत्ति को विकसित करने का सराहनीय कार्य किया है।

5. प्रयोगवाद–इस काव्य प्रवृत्ति के नवीन काव्य शिल्प में जीवन के नए मूल्यों तथा यथार्थवादी प्रवृत्तियों को चित्रित किया गया, इस कार्य के लिए अज्ञेय ने सन् 1943 में तार सप्तक का सम्पादन किया, सन् 1953 तक यह प्रवृत्ति तेजी के साथ विकसित होती रही, बौद्धिकता, मनोविश्लेषन, नवीन जीवन मूल्य तथा नवीन शिल्प प्रयोग इस धारा की प्रमुख विशेषताएँ हैं। अज्ञेय, मुक्तिबोध, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, भवानीप्रसाद मिश्र, नरेश मेहता, रघुवीर सहाय, केदारनाथ सिंह आदि इस धारा के प्रमुख साहित्यकार है।

6. नव लेखन–नव लेखन आधुनिक साहित्यकार की नवीनतम प्रवृत्ति है .नव लेखन की प्रवृत्ति कविता में नयी कविता, नाटक में नए नाटक, कहानी के क्षेत्र में नयी कहानी, उपन्यास के क्षेत्र में नया उपन्यास तथा आलोचना के क्षेत्र में नयी आलोचना है, इसमें मानवता के स्थान पर व्यापक मानवता, बौद्धिकता के स्थान पर शुद्ध बौद्धिकता, व्यंग के स्थान पर तीखा व्यंग और यथार्थ आदि है .

7. अन्य विशेषताएं–हालावाद, यथार्थवाद, प्रतीकवाद, आदर्शवाद आदि साहित्यिक प्रवृत्तियों का भी आधुनिककाल में उदय और विकास हुआ है .ये सभी विशेषताएँ कुछ समय तक ही अस्तित्त्व में रही हैं।

8. खड़ीबोली का विकास –इस युग में खड़ीबोली का विकास गद्य और पद्य दोनों क्षेत्रों में पर्याप्त रूप से हुआ, इस युग में ब्रज, अवधी आदि भाषाएँ लुप्त होती चली गयीं।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में पद्य का विकास

आधुनिक काल में लिखी जाने वाली कविता को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है-

नवजागरण काल (भारतेन्दु युग)-1850 ई.से 1900 ई.तक।
सुधार काल (द्विवेदी युग)-1900 ई.से 1920 ई.तक।
छायावादी युग-1920 ई.से 1936 ई.तक।
प्रगतिवाद-प्रयोगवाद-1936 ई.से 1953 ई.तक।
नई कविता व समकालीन कविता-1953 ई.से अब तक।

नवजागरण काल (भारतेन्दु युग)

इस काल की कविता की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह पहली बार जन-जीवन की समस्याओं से सीधे जुड़ती है। इसमें भक्ति और श्रंगार के साथ साथ समाज सुधार की भावना भी अभिव्यक्त हुई। पारंपरिक विषयों की कविता का माध्यम ब्रजभाषा ही रही, लेकिन जहाँ ये कविताएँ नवजागरण के स्वर की अभिव्यक्ति करती हैं, वहाँ इनकी भाषा हिन्दी हो जाती है। कवियों में भारतेन्दु हरिश्चंद्र का व्यक्तित्त्व प्रधान रहा। उन्हें नवजागरण का अग्रदूत कहा जाता है। प्रताप नारायण मिश्र ने हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्तान की वकालत की। अन्य कवियों में उपाध्याय बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' के नाम उल्लेखनीय हैं।

सुधार काल (द्विवेदी युग)

हिन्दी कविता को नया रंगरूप देने में श्रीधर पाठक का महत्वपूर्ण योगदान है। उन्हें 'प्रथम स्वच्छंदतावादी कवि' कहा जाता है। उनकी 'एकांत योगी' और 'कश्मीर सुषमा' खड़ी बोली की सुप्रसिद्ध रचनाएँ हैं। रामनरेश द्विवेदी ने अपने 'पथिक मिलन' और 'स्वप्न' महाकाव्यों में इस धारा का विकास किया। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के 'प्रिय प्रवास' को खड़ी बोली का पहला महाकाव्य माना गया है। महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा से मैथिलीशरण गुप्त ने खड़ी बोली में अनेक काव्यों की रचना की। इन काव्यों में 'भारत भारती', 'साकेत', 'जयद्रथ वध', 'पंचवटी' और 'जयभारत' आदि उल्लेखनीय हैं। उनकी 'भारत भारती' में स्वाधीनता आंदोलन की ललकार है। राष्ट्रीय प्रेम उनकी कविताओं का प्रमुख स्वर है। इस काल के अन्य कवियों में सियाराम शरण गुप्त,

सुभद्रा कुमारी चौहान, नाथूराम शंकर शर्मा तथा गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

छायावादी युग

कविता की दृष्टि से इस काल में एक दूसरी धारा भी थी, जो सीधे-सीधे स्वाधीनता आंदोलन से जुड़ी थी। इसमें माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', नरेन्द्र शर्मा, रामधारी सिंह 'दिनकर', श्रीकृष्ण सरल आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इस युग की प्रमुख कृतियों में जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' और 'आँसू', सुमित्रनंदन पंत का 'पल्लव', 'गुंजन' और 'वीणा', सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की 'गीतिका' और 'अनामिका', तथा महादेवी वर्मा की श्यामा', 'दीपशिखा' और 'सांध्यगीत' आदि कृतियाँ महत्वपूर्ण हैं। 'कामयनी' को आधुनिक काल का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य कहा जाता है। छायावादोत्तर काल में हरिवंशराय बच्चन का नाम उल्लेखनीय है। छायावादी काव्य में आत्मपरकता, प्रकृति के अनेक रूपों का सजीव चित्रण, विश्व मानवता के प्रति प्रेम आदि की अभिव्यक्ति हुई है। इसी काल में मानव मन सूक्ष्म भावों को प्रकट करने की क्षमता हिन्दी भाषा में विकसित हुई।

प्रगतिवाद

वर्ष 1936 के आस-पास से कविता के क्षेत्र में बड़ा परिवर्तन दिखाई पड़ा। प्रगतिवाद ने कविता को जीवन के यथार्थ से जोड़ा। प्रगतिवादी कवि कार्ल मार्क्स की समाजवादी विचारधारा से प्रभावित हैं। युग की मांग के अनुरूप छायावादी कवि सुमित्रनंदन पंत और सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने अपनी बाद की रचनाओं में प्रगतिवाद का साथ दिया। नरेंद्र शर्मा और दिनकरजी ने भी अनेक प्रगतिवादी रचनाएँ कीं। प्रगतिवाद के प्रति समर्पित कवियों में केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, शमशेर बहादुर सिंह, रामविलास शर्मा, त्रिलोचन शास्त्री और गजानन माधव 'मुक्तिबोध' के नाम उल्लेखनीय हैं। इस धारा में समाज के शोषित वर्ग मजदूर और किसानों के प्रति सहानुभूति व्यक्त की गयी। धार्मिक रूढ़ियों और सामाजिक विषमता पर चोट की गयी और हिन्दी कविता एक बार फिर खेतों और खलिहानों से जुड़ी गई।

प्रयोगवाद

प्रगतिवाद के समानांतर प्रयोगवाद की धारा भी प्रवाहित हुई। अज्ञेय को इस धारा का प्रवर्तक स्वीकर किया गया। सन् 1943 में अज्ञेय ने 'तार सप्तक' का प्रकाशन किया। इसके सात कवियों में प्रगतिवादी कवि अधिक थे। रामविलास शर्मा, प्रभाकर माचवे, नेमिचंद जैन, गजानन माधव 'मुक्तिबोध', गिरिजाकुमार माथुर और भारतभूषण अग्रवाल ये सभी कवि प्रगतिवादी हैं। इन कवियों ने कथ्य और अभिव्यक्ति की दृष्टि से अनेक नवीन प्रयोग किये, अतः 'तार सप्तक' को प्रयोगवाद का आधार ग्रंथ माना गया। अज्ञेय द्वारा संपादित 'प्रतीक' में इन कवियों की अनेक रचनाएँ प्रकाशित हुई थीं।

नई कविता और समकालीन कविता

सन् 1953 ई.में इलाहाबाद से 'नई कविता' पत्रिका का प्रकाशन हुआ। इस पत्रिका में नई कविता को प्रयोगवाद से भिन्न रूप में प्रतिष्ठित किया गया। दूसरा सप्तक (1951), तीसरा सप्तक (1951) तथा चौथे सप्तक के कवियों को भी नए कवि कहा गया। वस्तुतः नई कविता को प्रयोगवाद का ही भिन्न रूप माना जाता है। इसमें भी दो धराएँ परिलक्षित होती हैं-

वैयक्तिकता को सुरक्षित रखने का प्रयत्न करने वाली धारा-इसमें अज्ञेय, धर्मवीर भारती, कुंवर नारायण, श्रीकांत वर्मा, जगदीश गुप्त प्रमुख हैं।

प्रगतिशील धारा-जिसमें गजानन माधव 'मुक्तिबोध', रामविलास शर्मा, नागार्जुन, शमशेर बहादुर सिंह, त्रिलोचन शास्त्री, रघुवीर सहाय, केदारनाथ सिंह तथा सुदामा पांडेय धूमिल आदि उल्लेखनीय हैं।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना में इन दोनों धराओं का मेल दिखाई पड़ता है। इन दोनों ही धाराओं में अनुभव की प्रामाणिकता, लघुमानव की प्रतिष्ठा तथा बौधिकता का आग्रह आदि प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं। साधारण बोलचाल की शब्दावली में असाधारण अर्थ भर देना इनकी भाषा की विशेषता है। समकालीन कविता में गीत, नवगीत और गजल की ओर रुझान बढ़ा है। आज हिन्दी की निरंतर गतिशील और व्यापक होती हुई काव्य धारा में संपूर्ण भारत के सभी प्रदेशों के साथ ही साथ संपूर्ण विश्व में लोकिप्रिय हो रही है। इसमें आज देश विदेश में रहने वाले अनेक नागरिकताओं के असंख्य विद्वानों और प्रवासी भारतीयों का योगदान निरंतर जारी है।

6

हिन्दी भाषा के विविध रूप

हिन्दी विश्व की एक प्रमुख भाषा है एवं भारत की राजभाषा है। केन्द्रीय स्तर पर भारत में दूसरी आधिकारिक भाषा अंग्रेजी है। यह हिंदुस्तानी भाषा की एक मानकीकृत रूप है, जिसमें संस्कृत के तत्सम तथा तद्भव शब्दों का प्रयोग अधिक है और अरबी-फारसी शब्द कम हैं। हिंदी संवैधानिक रूप से भारत की राजभाषा और भारत की सबसे अधिक बोली और समझी जाने वाली भाषा है। हालाँकि, हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा नहीं है, क्योंकि भारत के संविधान में कोई भी भाषा को ऐसा दर्जा नहीं दिया गया था। चीनी के बाद यह विश्व में सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा भी है। विश्व आर्थिक मंच की गणना के अनुसार यह विश्व की दस शक्तिशाली भाषाओं में से एक है।

हिन्दी और इसकी बोलियाँ सम्पूर्ण भारत के विविध राज्यों में बोली जाती हैं। भारत और अन्य देशों में भी लोग हिंदी बोलते, पढ़ते और लिखते हैं। फिजी, मॉरिशस, गयाना, सूरीनाम, नेपाल और संयुक्त अरब अमीरात की जनता भी हिन्दी बोलती है। फरवरी 2019 में अबू धाबी में हिन्दी को न्यायालय की तीसरी भाषा के रूप में मान्यता मिली।

सन् 2001 की भारतीय जनगणना में भारत में 42 करोड़ 20 लाख लोगों ने हिन्दी को अपनी मूल भाषा बताया। भारत के बाहर, हिंदी बोलने वाले संयुक्त राज्य अमेरिका में 8, 63, 077, मॉरीशस में 6, 85, 170, दक्षिण अफ्रीका में

8, 90, 292, यमन में 2, 32, 760, युगांडा में 1, 47, 000, सिंगापुर में 5, 000, नेपाल में 8 लाख, जर्मनी में 30, 000 हैं। न्यूजीलैंड में हिंदी चौथी सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा है।

इसके अलावा भारत, पाकिस्तान और अन्य देशों में 14 करोड़ 10 लाख लोगों द्वारा बोली जाने वाली उर्दू, मौखिक रूप से हिन्दी के काफी समान है। लोगों का एक विशाल बहुमत हिंदी और उर्दू दोनों को ही समझता है। भारत में हिन्दी, विभिन्न भारतीय राज्यों की 14 आधिकारिक भाषाओं और क्षेत्र की बोलियों का उपयोग करने वाले लगभग 1 अरब लोगों में से अधिकांश की दूसरी भाषा है

हिन्दी भारत में सम्पर्क भाषा का कार्य करती है और कुछ हद तक पूरे भारत में आमतौर पर एक सरल रूप में समझी जाने वाली भाषा है। हिन्दी का कभी-कभी नौ भारतीय राज्यों के संदर्भ में भी उपयोग किया जाता है, जिनकी आधिकारिक भाषा हिंदी है और हिन्दी भाषी बहुमत है, अर्थात् बिहार, छत्तीसगढ़, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, झारखंड, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली का।

'देशी', 'भाखा' (भाषा), 'देशना वचन' (विद्यापति), 'हिंदवी', 'दक्खिनी', 'रेखता', 'आर्यभाषा' (दयानन्द सरस्वती), 'हिंदुस्तानी', 'खड़ी बोली', 'भारती' आदि हिंदी के अन्य नाम हैं, जो विभिन्न ऐतिहासिक कालखण्डों में एवं विभिन्न संदर्भों में प्रयुक्त हुए हैं।

लिपि

हिन्दी को देवनागरी लिपि में लिखा जाता है। इसे नागरी नाम से भी पुकारा जाता है। देवनागरी में 11 स्वर और 33 व्यंजन हैं और अनुस्वार, अनुनासिक एवं विसर्ग होता है तथा इसे बायें से दाईं ओर लिखा जाता है।

'हिंदी' शब्द की व्युत्पत्ति

हिन्दी शब्द का सम्बंध संस्कृत शब्द सिंधु से माना जाता है। 'सिंधु' सिंध नदी को कहते थे और उसी आधार पर उसके आस-पास की भूमि को सिन्धु कहने लगे। यह सिंधु शब्द ईरानी में जाकर 'हिंदू', हिंदी और फिर 'हिंद' हो गया। बाद में ईरानी धीरे-धीरे भारत के अधिक भागों से परिचित होते गए और इस शब्द के अर्थ में विस्तार होता गया तथा हिंद शब्द पूरे भारत का वाचक हो गया। इसी

में ईरानी का ईक प्रत्यय लगने से (हिन्दईक) 'हिंदीक' बना जिसका अर्थ है 'हिन्द का'। यूनानी शब्द 'इन्दिका' या अंग्रेजी शब्द 'इंडिया' आदि इस 'हिंदीक' के ही विकसित रूप हैं। हिंदी भाषा के लिए इस शब्द का प्राचीनतम प्रयोग शरफुद्दीन यज्दी' के 'जफरनामा' (1424) में मिलता है।

प्रोफेसर महावीर सरन जैन ने अपने ' हिंदी एवं उर्दू का अद्वैत ' शीर्षक आलेख में हिंदी की व्युत्पत्ति पर विचार करते हुए कहा है कि ईरान की प्राचीन भाषा अवेस्ता में 'स्' ध्वनि नहीं बोली जाती थी। 'स्' को 'ह' रूप में बोला जाता था। जैसे–संस्कृत के 'असुर' शब्द को वहाँ 'अहुर' कहा जाता था। अफगानिस्तान के बाद सिंधु नदी के इस पार हिंदुस्तान के पूरे इलाके को प्राचीन फारसी साहित्य में भी 'हिंद', 'हिंदुश' के नामों से पुकारा गया है तथा यहाँ की किसी भी वस्तु, भाषा, विचार को 'एडजेक्टिव' के रूप में 'हिन्दीक' कहा गया है, जिसका मतलब है 'हिन्द का'। यही 'हिन्दीक' शब्द अरबी से होता हुआ ग्रीक में 'इन्दिके', 'इन्दिका', लैटिन में 'इन्दिया' तथा अंग्रेजी में 'इण्डिया' बन गया। अरबी एवं फारसी साहित्य में भारत (हिंद) में बोली जाने वाली भाषाओं के लिए 'जबान-ए-हिन्दी', पद का उपयोग हुआ है। भारत आने के बाद अरबी-फारसी बोलने वालों ने 'जबान-ए-हिंदी', 'हिंदी जबान' अथवा 'हिंदी' का प्रयोग दिल्ली-आगरा के चारों ओर बोली जाने वाली भाषा के अर्थ में किया। भारत के गैर-मुस्लिम लोग तो इस क्षेत्र में बोले जाने वाले भाषा-रूप को 'भाखा' नाम से पुकारते थे, 'हिंदी' नाम से नहीं।

हिन्दी एवं उर्दू

भाषाविद हिन्दी ब्लॉग एवं उर्दू को एक ही भाषा समझते है। हिन्दी देवनागरी लिपि में लिखी जाती है और शब्दावली के स्तर पर अधिकांशत: संस्कृत के शब्दों का प्रयोग करती है। उर्दू, फारसी लिपि में लिखी जाती है और शब्दावली के स्तर पर उस पर फारसी और अरबी भाषाओं का प्रभाव अधिक है। व्याकरणिक रूप से उर्दू और हिन्दी में लगभग शत-प्रतिशत समानता है। केवल कुछ विशेष क्षेत्रों में शब्दावली के स्रोत (जैसा कि ऊपर लिखा गया है) में अंतर होता है। कुछ विशेष ध्वनियाँ उर्दू में अरबी और फारसी से ली गयी हैं और इसी प्रकार फारसी और अरबी की कुछ विशेष व्याकरणिक संरचना भी प्रयोग की जाती है। उर्दू और हिन्दी को खड़ी बोली की दो शैलियाँ कहा जा सकता है।

हिन्दी हिन्द-यूरोपीय भाषा-परिवार परिवार के अन्दर आती है। ये हिन्द ईरानी शाखा की हिन्द आर्य उपशाखा के अन्तर्गत वर्गीकृत है। हिन्द-आर्य भाषाएँ वो भाषाएँ हैं, जो संस्कृत से उत्पन्न हुई हैं। उर्दू, कश्मीरी, बंगाली, उड़िया, पंजाबी, रोमानी, मराठी नेपाली जैसी भाषाएँ भी हिन्द-आर्य भाषाएँ हैं।

हिन्दी के विभिन्न नाम या रूप

देशी भाषा
आदी भाषा
हिन्दवी
खड़ी बोली।

हिन्दी का मानकीकरण

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से हिन्दी और देवनागरी के मानकीकरण की दिशा में निम्नलिखित क्षेत्रों में प्रयास हुये हैं –

हिन्दी व्याकरण का मानकीकरण।

वर्तनी का मानकीकरण।

शिक्षा मंत्रालय के निर्देश पर केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय द्वारा देवनागरी का मानकीकरण

वैज्ञानिक ढंग से देवनागरी लिखने के लिये एकरूपता के प्रयास

यूनिकोड का विकास।

हिन्दी की शैलियाँ

भाषाविदों के अनुसार हिन्दी के चार प्रमुख रूप या शैलियाँ हैं:

1. उच्च हिन्दी-हिन्दी का मानकीकृत रूप, जिसकी लिपि देवनागरी है। इसमें संस्कृत भाषा के कई शब्द हैं, जिन्होंने फारसी और अरबी के कई शब्दों की जगह ले ली है। इसे शुद्ध हिन्दी भी कहते हैं। आजकल इसमें अंग्रेजी के भी कई शब्द आ गये हैं (खास तौर पर बोलचाल की भाषा में)। यह खड़ीबोली पर आधारित है, जो दिल्ली और उसके आस-पास के क्षेत्रों में बोली जाती थी।
2. दक्खिनी-उर्दू-हिन्दी का वह रूप जो हैदराबाद और उसके आस-पास की जगहों में बोला जाता है। इसमें फारसी-अरबी के शब्द उर्दू की अपेक्षा कम होते हैं।

3. रेख्ता–उर्दू का वह रूप जो शायरी में प्रयुक्त होता था।
4. उर्दू–हिन्दवी का वह रूप जो देवनागरी लिपि के बजाय फारसी–अरबी लिपि में लिखा जाता है। इसमें संस्कृत के शब्द कम होते हैं और फारसी–अरबी के शब्द अधिक। यह भी खड़ीबोली पर ही आधारित है।

हिन्दी और उर्दू दोनों को मिलाकर हिन्दुस्तानी भाषा कहा जाता है। हिन्दुस्तानी मानकीकृत हिन्दी और मानकीकृत उर्दू के बोलचाल की भाषा है। इसमें शुद्ध संस्कृत और शुद्ध फारसी–अरबी दोनों के शब्द कम होते हैं और तद्भव शब्द अधिक। उच्च हिन्दी भारतीय संघ की राजभाषा है (अनुच्छेद 343, भारतीय संविधान)। यह इन भारतीय राज्यों की भी राजभाषा है–उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड, मध्य प्रदेश, उत्तरांचल, हिमाचल प्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, हरियाणा और दिल्ली। इन राज्यों के अतिरिक्त महाराष्ट्र, गुजरात, पश्चिम बंगाल, पंजाब और हिन्दी भाषी राज्यों से लगते अन्य राज्यों में भी हिन्दी बोलने वालों की अच्छी संख्या है। उर्दू पाकिस्तान की और भारतीय राज्य जम्मू और कश्मीर की राजभाषा है, इसके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश, बिहार, तेलंगाना और दिल्ली में द्वितीय राजभाषा है। यह लगभग सभी ऐसे राज्यों की सह–राजभाषा है, जिनकी मुख्य राजभाषा हिन्दी है।

हिन्दी की बोलियाँ

हिन्दी का क्षेत्र विशाल है तथा हिन्दी की अनेक बोलियाँ (उपभाषाएँ) हैं। इनमें से कुछ में अत्यंत उच्च श्रेणी के साहित्य की रचना भी हुई है। ऐसी बोलियों में ब्रजभाषा और अवधी प्रमुख हैं। ये बोलियाँ हिन्दी की विविधता हैं और उसकी शक्ति भी, वे हिन्दी की जड़ों को गहरा बनाती हैं। हिन्दी की बोलियाँ और उन बोलियों की उपबोलियाँ हैं, जो न केवल अपने में एक बड़ी परंपरा, इतिहास, सभ्यता को समेटे हुए हैं, वरन स्वतंत्रता संग्राम, जनसंघर्ष, वर्तमान के बाजारवाद के खिलाफ भी उसका रचना संसार सचेत है।

हिन्दी की बोलियों में प्रमुख हैं- अवधी, ब्रजभाषा, कन्नौजी, बुंदेली, बघेली, भोजपुरी, हरयाणवी, राजस्थानी, छत्तीसगढ़ी, मालवी, नागपुरी, खोरठा, पंचपरगनिया, कुमाउँनी, मगही आदि, किन्तु हिन्दी के मुख्य दो भेद हैं–पश्चिमी हिन्दी तथा पूर्वी हिन्दी।

शब्दावली

हिन्दी शब्दावली में मुख्यत: दो वर्ग हैं-

प्रथम वर्ग

तत्सम शब्द- ये वे शब्द हैं, जिनको संस्कृत से बिना कोई रूप बदले ले लिया गया है, जैसे–अग्नि, दुग्ध दन्त, मुख। (परन्तु हिन्दी में आने पर ऐसे शब्दों से विसर्ग का लोप हो जाता है, जैसे–संस्कृत 'नाम:' हिन्दी में केवल 'नाम' हो जाता है।

तद्भव शब्द- ये वे शब्द हैं, जिनका जन्म संस्कृत या प्राकृत में हुआ था, लेकिन उनमें काफी ऐतिहासिक बदलाव आया है, जैसे–आग, दूध, दाँत, मुँह।

द्वितीय वर्ग

देशज शब्द- देशज का अर्थ है-'जो देश में ही उपजा या बना हो'। तो देशज शब्द का अर्थ हुआ जो न तो विदेशी भाषा का हो और न किसी दूसरी भाषा के शब्द से बना हो। ऐसा शब्द जो न संस्कृत का हो, न संस्कृत-शब्द का अपभ्रंश हो। ऐसा शब्द किसी प्रदेश (क्षेत्र) के लोगों द्वारा बोल-चाल में यों ही बना लिया जाता है, जैसे- खटिया, लुटिया।

विदेशी शब्द- इसके अलावा हिन्दी में कई शब्द अरबी, फारसी, तुर्की, अंग्रेजी आदि से भी आये हैं। इन्हें विदेशी शब्द कहते हैं।

जिस हिन्दी में अरबी, फारसी और अंग्रेजी के शब्द लगभग पूरी तरह से हटा कर तत्सम शब्दों को ही प्रयोग में लाया जाता है, उसे 'शुद्ध हिन्दी' या 'मानकीकृत हिन्दी' कहते हैं।

हिन्दी और कम्प्यूटर

कम्प्यूटर और इन्टरनेट ने पिछले वर्षों में विश्व में सूचना क्रांति ला दी है। आज कोई भी भाषा कम्प्यूटर (तथा कम्प्यूटर सदृश अन्य उपकरणों) से दूर रहकर लोगों से जुड़ी नहीं रह सकती। कम्प्यूटर के विकास के आरम्भिक काल में अंग्रेजी को छोड़कर विश्व की अन्य भाषाओं के कम्प्यूटर पर प्रयोग की दिशा में बहुत कम ध्यान दिया गया, जिससे कारण सामान्य लोगों में यह गलत धारणा फैल गयी कि कम्प्यूटर अंग्रेजी के सिवा किसी दूसरी भाषा (लिपि) में काम

ही नहीं कर सकता, किन्तु यूनिकोड के पदार्पण के बाद स्थिति बहुत तेजी से बदल गयी। 19 अगस्त 2009 में गूगल ने कहा की हर 5 वर्षों में हिन्दी की सामग्री में 94% बढ़ोतरी हो रही है।

हिन्दी की इंटरनेट पर अच्छी उपस्थिति है। गूगल जैसे–सर्च इंजन हिन्दी को प्राथमिक भारतीय भाषा के रूप में पहचानते हैं। इसके साथ ही अब अन्य भाषा के चित्र में लिखे शब्दों का भी अनुवाद हिन्दी में किया जा सकता है। फरवरी 2018 में एक सर्वेक्षण के हवाले से खबर आयी कि इंटरनेट की दुनिया में हिंदी ने भारतीय उपभोक्ताओं के बीच अंग्रेजी को पछाड़ दिया है। यूथ4वर्क की इस सर्वेक्षण रिपोर्ट ने इस आशा को सही साबित किया है कि जैसे-जैसे–इंटरनेट का प्रसार छोटे शहरों की ओर बढ़ेगा, हिंदी और भारतीय भाषाओं की दुनिया का विस्तार होता जाएगा।

इस समय हिन्दी में सजाल, चिट्ठे, विपत्र (email), गपशप, खोज, सरल मोबाइल सन्देश (SMS) तथा अन्य हिन्दी सामग्री उपलब्ध हैं। इस समय अन्तरजाल पर हिन्दी में संगणन के संसाधनों की भी भरमार है और नित नये कम्प्यूटिंग उपकरण आते जा रहे हैं। लोगों में इनके बारे में जानकारी देकर जागरूकता पैदा करने की जरूरत है ताकि अधिकाधिक लोग कम्प्यूटर पर हिन्दी का प्रयोग करते हुए अपना, हिन्दी का और पूरे हिन्दी समाज का विकास करें। शब्दनगरी जैसी नयी सेवाओं का प्रयोग करके लोग अच्छे हिन्दी साहित्य का लाभ अब इंटरनेट पर भी उठा सकते हैं।

हिन्दी और जनसंचार

हिन्दी सिनेमा का उल्लेख किये बिना हिन्दी का कोई भी लेख अधूरा होगा। मुम्बई में स्थित 'बॉलीवुड' हिन्दी फिल्म उद्योग पर भारत के करोड़ो लोगों की धड़कनें टिकी रहती हैं। हर चलचित्र में कई गाने होते हैं। हिन्दी और उर्दू (खड़ीबोली) के साथ-साथ अवधी, बम्बइया हिन्दी, भोजपुरी, राजस्थानी जैसी बोलियाँ भी संवाद और गानों में उपयुक्त होती हैं। प्यार, देशभक्ति, परिवार, अपराध, भय, इत्यादि मुख्य विषय होते हैं। अधिकतर गाने उर्दू शायरी पर आधारित होते हैं। कुछ लोकप्रिय चलचित्र हैं– महल (1949), श्री 420 (1955), मदर इंडिया (1957), मुगल-ए-आजम (1960), गाइड (1965), पाकीजा (1972), बॉबी (1973), जंजीर (1973), यादों की बारात (1973), दीवार (1975), शोले (1975), मिस्टर इंडिया (1987), कयामत से कयामत

तक (1988), मैंने प्यार किया (1989), जो जीता वही सिकन्दर (1991), हम आपके हैं कौन (1994), दिलवाले दुल्हनिया ले जायेंगे (1995), दिल तो पागल है (1997), कुछ कुछ होता है (1998), ताल (1999), कहो न प्यार है (2000), लगान (2001), दिल चाहता है (2001), कभी खुशी कभी गम (2001), देवदास (2002), साथिया (2002), मुन्ना भाई एमबीबीएस (2003), कल हो न हो (2003), धूम (2004), वीर-जारा (2004), स्वदेस (2004), सलाम नमस्ते (2005), रंग दे बसंती (2006) इत्यादि।

अब मोबाइल कंपनियां ऐसे हैंडसेट बना रही हैं, जो हिंदी और भारतीय भाषाओं को सपोर्ट करते हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियां हिंदी जानने वाले कर्मचारियों को वरीयता दे रही हैं। हॉलीवुड की फिल्में हिंदी में डब हो रही हैं और हिंदी फिल्में देश के बाहर देश से अधिक कमाई कर रही हैं। हिंदी, विज्ञापन उद्योग की पसंदीदा भाषा बनती जा रही है। गूगल, ट्रांसलेशन, ट्रांस्लिटरेशन, फोनेटिक टूल्स, गूगल असिस्टैन्ट आदि के क्षेत्र में नई नई रिसर्च कर अपनी सेवाओं को बेहतर कर रहा है। हिंदी और भारतीय भाषाओं की पुस्तकों का डिजिटलीकरण जारी है।

फेसबुक और व्हाट्सएप हिंदी और भारतीय भाषाओं के साथ तालमेल बिठा रहे हैं। सोशल मीडिया ने हिंदी में लेखन और पत्रकारिता के नए युग का सूत्रपात किया है और कई जनान्दोलनों को जन्म देने और चुनाव जिताने-हराने में उल्लेखनीय और हैरान करने वाली भूमिका निभाई है। सितम्बर 2018 में प्रकाशित हुई एक अमेरिकी रपट के अनुसार हिन्दी में ट्वीट करना अत्यन्त लोकप्रिय हो रहा है। रपट में कहा गया है कि पिछले वर्ष सबसे अधिक पुनः ट्वीट किए गये 15 सन्देशों में से 11 हिन्दी के थे। हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं का बाजार इतना बड़ा है कि अनेक कम्पनियाँ अपने उत्पाद और वेबसाइटें हिन्दी और स्थानीय भाषाओं में ला रहीं हैं।

हिन्दी का वैश्विक प्रसार

सन् 1998 के पूर्व, मातृभाषियों की संख्या की दृष्टि से विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं के जो आँकड़े मिलते थे, उनमें हिन्दी को तीसरा स्थान दिया जाता था। सन् 1997 में 'सैन्सस ऑफ इंडिया' का भारतीय भाषाओं के विश्लेषण का ग्रन्थ प्रकाशित होने तथा संसार की भाषाओं की रिपोर्ट तैयार करने के लिए यूनेस्को द्वारा सन् 1998 में भेजी गई यूनेस्को प्रश्नावली के आधार पर उन्हें भारत सरकार के केन्द्रीय हिन्दी संस्थान के तत्कालीन निदेशक प्रोफेसर

महावीर सरन जैन द्वारा भेजी गई विस्तृत रिपोर्ट के बाद अब विश्व स्तर पर यह स्वीकृत है कि मातृभाषियों की संख्या की दृष्टि से संसार की भाषाओं में चीनी भाषा के बाद हिन्दी का दूसरा स्थान है। चीनी भाषा के बोलने वालों की संख्या हिन्दी भाषा से अधिक है, किन्तु चीनी भाषा का प्रयोग क्षेत्र हिन्दी की अपेक्षा सीमित है। अंग्रेजी भाषा का प्रयोग क्षेत्र हिन्दी की अपेक्षा अधिक है, किन्तु मातृभाषियों की संख्या अंग्रेजी भाषियों से अधिक है।

विश्वभाषा बनने के सभी गुण हिन्दी में विद्यमान हैं। बीसवीं शती के अंतिम दो दशकों में हिन्दी का अर्न्तराष्ट्रीय विकास बहुत तेजी से हुआ है। हिंदी एशिया के व्यापारिक जगत् में धीरे-धीरे अपना स्वरूप बिंबित कर भविष्य की अग्रणी भाषा के रूप में स्वयं को स्थापित कर रही है। वेब, विज्ञापन, संगीत, सिनेमा और बाजार के क्षेत्र में हिन्दी की मांग जिस तेजी से बढ़ी है वैसी किसी और भाषा में नहीं। विश्व के लगभग 150 विश्वविद्यालयों तथा सैकड़ों छोटे-बड़े केंद्रों में विश्वविद्यालय स्तर से लेकर शोध स्तर तक हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था हुई है। विदेशों में 25 से अधिक पत्र-पत्रिकाएं लगभग नियमित रूप से हिन्दी में प्रकाशित हो रही हैं। यूएई के 'हम एफ-एम' सहित अनेक देश हिन्दी कार्यक्रम प्रसारित कर रहे हैं, जिनमें बीबीसी, जर्मनी के डॉयचे वेले, जापान के एनएचके वर्ल्ड और चीन के चाइना रेडियो इंटरनेशनल की हिन्दी सेवा विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

दिसम्बर 2016 में विश्व आर्थिक मंच ने 10 सर्वाधिक शक्तिशाली भाषाओं की जो सूची जारी की है, उसमें हिन्दी भी एक है। इसी प्रकार 'कोर लैंग्वेजेज' नामक साइट ने 'दस सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाषाओं' में हिन्दी को स्थान दिया था। के-इण्टरनेशनल ने वर्ष 2017 के लिये सीखने योग्य सर्वाधिक उपयुक्त नौ भाषाओं में हिन्दी को स्थान दिया है।

हिन्दी का एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में स्थापित करने और विश्व हिन्दी सम्मेलनों के आयोजन को संस्थागत व्यवस्था प्रदान करने के उद्देश्य से 11 फरवरी 2008 को विश्व हिन्दी सचिवालय की स्थापना की गयी थी। संयुक्त राष्ट्र रेडियो अपना प्रसारण हिन्दी में भी करना आरम्भ किया है। हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा बनाये जाने के लिए भारत सरकार प्रयत्नशील है। अगस्त 2018 से संयुक्त राष्ट्र ने साप्ताहिक हिन्दी समाचार बुलेटिन आरम्भ किया है।

7

हिन्दी का भाषिक स्वरूप

हिंदी व्याकरण, हिंदी भाषा को शुद्ध रूप में लिखने और बोलने संबंधी नियमों का बोध कराने वाला शास्त्र हैं। यह हिंदी भाषा के अध्ययन का महत्त्वपूर्ण हिस्सा हैं। इसमें हिंदी के सभी स्वरूपों का चार खंडों के अंतर्गत अध्ययन किया जाता है, यथा- वर्ण विचार के अंतर्गत ध्वनि और वर्ण तथा शब्द विचार के अंतर्गत शब्द के विविध पक्षों संबंधी नियमों और वाक्य विचार के अंतर्गत वाक्य संबंधी विभिन्न स्थितियों एवं छंद विचार में साहित्यिक रचनाओं के शिल्पगत पक्षों पर विचार किया गया है।

भाषा, व्याकरण और बोली

परिभाषा- भाषा अभिव्यक्ति का एक ऐसा समर्थ साधन है, जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचारों को दूसरों पर प्रकट कर सकता है और दूसरों के विचार जाना जा सकता है।

संसार में अनेक भाषाएँ हैं जैसे-हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी, बँगला, गुजराती, पंजाबी, उर्दू, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़, फ्रैंच, चीनी, जर्मन इत्यादि।भाषा के प्रकार- भाषा दो प्रकार की होती है-

1. मौखिक भाषा।
2. लिखित भाषा।

आमने-सामने बैठे व्यक्ति परस्पर बातचीत करते हैं अथवा कोई व्यक्ति भाषण आदि द्वारा अपने विचार प्रकट करता है तो उसे भाषा का मौखिक रूप कहते हैं।

जब व्यक्ति किसी दूर बैठे व्यक्ति को पत्र द्वारा अथवा पुस्तकों एवं पत्र-पत्रिकाओं में लेख द्वारा अपने विचार प्रकट करता है तब उसे भाषा का लिखित रूप कहते हैं।

व्याकरण

मनुष्य मौखिक एवं लिखित भाषा में अपने विचार प्रकट कर सकता है और करता रहा है, किन्तु इससे भाषा का कोई निश्चित एवं शुद्ध स्वरूप स्थिर नहीं हो सकता। भाषा के शुद्ध और स्थायी रूप को निश्चित करने के लिए नियमबद्ध योजना की आवश्यकता होती है और उस नियमबद्ध योजना को हम व्याकरण कहते हैं। परिभाषा- व्याकरण वह शास्त्र है, जिसके द्वारा किसी भी भाषा के शब्दों और वाक्यों के शुद्ध स्वरूपों एवं शुद्ध प्रयोगों का विशद ज्ञान कराया जाता है।

भाषा और व्याकरण का संबंध- कोई भी मनुष्य शुद्ध भाषा का पूर्ण ज्ञान व्याकरण के बिना प्राप्त नहीं कर सकता, अत: भाषा और व्याकरण का घनिष्ठ संबंध है वह भाषा में उच्चारण, शब्द-प्रयोग, वाक्य-गठन तथा अर्थों के प्रयोग के रूप को निश्चित करता है।व्याकरण के विभाग- व्याकरण के चार अंग निर्धारित किये गये हैं-

1. वर्ण-विचार।
2. शब्द-विचार।
3. पद-विचार।
4. वाक्य विचार।

बोली

भाषा का क्षेत्रीय रूप बोली कहलाता है। अर्थात् देश के विभिन्न भागों में बोली जाने वाली भाषा बोली कहलाती है और किसी भी क्षेत्रीय बोली का लिखित रूप में स्थिर साहित्य वहाँ की भाषा कहलाता है।

लिपि

किसी भी भाषा के लिखने की विधि को 'लिपि' कहते हैं। हिन्दी और संस्कृत भाषा की लिपि का नाम देवनागरी है। अंग्रेजी भाषा की लिपि 'रोमन', उर्दू भाषा की लिपि फारसी और पंजाबी भाषा की लिपि गुरुमुखी है।

साहित्य

ज्ञान-राशि का संचित कोश ही साहित्य है। साहित्य ही किसी भी देश, जाति और वर्ग को जीवंत रखने का- उसके अतीत रूपों को दर्शाने का एकमात्रा साक्ष्य होता है। यह मानव की अनुभूति के विभिन्न पक्षों को स्पष्ट करता है और पाठकों एवं श्रोताओं के हृदय में एक अलौकिक अनिर्वचनीय आनंद की अनुभूति उत्पन्न करता है।

वर्ण-विचार

परिभाषा-हिन्दी भाषा में प्रयुक्त सबसे छोटी ध्वनि वर्ण कहलाती है, जैसे-अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, क, ख् आदि।

वर्णमाला—वर्णों के समुदाय को ही वर्णमाला कहते हैं। हिन्दी वर्णमाला में 44 वर्ण हैं। उच्चारण और प्रयोग के आधार पर हिन्दी वर्णमाला के दो भेद किए गए हैं-

1. **स्वर**
2. **व्यंजन**

1.स्वर—जिन वर्णों का उच्चारण स्वतंत्र रूप से होता हो और जो व्यंजनों के उच्चारण में सहायक हों वे स्वर कहलाते हैं। ये संख्या में ग्यारह हैं-

अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ। उच्चारण के समय की दृष्टि से स्वर के तीन भेद किए गए हैं-

1. ह्रस्व स्वर।
2. दीर्घ स्वर।
3. प्लुत स्वर।

1. ह्रस्व स्वर—जिन स्वरों के उच्चारण में कम-से-कम समय लगता हैं, उन्हें ह्रस्व स्वर कहते हैं। ये चार हैं- अ, इ, उ, ऋ। इन्हें मूल स्वर भी कहते हैं।

2.दीर्घ स्वर–जिन स्वरों के उच्चारण में ह्रस्व स्वरों से दुगुना समय लगता है, उन्हें दीर्घ स्वर कहते हैं। ये हिन्दी में सात हैं- आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ।

विशेष- दीर्घ स्वरों को ह्रस्व स्वरों का दीर्घ रूप नहीं समझना चाहिए। यहाँ दीर्घ शब्द का प्रयोग उच्चारण में लगने वाले समय को आधार मानकर किया गया है।

3. प्लुत स्वर–जिन स्वरों के उच्चारण में दीर्घ स्वरों से भी अधिक समय लगता है, उन्हें प्लुत स्वर कहते हैं। प्रायः इनका प्रयोग दूर से बुलाने में किया जाता है।

मात्राएँ

स्वरों के बदले हुए स्वरूप को मात्रा कहते हैं स्वरों की मात्राएँ निम्नलिखित हैं-

स्वर मात्राएँ शब्द अ ञ कम

आ ा काम

इ ि किसलिये

ई ी खीर

उ ु गुलाब

ऊ ू भूल

ऋ ृ तृण

ए े केश

ऐ ै है

ओ ो चोर

औ ौ चौखट

अ वर्ण (स्वर) की कोई मात्रा नहीं होती। व्यंजनों का अपना स्वरूप निम्नलिखित हैं-

क् च् छ् ज् झ् त् थ् ध् आदि।

अ लगने पर व्यंजनों के नीचे का (हल) चिह्न हट जाता है। तब ये इस प्रकार लिखे जाते हैं-

क च छ ज झ त थ ध आदि।

व्यंजन

जिन वर्णों के पूर्ण उच्चारण के लिए स्वरों की सहायता ली जाती है वे व्यंजन कहलाते हैं। अर्थात व्यंजन बिना स्वरों की सहायता के बोले ही नहीं जा सकते। ये संख्या में 33 हैं। इसके निम्नलिखित तीन भेद हैं-

1. **स्पर्श**
2. अंतःस्थ
3. ऊष्म

1. स्पर्श–इन्हें पाँच वर्गों में रखा गया है और हर वर्ग में पाँच-पाँच व्यंजन हैं। हर वर्ग का नाम पहले वर्ग के अनुसार रखा गया है, जैसे-

कवर्ग- क् ख् ग् घ् ङ्
चवर्ग- च् छ् ज् झ् ञ्
टवर्ग- ट् ठ् ड् ढ् ण् (ड़् ढ़्)
तवर्ग- त् थ् द् ध् न्
पवर्ग- प् फ् ब् भ् म्

2. **अंतःस्थ-**

ये निम्नलिखित चार हैं-

य् र् ल् व्

3. **ऊष्म**

ये निम्नलिखित चार हैं-

श् ष् स् "वैसे तो जहाँ भी दो अथवा दो से अधिक व्यंजन मिल जाते हैं, वे संयुक्त व्यंजन कहलाते हैं, किन्तु देवनागरी लिपि में संयोग के बाद रूप-परिवर्तन हो जाने के कारण इन तीन को गिनाया गया है। ये दो-दो व्यंजनों से मिलकर बने हैं जैसे-क्ष=क्ष अक्षर, ज्ञ=ज्ञ ज्ञान, त्र=त्र नक्षत्र कुछ लोग क्ष् त् र् और ज्ञ् को भी हिन्दी वर्णमाला में गिनते हैं, पर ये संयुक्त व्यंजन हैं, अतः इन्हें वर्णमाला में गिनना उचित प्रतीत नहीं होता।

अनुस्वार-इसका प्रयोग पंचम वर्ण के स्थान पर होता है। इसका चिन्ह (ं) है, जैसे- सम्भव=संभव, सञ्जय=संजय, गङ्गा=गंगा।

विसर्ग-इसका उच्चारण ह् के समान होता है। इसका चिह्न (:) है, जैसे-अतः, प्रातः।

चंद्रबिंदु–जब किसी स्वर का उच्चारण नासिका और मुख दोनों से किया जाता है तब उसके ऊपर चंद्रबिंदु (ँ) लगा दिया जाता है।

यह अनुनासिक कहलाता है, जैसे-हँसना, आँख। हिन्दी वर्णमाला में 11 स्वर तथा 33 व्यंजन गिनाए जाते हैं, परन्तु इनमें ड़्, ढ़् अं तथा अः जोड़ने पर हिन्दी के वर्णों की कुल संख्या 48 हो जाती है।

हलंत–जब कभी व्यंजन का प्रयोग स्वर से रहित किया जाता है तब उसके नीचे एक तिरछी रेखा (्) लगा दी जाती है। यह रेखा हल कहलाती है। हलयुक्त व्यंजन हलंत वर्ण कहलाता है, जैसे-विद्यां।

वर्णों के उच्चारण-स्थान

मुख के जिस भाग से जिस वर्ण का उच्चारण होता है, उसे उस वर्ण का उच्चारण स्थान कहते हैं।

उच्चारण स्थान तालिका

क्रम	वर्ण	उच्चारण	श्रेणी
1.	अ आ क् ख् ग् घ् ङ् ह् विसर्ग कंठ और जीभ का कंठस्थ	निचला भाग	
2.	इ ई च् छ् ज् झ् ञ् य् श तालु और जीभ	तालव्य	
3.	ऋ ट् ठ् ड् ढ् ण् ड़् ढ़् ष् मूर्धा और जीभ	मूर्धन्य	
4.	त् थ् द् ध् न् ल् स्	दाँत और जीभ	दंत्य
5.	उ ऊ प् फ् ब् भ् म	दोनों होंठ	ओष्ठ्य
6.	ए ऐ	कंठ तालु और जीभ	कंठतालव्य
7.	ओ औ	दाँत जीभ और होंठ	कंठोष्ठ्य
8.	व्	दाँत जीभ और होंठ	दंतो

शब्द-विचार

परिभाषा- एक या अधिक वर्णों से बनी हुई स्वतंत्र सार्थक ध्वनि शब्द कहलाता है, जैसे- एक वर्ण से निर्मित शब्द-न (नहीं) व (और) अनेक वर्णों से निर्मित शब्द-कुत्ता, शेर, कमल, नयन, प्रासाद, सर्वव्यापी, परमात्मा।

शब्द-भेद

व्युत्पत्ति (बनावट) के आधार पर शब्द-भेद-

व्युत्पत्ति (बनावट) के आधार पर शब्द के निम्नलिखित तीन भेद हैं-

1. रूढ़
2. यौगिक
3. योगरूढ़

1. रूढ़–जो शब्द किन्हीं अन्य शब्दों के योग से न बने हों और किसी विशेष अर्थ को प्रकट करते हों तथा जिनके टुकड़ों का कोई अर्थ नहीं होता, वे रूढ़ कहलाते हैं जैसे-कल, पर। इनमें क, ल, प, र का टुकड़े करने पर कुछ अर्थ नहीं हैं, अतः ये निरर्थक हैं।

2. यौगिक–जो शब्द कई सार्थक शब्दों के मेल से बने हों, वे यौगिक कहलाते हैं जैसे-देवालय=देव़आलय, राजपुरुष=राज़पुरुष, हिमालय=हिम़आलय, देवदूत=देव़दूत आदि। ये सभी शब्द दो सार्थक शब्दों के मेल से बने हैं।

3. योगरूढ़–वे शब्द, जो यौगिक तो हैं, किन्तु सामान्य अर्थ को न प्रकट कर किसी विशेष अर्थ को प्रकट करते हैं, योगरूढ़ कहलाते हैं जैसे-पंकज, दशानन आदि। पंकज=पंक़ज (कीचड़ में उत्पन्न होने वाला) सामान्य अर्थ में प्रचलित न होकर कमल के अर्थ में रूढ़ हो गया है, अतः पंकज शब्द योगरूढ़ है। इसी प्रकार दश (दस) आनन (मुख) वाला रावण के अर्थ में प्रसिद्ध है।

उत्पत्ति के आधार पर शब्द-भेद–उत्पत्ति के आधार पर शब्द के निम्नलिखित चार भेद हैं-

1. तत्सम–जो शब्द संस्कृत भाषा से हिन्दी में बिना किसी परिवर्तन के ले लिए गए हैं वे तत्सम कहलाते हैं जैसे-अग्नि, क्षेत्र, वायु, रात्रि, सूर्य आदि।

2. तद्भव–जो शब्द रूप बदलने के बाद संस्कृत से हिन्दी में आए हैं वे तद्भव कहलाते हैं जैसे-आग (अग्नि), खेत (क्षेत्र), रात (रात्रि), सूरज (सूर्य) आदि।

3. देशज–जो शब्द क्षेत्रीय प्रभाव के कारण परिस्थिति व आवश्यकतानुसार बनकर प्रचलित हो गए हैं वे देशज कहलाते हैं जैसे-पगड़ी, गाड़ी, थैला, पेट, खटखटाना आदि।

4. विदेशी या विदेशज- विदेशी जातियों के संपर्क से उनकी भाषा के बहुत से शब्द हिन्दी में प्रयुक्त होने लगे हैं। ऐसे शब्द विदेशी अथवा विदेशज कहलाते हैं जैसे-स्कूल, अनार, आम, कैंची, अचार, पुलिस, टेलीफोन, रिक्शा आदि। ऐसे कुछ विदेशी शब्दों की सूची नीचे दी जा रही है।

अंग्रेजी– कॉलेज, पैंसिल, रेडियो, टेलीविजन, डॉक्टर, लैटरबक्स, पैन, टिकट, मशीन, सिगरेट, साइकिल, बोतल आदि।

फारसी– अनार, चश्मा, जमींदार, दुकान, दरबार, नमक, नमूना, बीमार, बरफ, रूमाल, आदमी, चुगलखोर, गंदगी, चापलूसी आदि।

अरबी– औलाद, अमीर, कत्ल, कलम, कानून, खत, फकीर, रिश्वत औरत, कैदी, मालिक, गरीब आदि।

तुर्की– कैंची, चाकू, तोप, बारूद, लाश, दारोगा, बहादुर आदि।

पुर्तगाली– अचार, आलपीन, कारतूस, गमला, चाबी, तिजोरी, तौलिया, फीता, साबुन, तंबाकू, कॉफी, कमीज आदि।

फ्रांसीसी– पुलिस, कार्टून, इंजीनियर, कर्फ्यू, बिगुल आदि।

चीनी– तूफान, लीची, चाय, पटाखा आदि।

यूनानी– टेलीफोन, टेलीग्राफ, ऐटम, डेल्टा आदि।

जापानी– रिक्शा आदि।

प्रयोग के आधार पर शब्द-भेद

प्रयोग के आधार पर शब्द के निम्नलिखित आठ भेद हैं–

1. संज्ञा
2. सर्वनाम
3. विशेषण
4. क्रिया
5. क्रिया-विशेषण
6. संबंधबोधक
7. समुच्चयबोधक

विस्मयादिबोधक इन उपर्युक्त आठ प्रकार के शब्दों को भी विकार की दृष्टि से दो भागों में बाँटा जा सकता है-

1. विकारी
2. अविकारी

1. विकारी शब्द–जिन शब्दों का रूप-परिवर्तन होता रहता है वे विकारी शब्द कहलाते हैं जैसे-कुत्ता, कुत्ते, कुत्तों, मैं मुझे, हमें अच्छा, अच्छे खाता है, खाती है, खाते हैं। इनमें संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया विकारी शब्द हैं।

2. अविकारी शब्द–जिन शब्दों के रूप में कभी कोई परिवर्तन नहीं होता है वे अविकारी शब्द कहलाते हैं जैसे-यहाँ, किन्तु, नित्य और, हे अरे

आदि। इनमें क्रिया-विशेषण, संबंधबोधक, समुच्चयबोधक और विस्मयादिबोधक आदि हैं।

अर्थ की दृष्टि से शब्द-भेद

अर्थ की दृष्टि से शब्द के दो भेद हैं-

1. सार्थक
2. निरर्थक

1. सार्थक शब्द–जिन शब्दों का कुछ-न-कुछ अर्थ हो वे शब्द सार्थक शब्द कहलाते हैं जैसे-रोटी, पानी, ममता, डंडा आदि।

2. निरर्थक शब्द–जिन शब्दों क/ा कोई अर्थ नहीं होता है वे शब्द निरर्थक कहलाते हैं जैसे-रोटी-वोटी, पानी-वानी, डंडा-वंडा इनमें वोटी, वानी, वंडा आदि निरर्थक शब्द हैं।

विशेष- निरर्थक शब्दों पर व्याकरण में कोई विचार नहीं किया जाता है।

पद-विचार

सार्थक वर्ण-समूह शब्द कहलाता है, पर जब इसका प्रयोग वाक्य में होता है तो वह स्वतंत्र नहीं रहता, बल्कि व्याकरण के नियमों में बँध जाता है और प्राय: इसका रूप भी बदल जाता है, जब कोई शब्द वाक्य में प्रयुक्त होता है तो उसे शब्द न कहकर पद कहा जाता है।

हिन्दी में पद पाँच प्रकार के होते हैं–

1. संज्ञा
2. सर्वनाम
3. विशेषण
4. क्रिया
5. अव्यय

1.संज्ञा–किसी व्यक्ति, स्थान, वस्तु आदि तथा नाम के गुण, धर्म, स्वभाव का बोध कराने वाले शब्द संज्ञा कहलाते हैं जैसे-श्याम, आम, मिठास, हाथी आदि।

संज्ञा के प्रकार- संज्ञा के तीन भेद हैं–

1. व्यक्तिवाचक संज्ञा।
2. जातिवाचक संज्ञा।
3. भाववाचक संज्ञा।

1. व्यक्तिवाचक संज्ञा–जिस संज्ञा शब्द से किसी विशेष, व्यक्ति, प्राणी, वस्तु अथवा स्थान का बोध हो उसे व्यक्तिवाचक संज्ञा कहते हैं जैसे-जयप्रकाश नारायण, श्रीकृष्ण, रामायण, ताजमहल, कुतुबमीनार, लालकिला हिमालय आदि।

2. जातिवाचक संज्ञा–जिस संज्ञा शब्द से उसकी संपूर्ण जाति का बोध हो उसे जातिवाचक संज्ञा कहते हैं जैसे-मनुष्य, नदी, नगर, पर्वत, पशु, पक्षी, लड़का, कुत्ता, गाय, घोड़ा, भैंस, बकरी, नारी, गाँव आदि।

3. भाववाचक संज्ञा–जिस संज्ञा शब्द से पदार्थों की अवस्था, गुण-दोष, धर्म आदि का बोध हो उसे भाववाचक संज्ञा कहते हैं जैसे-बुढ़ापा, मिठास, बचपन, मोटापा, चढ़ाई, थकावट आदि।

विशेष वक्तव्य- कुछ विद्वान अंग्रेजी व्याकरण के प्रभाव के कारण संज्ञा शब्द के दो भेद और बतलाते हैं–

1. समुदायवाचक संज्ञा।
2. द्रव्यवाचक संज्ञा।

1. समुदायवाचक संज्ञा–जिन संज्ञा शब्दों से व्यक्तियों, वस्तुओं आदि के समूह का बोध हो उन्हें समुदायवाचक संज्ञा कहते हैं जैसे-सभा, कक्षा, सेना, भीड़, पुस्तकालय दल आदि।

2. द्रव्यवाचक संज्ञा–जिन संज्ञा-शब्दों से किसी धातु, द्रव्य आदि पदार्थों का बोध हो उन्हें द्रव्यवाचक संज्ञा कहते हैं जैसे-घी, तेल, सोना, चाँदी, पीतल, चावल, गेहूँ, कोयला, लोहा आदि।इस प्रकार संज्ञा के पाँच भेद हो गए, किन्तु अनेक विद्वान समुदायवाचक और द्रव्यवाचक संज्ञाओं को जातिवाचक संज्ञा के अंतर्गत ही मानते हैं और यही उचित भी प्रतीत होता है।

भाववाचक संज्ञा बनाना- भाववाचक संज्ञाएँ चार प्रकार के शब्दों से बनती हैं जैसे-

1. **जातिवाचक संज्ञाओं से**-

दास दासता
पंडित पांडित्य
पुरुष पुरुषत्व
प्रभु प्रभुता
मित्र मित्रता
बालक बालकपन
बच्चा बचपन

2. **सर्वनाम से-**
   अपना अपनापन, अपनत्व निज निजत्व, निजता
   पराया परायापन
   मम ममत्व, ममता
3. **विशेषण से-**
   मीठा मिठास
   मधुर माधुर्य
   निर्बल निर्बलता सफेद सफेदी
   हरा हरियाली
   सफल सफलता
4. **क्रिया से-**
   खेलना खेल
   थकना थकावट
   मुसकाना मुसकान
   कमाना कमाई
   उतरना उतराई
   उड़ना उड़ानरहना-सहना रहन-सहन
   देखना-भालना देख-भाल

संज्ञा के विकारक तत्त्व

जिन तत्त्वों के आधार पर संज्ञा (संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण) का रूपांतर होता है वे विकारक तत्त्व कहलाते हैं।

वाक्य में शब्दों की स्थिति के आधार पर ही उनमें विकार आते हैं। यह विकार लिंग, वचन और कारक के कारण ही होता है, जैसे-लड़का शब्द के चारों रूप- 1.लड़का, 2.लड़के, 3.लड़कों, 4.लड़को-केवल वचन और कारकों के कारण बनते हैं।

लिंग- जिस चिह्न से यह बोध होता हो कि अमुक शब्द पुरुष जाति का है अथवा स्त्री जाति का वह लिंग कहलाता है।

परिभाषा- शब्द के जिस रूप से किसी व्यक्ति, वस्तु आदि के पुरुष जाति अथवा स्त्री जाति के होने का ज्ञान हो उसे लिंग कहते हैं जैसे-लड़का, लड़की, नर, नारी आदि। इनमें 'लड़का' और 'नर' पुल्लिंग तथा लड़की और 'नारी' स्त्रीलिंग हैं। हिन्दी में लिंग के दो भेद हैं-

1. पुल्लिंग।
2. स्त्रीलिंग।

1. पुल्लिंग–जिन संज्ञा शब्दों से पुरुष जाति का बोध हो अथवा जो शब्द पुरुष जाति के अंतर्गत माने जाते हैं वे पुल्लिंग हैं जैसे-कुत्ता, लड़का, पेड़, सिंह, बैल, घर आदि।

2. स्त्रीलिंग–जिन संज्ञा शब्दों से स्त्री जाति का बोध हो अथवा जो शब्द स्त्री जाति के अंतर्गत माने जाते हैं, वे स्त्रीलिंग हैं जैसे-गाय, घड़ी, लड़की, कुरसी, छड़ी, नारी आदि।

पुल्लिंग की पहचान-

1. आ, आव, पा, पन न ये प्रत्यय जिन शब्दों के अंत में हों वे प्रायः पुल्लिंग होते हैं जैसे- मोटा, चढ़ाव, बुढ़ापा, लड़कपन लेन-देन।
2. पर्वत, मास, वार और कुछ ग्रहों के नाम पुल्लिंग होते हैं, जैसे-विंध्याचल, हिमालय, वैशाख, सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध, राहु, केतु (ग्रह)।
3. पेड़ों के नाम पुल्लिंग होते हैं जैसे-पीपल, नीम, आम, शीशम, सागौन, जामुन, बरगद आदि।
4. अनाजों के नाम पुल्लिंग होते हैं जैसे-बाजरा, गेहूँ, चावल, चना, मटर, जौ, उड़द आदि।
5. द्रव पदार्थों के नाम पुल्लिंग होते हैं जैसे-पानी, सोना, ताँबा, लोहा, घी, तेल आदि।
6. रत्नों के नाम पुल्लिंग होते हैं जैसे-हीरा, पन्ना, मूँगा, मोती माणिक आदि।
7. देह के अवयवों के नाम पुल्लिंग होते हैं जैसे-सिर, मस्तक, दाँत, मुख, कान, गला, हाथ, पाँव, होंठ, तालु, नख, रोम आदि।
8. जल, स्थान और भूमंडल के भागों के नाम पुल्लिंग होते हैं जैसे-समुद्र, भारत, देश, नगर, द्वीप, आकाश, पाताल, घर, सरोवर आदि।
9. वर्णमाला के अनेक अक्षरों के नाम पुल्लिंग होते हैं जैसे-अ, उ, ए, ओ, क, ख, ग, घ, च, छ, य, र, ल, व, श आदि।

स्त्रीलिंग की पहचान

1. जिन संज्ञा शब्दों के अंत में ख होते हैं, वे स्त्रीलिंग कहलाते हैं जैसे-ईख, भूख, चोख, राख, कोख, लाख, देख-रेख आदि।

2. जिन भाववाचक संज्ञाओं के अंत में ट, वट, या हट होता है, वे स्त्रीलिंग कहलाती है, जैसे-झंझट, आहट, चिकनाहट, बनावट, सजावट आदि।
3. अनुस्वारांत, ईकारांत, ऊकारांत, तकारांत, सकारांत संज्ञाएँ स्त्रीलिंग कहलाती है, जैसे-रोटी, टोपी, नदी, चिट्ठी, उदासी, रात, बात, छत, भीत, लू, बालू, दारू, सरसों, खड़ाऊँ, प्यास, वास, साँस आदि।
4. भाषा, बोली और लिपियों के नाम स्त्रीलिंग होते हैं जैसे-हिन्दी, संस्कृत, देवनागरी, पहाड़ी, तेलुगु पंजाबी गुरुमुखी।
5. जिन शब्दों के अंत में इया आता है वे स्त्रीलिंग होते हैं जैसे-कुटिया, खटिया, चिड़िया आदि।
6. नदियों के नाम स्त्रीलिंग होते हैं जैसे-गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती आदि।
7. तारीखों और तिथियों के नाम स्त्रीलिंग होते हैं जैसे-पहली, दूसरी, प्रतिपदा, पूर्णिमा आदि।
8. पृथ्वी ग्रह स्त्रीलिंग होते हैं।
9. नक्षत्रों के नाम स्त्रीलिंग होते हैं जैसे-अश्विनी, भरणी, रोहिणी आदि।

शब्दों का लिंग-परिवर्तन

प्रत्यय	पुल्लिंग	स्त्रीलिंग
ई	घोड़ा	घोड़ी
	देव	देवी
	दादा	दादी
	लड़का	लड़की
	ब्राह्मण	ब्राह्मणी
	नर	नारी
	बकरा	बकरी
इय	चूहा	चुहिया
	चिड़ा	चिड़िया
	बेटा	बिटिया
	गुड्डा	गुड़िया
	लोटा	लुटिया
इन	माली	मालिन

	कहार	कहारिन
	सुनार	सुनारिन
	लुहार	लुहारिन
	धोबी	धोबिन
नी	मोर	मोरनी
	हाथी	हाथिन
	सिंह	सिंहनी
आनी	नौकर	नौकरानी
	चौधरी	चौधरानी
	देवर	देवरानी
	सेठ	सेठानी
	जेठ	जेठानी
आइन	पंडित	पंडिताइन
	ठाकुर	ठाकुराइन
आ	बाल	बाला
	सुत	सुता
	छात्र	छात्र
	शिष्य	शिष्या
अक को इका करके	पाठक	पाठिका
	अध्यापक	अध्यापिका
	बालक	बालिका
	लेखक	लेखिका
	सेवक	सेविका
इनी (इणी)	तपस्वी	तपस्विनी
	हितकारी	हितकारिनी
	स्वामी	स्वामिनी
	परोपकारी	परोपकारिनी

कुछ विशेष शब्द जो स्त्रीलिंग में बिलकुल ही बदल जाते हैं।

पुल्लिंग	स्त्रीलिंग
पिता	माता
भाई	भाभी

नर	मादा
राजा	रानी
ससुर	सास
सम्राट	सम्राज्ञी
पुरुष	स्त्री
बैल	गाय
युवक	युवती

विशेष वक्तव्य- जो प्राणिवाचक सदा शब्द ही स्त्रीलिंग है अथवा जो सदा ही पुल्लिंग हैं, उनके पुल्लिंग अथवा स्त्रीलिंग जताने के लिए उनके साथ 'नर' व 'मादा' शब्द लगा देते हैं जैसे-

नित्य स्त्रीलिंग	पुल्लिंग
मक्खी	नर मक्खी
कोयल	नर कोयल
गिलहरी	नर गिलहरी
मैना	नर मैना
तितली	नर तितली
बाज	मादा बाज
खटमल	मादा खटमल
चील	नर चील
कछुआ	नर कछुआ
कौआ	नर कौआ
भेड़िया	मादा भेड़िया
उल्लू	मादा उल्लू
मच्छर	मादा मच्छर

वचन

परिभाषा-शब्द के जिस रूप से उसके एक अथवा अनेक होने का बोध हो उसे वचन कहते हैं।

हिन्दी में वचन दो होते हैं-

1. एकवचन
2. बहुवचन

एकवचन–शब्द के जिस रूप से एक ही वस्तु का बोध हो, उसे एकवचन कहते हैं जैसे-लड़का, गाय, सिपाही, बच्चा, कपड़ा, माता, माला, पुस्तक, स्त्री, टोपी बंदर, मोर आदि।

बहुवचन–शब्द के जिस रूप से अनेकता का बोध हो उसे बहुवचन कहते हैं जैसे-लड़के, गायें, कपड़े, टोपियाँ, मालाएँ, माताएँ, पुस्तकें, वधुएँ, गुरुजन, रोटियाँ, स्त्रियाँ, लताएँ, बेटे आदि।

एकवचन के स्थान पर बहुवचन का प्रयोग

(क) आदर के लिए भी बहुवचन का प्रयोग होता है, जैसे-

(1) भीष्म पितामह तो ब्रह्मचारी थे।

(2) गुरुजी आज नहीं आये।

(3) शिवाजी सच्चे वीर थे।

(ख) बड़प्पन दर्शाने के लिए कुछ लोग वह के स्थान पर वे और मैं के स्थान हम का प्रयोग करते हैं, जैसे-

(1) मालिक ने कर्मचारी से कहा, हम मीटिंग में जा रहे हैं।

(2) आज गुरुजी आए तो वे प्रसन्न दिखाई दे रहे थे।

(ग) केश, रोम, अश्रु, प्राण, दर्शन, लोग, दर्शक, समाचार, दाम, होश, भाग्य आदि ऐसे शब्द हैं, जिनका प्रयोग बहुधा बहुवचन में ही होता है, जैसे-

(1) तुम्हारे केश बड़े सुन्दर हैं।

(2) लोग कहते हैं।

बहुवचन के स्थान पर एकवचन का प्रयोग

(क) तू एकवचन है, जिसका बहुवचन है तुम किन्तु सभ्य लोग आजकल लोक-व्यवहार में एकवचन के लिए तुम का ही प्रयोग करते हैं, जैसे-

(1) मित्र, तुम कब आए।

(2) क्या तुमने खाना खा लिया।

(ख) वर्ग, वृंद, दल, गण, जाति आदि शब्द अनेकता को प्रकट करने वाले हैं, किन्तु इनका व्यवहार एकवचन के समान होता है, जैसे-

(1) सैनिक दल शत्रु का दमन कर रहा है।

(2) स्त्री जाति संघर्ष कर रही है।

(ग) जातिवाचक शब्दों का प्रयोग एकवचन में किया जा सकता है, जैसे-

(1) सोना बहुमूल्य वस्तु है।

(2) मुंबई का आम स्वादिष्ट होता है।

बहुवचन बनाने के नियम

(1) अकारांत स्त्रीलिंग शब्दों के अंतिम अ को एँ कर देने से शब्द बहुवचन में बदल जाते हैं जैसे-

एकवचन	बहुवचन
आँख	आँखें
बहन	बहनें
पुस्तक	पुस्तकें
सड़क	सड़के
गाय	गायें
बात	बातें

(2) आकारांत पुल्लिंग शब्दों के अंतिम 'आ' को 'ए' कर देने से शब्द बहुवचन में बदल जाते हैं जैसे-

एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
घोड़ा	घोड़े	कौआ	कौए
कुत्ता	कुत्ते	गधा	गधे
केला	केले	बेटा	बेटे

(3) आकारांत स्त्रीलिंग शब्दों के अंतिम 'आ' के आगे 'एँ' लगा देने से शब्द बहुवचन में बदल जाते हैं जैसे-

एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
कन्या	कन्याएँ	अध्यापिका	अध्यापिकाएँ
कला	कलाएँ	माता	माताएँ
कविता	कविताएँ	लता	लताएँ

(4) इकारांत अथवा ईकारांत स्त्रीलिंग शब्दों के अंत में 'याँ' लगा देने से और दीर्घ ई को ह्रस्व इ कर देने से शब्द बहुवचन में बदल जाते हैं जैसे-

एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
बुद्धि	बुद्धियाँ	गति	गतियाँ
कली	कलियाँ	नीति	नीतियाँ

कॉपी	कॉपियाँ	लड़की	लड़कियाँ
थाली	थालियाँ	नारी	नारियाँ

(5) जिन स्त्रीलिंग शब्दों के अंत में या है, उनके अंतिम आ को आँ कर देने से वे बहुवचन बन जाते हैं जैसे-

एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
गुड़िया	गुड़ियाँ	बिटिया	बिटियाँ
चुहिया	चुहियाँ	कुतिया	कुतियाँ
चिड़िया	चिड़ियाँ	खटिया	खटियाँ
बुढ़िया	बुढ़ियाँ	गैया	गैयाँ

(6) कुछ शब्दों में अंतिम उ, ऊ और औ के साथ एँ लगा देते हैं और दीर्घ ऊ के स्थान पर ह्रस्व उ हो जाता है, जैसे-

एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
गौ	गौएँ	बहू	बहूएँ
वधू	वधूएँ	वस्तु	वस्तुएँ
धेनु	धेनुएँ	धातु	धातुएँ

(7) दल, वृंद, वर्ग, जन लोग, गण आदि शब्द जोड़कर भी शब्दों का बहुवचन बना देते हैं जैसे-

एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
अध्यापक	अध्यापकवृंद	मित्र	मित्रवर्ग
विद्यार्थी	विद्यार्थीगण	सेना	सेनादल
आप	आप लोग	गुरु	गुरुजन
श्रोता	श्रोताजन	गरीब	गरीब लोग

(8) कुछ शब्दों के रूप 'एकवचन' और 'बहुवचन' दोनो में समान होते हैं जैसे-

एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
क्षमा	क्षमा	नेता	नेता
जल	जल	प्रेम	प्रेम
गिरि	गिरि	क्रोध	क्रोध
राजा	राजा	पानी	पानी

विशेष- (1) जब संज्ञाओं के साथ ने, को, से आदि परसर्ग लगे होते हैं तो संज्ञाओं का बहुवचन बनाने के लिए उनमें 'ओ' लगाया जाता है, जैसे-

एकवचन	बहुवचन
लड़के को बुलाओ	लड़कों को बुलाओ
बच्चे ने गाना गाया	बच्चों ने गाना गाया
नदी का जल ठंडा है	नदियों का जल ठंडा है
आदमी से पूछ लो	आदमियों से पूछ लो

(2) संबोधन में 'ओ' जोड़कर बहुवचन बनाया जाता है, जैसे-

बच्चों ! ध्यान से सुनो। भाइयों ! मेहनत करो। बहनों ! अपना कर्त्तव्य निभाओ।

कारक

परिभाषा-संज्ञा या सर्वनाम के जिस रूप से उसका सीधा संबंध क्रिया के साथ ज्ञात हो वह कारक कहलाता है, जैसे-गीता ने दूध पीया। इस वाक्य में 'गीता' पीना क्रिया का कर्ता है और दूध उसका कर्म, अतः 'गीता' कर्ता कारक है और 'दूध' कर्म कारक।

कारक विभक्ति- संज्ञा अथवा सर्वनाम शब्दों के बाद 'ने, को, से, के लिए', आदि जो चिह्न लगते हैं, वे चिह्न कारक विभक्ति कहलाते हैं।हिन्दी में आठ कारक होते हैं। उन्हें विभक्ति चिह्नों सहित नीचे देखा जा सकता है-

कारक विभक्ति चिह्न (परसर्ग)

1. कर्ता ने
2. कर्म को
3. करण से, के साथ, के द्वारा
4. संप्रदान के लिए, को
5. अपादान से (पृथक)
6. संबंध का, के, की
7. अधिकरण में, पर
8. संबोधन हे ! हरे !

कारक चिह्न स्मरण करने के लिए इस पद की रचना की गई है-

कर्ता ने अरु कर्म को, करण रीति से जान।
संप्रदान को, के लिए, अपादान से मान।।
का, के, की, संबंध हैं, अधिकरणादिक में मान।
रे ! हे ! हो ! संबोधन, मित्र धरहु यह ध्यान।।

विशेष–कर्ता से अधिकरण तक विभक्ति चिह्न (परसर्ग) शब्दों के अंत में लगाए जाते हैं, किन्तु संबोधन कारक के चिह्न-हे, रे, आदि प्रायः शब्द से पूर्व लगाए जाते हैं।

1. कर्ता कारक–जिस रूप से क्रिया (कार्य) के करने वाले का बोध होता है वह 'कर्ता' कारक कहलाता है। इसका विभक्ति-चिह्न 'ने' है। इस 'ने' चिह्न का वर्तमानकाल और भविष्यकाल में प्रयोग नहीं होता है। इसका सकर्मक धातुओं के साथ भूतकाल में प्रयोग होता है, जैसे- 1.राम ने रावण को मारा। 2. लड़की स्कूल जाती है।पहले वाक्य में क्रिया का कर्ता राम है। इसमें 'ने' कर्ता कारक का विभक्ति-चिह्न है। इस वाक्य में 'मारा' भूतकाल की क्रिया है। 'ने' का प्रयोग प्रायः भूतकाल में होता है। दूसरे वाक्य में वर्तमानकाल की क्रिया का कर्ता लड़की है। इसमें 'ने' विभक्ति का प्रयोग नहीं हुआ है। विशेष-

(1) भूतकाल में अकर्मक क्रिया के कर्ता के साथ भी ने परसर्ग (विभक्ति चिह्न) नहीं लगता है, जैसे-वह हँसा।

(2) वर्तमानकाल व भविष्यतकाल की सकर्मक क्रिया के कर्ता के साथ ने परसर्ग का प्रयोग नहीं होता है, जैसे-वह फल खाता है। वह फल खाएगा।

(3) कभी-कभी कर्ता के साथ 'को' तथा 'स' का प्रयोग भी किया जाता है, जैसे-

(अ) बालक को सो जाना चाहिए। (आ) सीता से पुस्तक पढ़ी गई।

(इ) रोगी से चला भी नहीं जाता। (ई) उससे शब्द लिखा नहीं गया।

2. कर्म कारक–क्रिया के कार्य का फल जिस पर पड़ता है, वह कर्म कारक कहलाता है। इसका विभक्ति-चिह्न 'को' है। यह चिह्न भी बहुत-से स्थानों पर नहीं लगता। जैसे- 1. मोहन ने साँप को मारा। 2. लड़की ने पत्र लिखा। पहले वाक्य में 'मारने' की क्रिया का फल साँप पर पड़ा है, अतः साँप कर्म कारक है। इसके साथ परसर्ग 'को' लगा है।

दूसरे वाक्य में 'लिखने' की क्रिया का फल पत्र पर पड़ा, अतः पत्र कर्म कारक है। इसमें कर्म कारक का विभक्ति चिह्न 'को' नहीं लगा।

3. करण कारक–संज्ञा आदि शब्दों के जिस रूप से क्रिया के करने के साधन का बोध हो अर्थात् जिसकी सहायता से कार्य संपन्न हो वह करण कारक कहलाता है। इसके विभक्ति-चिह्न 'से' के 'द्वारा' है, जैसे- 1. अर्जुन ने जयद्रथ को बाण से मारा। 2. बालक गेंद से खेल रहे है।

पहले वाक्य में कर्ता अर्जुन ने मारने का कार्य 'बाण' से किया, अत: 'बाण से' करण कारक है। दूसरे वाक्य में कर्ता बालक खेलने का कार्य 'गेंद से' कर रहे हैं, अत: 'गेंद से' करण कारक है।

4. संप्रदान कारक–संप्रदान का अर्थ है-देना। अर्थात कर्ता जिसके लिए कुछ कार्य करता है, अथवा जिसे कुछ देता है, उसे व्यक्त करने वाले रूप को संप्रदान कारक कहते हैं। इसके विभक्ति चिह्न 'के लिए' को हैं।

1. स्वास्थ्य के लिए सूर्य को नमस्कार करो। 2. गुरुजी को फल दो।

इन दो वाक्यों में 'स्वास्थ्य के लिए' और 'गुरुजी को' संप्रदान कारक हैं।

5. अपादान कारक–संज्ञा के जिस रूप से एक वस्तु का दूसरी से अलग होना पाया जाए वह अपादान कारक कहलाता है। इसका विभक्ति-चिह्न 'से' है, जैसे- 1.बच्चा छत से गिर पड़ा। 2.संगीता घोड़े से गिर पड़ी।

इन दोनों वाक्यों में 'छत से' और घोड़े 'से' गिरने में अलग होना प्रकट होता है, अत: घोड़े से और छत से अपादान कारक हैं।

6. संबंध कारक–शब्द के जिस रूप से किसी एक वस्तु का दूसरी वस्तु से संबंध प्रकट हो वह संबंध कारक कहलाता है। इसका विभक्ति चिह्न 'का', 'के', 'की', 'रा', 'रे', 'री' है, जैसे- 1.यह राधेश्याम का बेटा है। 2.यह कमला की गाय है।

इन दोनों वाक्यों में 'राधेश्याम का बेटे' से और 'कमला का' गाय से संबंध प्रकट हो रहा है, अत: यहाँ संबंध कारक है।

7. अधिकरण कारक–शब्द के जिस रूप से क्रिया के आधार का बोध होता है, उसे अधिकरण कारक कहते हैं। इसके विभक्ति-चिह्न 'में', 'पर' हैं जैसे- 1.भँवरा फूलों पर मँडरा रहा है। 2.कमरे में टी.वी. रखा है।

इन दोनों वाक्यों में 'फूलों पर' और 'कमरे में' अधिकरण कारक है।

8. संबोधन कारक–जिससे किसी को बुलाने अथवा सचेत करने का भाव प्रकट हो उसे संबोधन कारक कहते है और संबोधन चिह्न (!) लगाया जाता है, जैसे- 1. अरे भैया ! क्यों रो रहे हो ? 2. हे गोपाल ! यहाँ आओ।

इन वाक्यों में 'अरे भैया' और 'हे गोपाल' ! संबोधन कारक है।

सर्वनाम

सर्वनाम-संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त होने वाले शब्द को सर्वनाम कहते हैं। संज्ञा की पुनरुक्ति को दूर करने के लिए ही सर्वनाम का प्रयोग किया जाता है, जैसे-मैं, हम, तू, तुम, वह, यह, आप, कौन, कोई, जो आदि।

सर्वनाम के भेद- सर्वनाम के छह भेद हैं-

1. पुरुषवाचक सर्वनाम।
2. निश्चयवाचक सर्वनाम।
3. अनिश्चयवाचक सर्वनाम।
4. संबंधवाचक सर्वनाम।
5. प्रश्नवाचक सर्वनाम।
6. निजवाचक सर्वनाम।

1. पुरुषवाचक सर्वनाम–जिस सर्वनाम का प्रयोग वक्ता या लेखक स्वयं अपने लिए अथवा श्रोता या पाठक के लिए अथवा किसी अन्य के लिए करता है वह पुरुषवाचक सर्वनाम कहलाता है। पुरुषवाचक सर्वनाम तीन प्रकार के होते हैं-

(i) उत्तम पुरुषवाचक सर्वनाम- जिस सर्वनाम का प्रयोग बोलने वाला अपने लिए करे, उसे उत्तम पुरुषवाचक सर्वनाम कहते हैं जैसे-मैं, हम, मुझे, हमारा आदि।

(ii) मध्यम पुरुषवाचक सर्वनाम- जिस सर्वनाम का प्रयोग बोलने वाला सुनने वाले के लिए करे, उसे मध्यम पुरुषवाचक सर्वनाम कहते हैं जैसे-तू, तुम, तुझे, तुम्हारा आदि।

(iii) अन्य पुरुषवाचक सर्वनाम- जिस सर्वनाम का प्रयोग बोलने वाला सुनने वाले के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष के लिए करे उसे अन्य पुरुषवाचक सर्वनाम कहते हैं जैसे-वह, वे, उसने, यह, ये, इसने, आदि।

2. निश्चयवाचक सर्वनाम–जो सर्वनाम किसी व्यक्ति वस्तु आदि की ओर निश्चयपूर्वक संकेत करें वे निश्चयवाचक सर्वनाम कहलाते हैं। इनमें 'यह', 'वह', 'वे' सर्वनाम शब्द किसी विशेष व्यक्ति आदि का निश्चयपूर्वक बोध करा रहे हैं, अत: ये निश्चयवाचक सर्वनाम है।

3. अनिश्चयवाचक सर्वनाम–जिस सर्वनाम शब्द के द्वारा किसी निश्चित व्यक्ति अथवा वस्तु का बोध न हो वे अनिश्चयवाचक सर्वनाम कहलाते हैं। इनमें 'कोई' और 'कुछ' सर्वनाम शब्दों से किसी विशेष व्यक्ति अथवा वस्तु का निश्चय नहीं हो रहा है, अत: ऐसे शब्द अनिश्चयवाचक सर्वनाम कहलाते हैं।

4. संबंधवाचक सर्वनाम–परस्पर एक-दूसरी बात का संबंध बतलाने के लिए जिन सर्वनामों का प्रयोग होता है, उन्हें संबंधवाचक सर्वनाम कहते हैं। इनमें 'जो', 'वह', 'जिसकी', 'उसकी', 'जैसा', 'वैसा'-ये दो-दो शब्द परस्पर संबंध का बोध करा रहे हैं। ऐसे शब्द संबंधवाचक सर्वनाम कहलाते हैं।

5. प्रश्नवाचक सर्वनाम–जो सर्वनाम संज्ञा शब्दों के स्थान पर तो आते ही है, किन्तु वाक्य को प्रश्नवाचक भी बनाते हैं वे प्रश्नवाचक सर्वनाम कहलाते हैं जैसे-क्या, कौन आदि। इनमें 'क्या' और 'कौन' शब्द प्रश्नवाचक सर्वनाम हैं, क्योंकि इन सर्वनामों के द्वारा वाक्य प्रश्नवाचक बन जाते हैं।

6. निजवाचक सर्वनाम–जहाँ अपने लिए 'आप' शब्द 'अपना' शब्द अथवा 'अपने' 'आप' शब्द का प्रयोग हो वहाँ निजवाचक सर्वनाम होता है। इनमें 'अपना' और 'आप' शब्द उत्तम, पुरुष मध्यम पुरुष और अन्य पुरुष के (स्वयं का) अपने आप का बोध करा रहे हैं। ऐसे शब्द निजवाचक सर्वनाम कहलाते हैं।

विशेष-जहाँ केवल 'आप' शब्द का प्रयोग श्रोता के लिए हो, वहाँ यह आदर-सूचक मध्यम पुरुष होता है और जहाँ 'आप' शब्द का प्रयोग अपने लिए हो वहाँ निजवाचक होता है।

सर्वनाम शब्दों के विशेष प्रयोग

(1) आप, वे, ये, हम, तुम शब्द बहुवचन के रूप में हैं, किन्तु आदर प्रकट करने के लिए इनका प्रयोग एक व्यक्ति के लिए भी होता है।

(2) 'आप' शब्द स्वयं के अर्थ में भी प्रयुक्त हो जाता है, जैसे-मैं यह कार्य आप ही कर लूँगा।

विशेषण

विशेषण की परिभाषा- संज्ञा अथवा सर्वनाम शब्दों की विशेषता (गुण, दोष, संख्या, परिमाण आदि) बताने वाले शब्द 'विशेषण' कहलाते हैं जैसे-बड़ा, काला, लंबा, दयालु, भारी, सुन्दर, कायर, टेढ़ा-मेढ़ा, एक, दो आदि।

विशेष्य- जिस संज्ञा अथवा सर्वनाम शब्द की विशेषता बताई जाए वह विशेष्य कहलाता है। यथा- गीता सुन्दर है। इसमें 'सुन्दर' विशेषण है और 'गीता' विशेष्य है। विशेषण शब्द विशेष्य से पूर्व भी आते हैं और उसके बाद भी।

पूर्व में, जैसे- (1) थोड़ा-सा जल लाओ। (2) एक मीटर कपड़ा ले आना।

बाद में, जैसे- (1) यह रास्ता लंबा है। (2) खीरा कड़वा है।

विशेषण के भेद- विशेषण के चार भेद हैं-

1. गुणवाचक।
2. परिमाणवाचक।
3. संख्यावाचक।
4. संकेतवाचक अथवा सार्वनामिक।

1. गुणवाचक विशेषण–जिन विशेषण शब्दों से संज्ञा अथवा सर्वनाम शब्दों के गुण-दोष का बोध हो वे गुणवाचक विशेषण कहलाते हैं जैसे-

(i) भाव- अच्छा, बुरा, कायर, वीर, डरपोक आदि।

(ii) रंग- लाल, हरा, पीला, सफेद, काला, चमकीला, फीका आदि।

(iii) दशा- पतला, मोटा, सूखा, गाढ़ा, पिघला, भारी, गीला, गरीब, अमीर, रोगी, स्वस्थ, पालतू आदि।

(iv) आकार- गोल, सुडौल, नुकीला, समान, पोला आदि।

(v) समय- अगला, पिछला, दोपहर, संध्या, सवेरा आदि।

(vi) स्थान- भीतरी, बाहरी, पंजाबी, जापानी, पुराना, ताजा, आगामी आदि।

(vii) गुण- भला, बुरा, सुन्दर, मीठा, खट्टा, दानी, सच, झूठ, सीधा आदि।

(viii) दिशा- उत्तरी, दक्षिणी, पूर्वी, पश्चिमी आदि।

2. परिमाणवाचक विशेषण–जिन विशेषण शब्दों से संज्ञा या सर्वनाम की मात्रा अथवा नाप-तोल का ज्ञान हो, वे परिमाणवाचक विशेषण कहलाते हैं।

परिमाणवाचक विशेषण के दो उपभेद है-

(1) निश्चित परिमाणवाचक विशेषण- जिन विशेषण शब्दों से वस्तु की निश्चित मात्रा का ज्ञान हो। जैसे-

(क) मेरे सूट में साढ़े तीन मीटर कपड़ा लगेगा।

(ख) दस किलो चीनी ले आओ।

(ग) दो लीटर दूध गरम करो।

(2) अनिश्चित परिमाणवाचक विशेषण- जिन विशेषण शब्दों से वस्तु की अनिश्चित मात्रा का ज्ञान हो। जैसे-

(क) थोड़ी-सी नमकीन वस्तु ले आओ।

(ख) कुछ आम दे दो।

(ग) थोड़ा-सा दूध गरम कर दो।

3. संख्यावाचक विशेषण–जिन विशेषण शब्दों से संज्ञा या सर्वनाम की संख्या का बोध हो वे संख्यावाचक विशेषण कहलाते हैं जैसे-एक, दो, द्वितीय, दुगुना, चौगुना, पाँचों आदि।

संख्यावाचक विशेषण के दो उपभेद हैं-

निश्चित संख्यावाचक विशेषण- जिन विशेषण शब्दों से निश्चित संख्या का बोध हो। जैसे-दो पुस्तकें मेरे लिए ले आना।

निश्चित संख्यावाचक के निम्नलिखित चार भेद हैं-

(क) गणवाचक- जिन शब्दों के द्वारा गिनती का बोध हो। जैसे-

(1) एक लड़का स्कूल जा रहा है।
(2) पच्चीस रुपये दीजिए।
(3) कल मेरे यहाँ दो मित्र आएँगे।
(4) चार आम लाओ।

(ख) क्रमवाचक- जिन शब्दों के द्वारा संख्या के क्रम का बोध हो। जैसे-

(1) पहला लड़का यहाँ आए।
(2) दूसरा लड़का वहाँ बैठे।
(3) राम कक्षा में प्रथम रहा।
(4) श्याम द्वितीय श्रेणी में पास हुआ है।

(ग) आवृत्तिवाचक- जिन शब्दों के द्वारा केवल आवृत्ति का बोध हो। जैसे-

(1) मोहन तुमसे चौगुना काम करता है।
(2) गोपाल तुमसे दुगुना मोटा है।

(घ) समुदायवाचक- जिन शब्दों के द्वारा केवल सामूहिक संख्या का बोध हो। जैसे-

(1) तुम तीनों को जाना पड़ेगा।
(2) यहाँ से चारों चले जाओ।

अनिश्चित संख्यावाचक विशेषण- जिन विशेषण शब्दों से निश्चित संख्या का बोध न हो। जैसे-कुछ बच्चे पार्क में खेल रहे हैं।

(4) संकेतवाचक (निर्देशक) **विशेषण**–जो सर्वनाम संकेत द्वारा संज्ञा या सर्वनाम की विशेषता बतलाते हैं वे संकेतवाचक विशेषण कहलाते हैं।

विशेष-क्योंकि संकेतवाचक विशेषण सर्वनाम शब्दों से बनते हैं, अत: ये सार्वनामिक विशेषण कहलाते हैं। इन्हें निर्देशक भी कहते हैं।

परिमाणवाचक विशेषण और संख्यावाचक विशेषण में अंतर- जिन वस्तुओं की नाप-तोल की जा सके उनके वाचक शब्द परिमाणवाचक विशेषण कहलाते हैं जैसे-'कुछ दूध लाओ'। इसमें 'कुछ' शब्द तोल के लिए आया है। इसलिए यह परिमाणवाचक विशेषण है। 2. जिन वस्तुओं की गिनती की जा सके

उनके वाचक शब्द संख्यावाचक विशेषण कहलाते हैं जैसे-कुछ बच्चे इधर आओ। यहाँ पर 'कुछ' बच्चों की गिनती के लिए आया है। इसलिए यह संख्यावाचक विशेषण है। परिमाणवाचक विशेषणों के बाद द्रव्य अथवा पदार्थवाचक संज्ञाएँ आएँगी जबकि संख्यावाचक विशेषणों के बाद जातिवाचक संज्ञाएँ आती हैं।

सर्वनाम और सार्वनामिक विशेषण में अंतर- जिस शब्द का प्रयोग संज्ञा शब्द के स्थान पर हो उसे सर्वनाम कहते हैं जैसे-वह मुंबई गया। इस वाक्य में वह सर्वनाम है, जिस शब्द का प्रयोग संज्ञा से पूर्व अथवा बाद में विशेषण के रूप में किया गया हो उसे सार्वनामिक विशेषण कहते हैं जैसे-वह रथ आ रहा है। इसमें वह शब्द रथ का विशेषण है, अत: यह सार्वनामिक विशेषण है।

विशेषण की अवस्थाएँ–विशेषण शब्द किसी संज्ञा या सर्वनाम की विशेषता बतलाते हैं। विशेषता बताई जाने वाली वस्तुओं के गुण-दोष कम-ज्यादा होते हैं। गुण-दोषों के इस कम-ज्यादा होने को तुलनात्मक ढंग से ही जाना जा सकता है। तुलना की दृष्टि से विशेषणों की निम्नलिखित तीन अवस्थाएँ होती हैं-

(1) मूलावस्था
(2) उत्तरावस्था
(3) उत्तमावस्था

(1) मूलावस्था–मूलावस्था में विशेषण का तुलनात्मक रूप नहीं होता है। वह केवल सामान्य विशेषता ही प्रकट करता है, जैसे- 1.सावित्री सुंदर लड़की है। 2.सुरेश अच्छा लड़का है। 3.सूर्य तेजस्वी है।

(2) उत्तरावस्था–जब दो व्यक्तियों या वस्तुओं के गुण-दोषों की तुलना की जाती है तब विशेषण उत्तरावस्था में प्रयुक्त होता है, जैसे- 1.रवीन्द्र चेतन से अधिक बुद्धिमान है। 2.सविता रमा की अपेक्षा अधिक सुन्दर है।

(3) उत्तमावस्था–उत्तमावस्था में दो से अधिक व्यक्तियों एवं वस्तुओं की तुलना करके किसी एक को सबसे अधिक अथवा सबसे कम बताया गया है, जैसे- 1.पंजाब में अधिकतम अन्न होता है। 2.संदीप निकृष्टतम बालक है।

विशेष-केवल गुणवाचक एवं अनिश्चित संख्यावाचक तथा निश्चित परिमाणवाचक विशेषणों की ही ये तुलनात्मक अवस्थाएँ होती है, अन्य विशेषणों की नहीं।

क्रिया

जिस शब्द अथवा शब्द-समूह के द्वारा किसी कार्य के होने अथवा करने का बोध हो उसे क्रिया कहते हैं जैसे-

(1) गीता नाच रही है।
(2) बच्चा दूध पी रहा है।
(3) राकेश कॉलेज जा रहा है।
(4) गौरव बुद्धिमान है।
(5) शिवाजी बहुत वीर थे।

इनमें 'नाच रही है', 'पी रहा है', 'जा रहा है' शब्द कार्य-व्यापार का बोध करा रहे हैं जबकि 'है', 'थे' शब्द होने का। इन सभी से किसी कार्य के करने अथवा होने का बोध हो रहा है, अत: ये क्रियाएँ हैं।

धातु–क्रिया का मूल रूप धातु कहलाता है, जैसे-लिख, पढ़, जा, खा, गा, रो, पा आदि। इन्हीं धातुओं से लिखता, पढ़ता, आदि क्रियाएँ बनती हैं।

क्रिया के भेद- क्रिया के दो भेद हैं-
(1) अकर्मक क्रिया।
(2) सकर्मक क्रिया।

1.अकर्मक क्रिया–जिन क्रियाओं का फल सीधा कर्ता पर ही पड़े वे अकर्मक क्रिया कहलाती हैं। ऐसी अकर्मक क्रियाओं को कर्म की आवश्यकता नहीं होती। अकर्मक क्रियाओं के अन्य उदाहरण हैं-
(1) गौरव रोता है।
(2) साँप रेंगता है।
(3) रेलगाड़ी चलती है।

कुछ अकर्मक क्रियाएँ- लजाना, होना, बढ़ना, सोना, खेलना, अकड़ना, डरना, बैठना, हँसना, उगना, जीना, दौड़ना, रोना, ठहरना, चमकना, डोलना, मरना, घटना, फाँदना, जागना, बरसना, उछलना, कूदना आदि।

2. सकर्मक क्रिया–जिन क्रियाओं का फल (कर्ता को छोड़कर) कर्म पर पड़ता है, वे सकर्मक क्रिया कहलाती हैं। इन क्रियाओं में कर्म का होना आवश्यक हैं, सकर्मक क्रियाओं के अन्य उदाहरण हैं-
(1) मैं लेख लिखता हूँ।
(2) रमेश मिठाई खाता है।
(3) सविता फल लाती है।
(4) भँवरा फूलों का रस पीता है।

8

हिन्दी भाषा : क्षेत्र, स्वरूप एवं विकास

प्रत्येक भाषा के अनेक भेद होते हैं। किसी भी भाषा-क्षेत्र में एक ओर भाषा-क्षेत्र की क्षेत्रगत भिन्नताओं के आधार पर अनेक भेद होते हैं (यथा–बोली और भाषा) तो दूसरी ओर सामाजिक भिन्नताओं के आधार पर भाषा की वर्गगत बोलियाँ होती हैं। भाषा-व्यवहार अथवा भाषा-प्रकार्य की दृष्टि से भी भाषा के अनेक भेद होते हैं। (यथा- मानक भाषा, उपमानक भाषा अथवा शिष्टेतर भाषा, अपभाषा, विशिष्ट वाग्व्यवहार की शैलियाँ, साहित्यिक भाषा आदि)। विशिष्ट प्रयोजनों की सिद्धि के लिए प्रयोजनमूलक भाषा के अनेक रूप होते हैं, जिनकी चर्चा लेखक ने प्रकार्यात्मक भाषाविज्ञान के संदर्भ में की है।

जब भिन्न भाषाओं के बोलने वाले एक ही क्षेत्र में निवास करने लगते हैं तो भाषाओं के संसर्ग से विशिष्ट भाषा प्रकार विकसित हो जाते हैं। (यथा -पिजिन, क्रिओल)। भाषा के असामान्य रूपों के उदाहरण गुप्त भाषा एवं कृत्रिम भाषा आदि हैं। इस आलेख का उद्देश्य भाषा-क्षेत्र की अवधारणा को स्पष्ट करना तथा हिन्दी भाषा-क्षेत्र के विविध क्षेत्रीय भाषिक-रूपों के सम्बंध में विवेचना करना है। यहाँ यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि इस सम्बंध में न केवल सामान्य व्यक्ति के मन में अनेक भ्रामक धारणाएँ बनी हुई हैं प्रत्युत हिन्दी भाषा के कतिपय अध्येताओं, विद्वानों तथा प्रतिष्ठित आलोचकों का मन भी तत्सम्बंधित

भ्रांतियों से मुक्त नहीं है। हिन्दी कभी अपने भाषा-क्षेत्र की सीमाओं में नहीं सिमटी। यह हिमालय से लेकर कन्याकुमारी और द्वारका से लेकर कटक तक भारतीय लोक चेतना की संवाहिका रही। सम्पर्क भाषा हिन्दी की एक अन्य विशिष्टता यह रही कि यह किसी बँधे बँधाए मानक रूप की सीमाओं में नहीं जकड़ी। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि केवल बोलचाल की भाषा में ही यह प्रवृत्ति नहीं है, साहित्य में प्रयुक्त हिन्दी में भी यह प्रवृत्ति मिलती है।

हिन्दी साहित्य की समावेशी एवं संश्लिष्ट परम्परा रही है, हिन्दी साहित्य के इतिहास की समावेशी एवं संश्लिष्ट परम्परा रही है और हिन्दी साहित्य के अध्ययन और अध्यापन की भी समावेशी एवं संश्लिष्ट परम्परा रही है। हिन्दी की इस समावेशी एवं संश्लिष्ट परम्परा को जानना बहुत जरूरी है तथा इसे आत्मसात करना भी बहुत जरूरी है तभी हिन्दी क्षेत्र की अवधारणा को जाना जा सकता है और जो ताकतें हिन्दी को उसके अपने ही घर में तोड़ने का कुचक्र रच रही है तथा हिन्दी की ताकत को समाप्त करने के षड़यंत्र कर रही हैं, उन ताकतों के षड़यंत्रों को बेनकाब किया जा सकता है तथा उनके कुचक्रों को ध्वस्त किया जा सकता है।

वर्तमान में हम हिन्दी भाषा के इतिहास के बहुत महत्वपूर्ण मोड़ पर खड़े हुए हैं। आज बहुत सावधानी बरतने की जरूरत है। आज हिन्दी को उसके अपने ही घर में तोड़ने के जो प्रयत्न हो रहे हैं सबसे पहले उन्हे जानना और पहचानना जरूरी है और इसके बाद उनका प्रतिकार करने की जरूरत है। यदि आज हम इससे चूक गए तो इसके भयंकर परिणाम होंगे। मुझे सन् 1993 के एक प्रसंग का स्मरण आ रहा है। मध्य प्रदेश के तत्कालीन शिक्षा मंत्री ने भारत सरकार के मानव संसाधन मंत्री को मध्य प्रदेश में 'मालवी भाषा शोध संस्थान' खोलने तथा उसके लिए अनुदान का प्रस्ताव भेजा था। उस समय भारत सरकार के मानव संसाधन मंत्री श्री अर्जुन सिंह थे, जिनके प्रस्तावक से निकट के सम्बंध थे। मंत्रालय ने उक्त प्रस्ताव केन्द्रीय हिन्दी संस्थान के निदेशक होने के नाते लेखक के पास टिप्पण देने के लिए भेजा। लेखक ने सोच समझकर टिप्पण लिखा: "भारत सरकार को पहले यह सुनिश्चित करना चाहिए कि मध्य प्रदेश हिन्दी भाषी राज्य है अथवा बुन्देली, बघेली, छत्तीसगढ़ी, मालवी, निमाड़ी आदि भाषाओं का राज्य है"। मुझे पता चला कि उक्त टिप्पण के बाद प्रस्ताव को ठंढे बस्ते में डाल दिया गया।

एक ओर हिन्दीतर राज्यों के विश्वविद्यालयों और विदेशों के लगभग 176 विश्वविद्यालयों एवं संस्थाओं में हजारों की संख्या में शिक्षार्थी हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन और शोध कार्य में समर्पण-भावना तथा पूरी निष्ठा से प्रवृत्त तथा संलग्न हैं, वहीं दूसरी ओर हिन्दी भाषा-क्षेत्र में ही अनेक लोग हिन्दी के विरुद्ध साजिश रच रहे हैं। सामान्य व्यक्ति ही नहीं, हिन्दी के तथाकथित विद्वान भी हिन्दी का अर्थ खड़ी बोली मानने की भूल कर रहे हैं। हिन्दी साहित्य को जिंदगी भर पढ़ाने वाले, हिन्दी की रोजी, खाने वाले रोटी हिन्दी की कक्षाओं में हिन्दी पढ़ने वाले विद्यार्थियों को विद्यापति, जायसी, तुलसीदास, सूरदास जैसे–हिन्दी के महान साहित्यकारों की रचनाओं को पढ़ाने वाले अध्यापक तथा इन पर शोध एवं अनुसंधान करने एवं कराने वाले आलोचक भी न जाने किस लालच में या आँखों पर पट्टी बाँधकर यह घोषणा कर रहे हैं कि हिन्दी का अर्थ तो केवल खड़ी बोली है। भाषा विज्ञान के भाषा-भूगोल एवं बोली विज्ञान के सिद्धांतों से अनभिज्ञ ये लोग ऐसे वक्तव्य जारी कर रहे हैं, जैसे–वे इन विषयों के विशेषज्ञ हों। क्षेत्रीय भावनाओं को उभारकर एवं भड़काकर ये लोग हिन्दी की समावेशी एवं संश्लिष्ट परम्परा को नष्ट करने पर आमदा हैं।

जब लेखक जबलपुर के विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर हिन्दी एवं भाषाविज्ञान विभाग का प्रोफेसर था, उसके पास विभिन्न विश्वविद्यालयों से हिन्दी की उपभाषाओं/बोलियों पर पी-एच. डी. एवं डी. लिट्. उपाधियों के लिए प्रस्तुत शोध प्रबंध जाँचने के लिए आते थे। लेखक ने ऐसे अनेक शोध प्रबंध देखें जिनमें एक ही पृष्ठ पर एक पैरा में विवेच्य बोली को उपबोली का दर्जा दिया दिया गया, दूसरे पैरा में उसको हिन्दी की बोली निरुपित किया गया तथा तीसरे पैरा में उसे भारत की प्रमुख भाषा के अभिधान से महिमामंडित कर दिया गया।

इससे यह स्पष्ट है कि शोध छात्रों अथवा शोध छात्राओं को तो जाने ही दीजिए उन शोध छात्रों अथवा शोध छात्राओं के निर्देशक महोदय भी भाषा-भूगोल एवं बोली विज्ञान के सिद्धांतों से अनभिज्ञ थे।

सन् 2009 में, लेखक ने नामवर सिंह का यह वक्तव्य पढ़ा:

"हिंदी समूचे देश की भाषा नहीं है, वरन वह तो अब एक प्रदेश की भाषा भी नहीं है। उत्तरप्रदेश, बिहार जैसे–राज्यों की भाषा भी हिंदी नहीं है। वहाँ की क्षेत्रीय भाषाएँ यथा अवधी, भोजपुरी, मैथिल आदि हैं"। इसको पढ़कर मैने नामवर सिंह के इस वक्तव्य पर असहमति के तीव्र स्वर दर्ज कराने तथा हिन्दी के विद्वानों को वस्तुस्थिति से अवगत कराने के लिए लेख लिखा। हिन्दी के

प्रेमियों से लेखक का यह अनुरोध है कि इस लेख का अध्ययन करने की अनुकंपा करें, जिससे हिन्दी के कथित बड़े विद्वान एवं आलोचक डॉ. नामवर सिंह जैसे–लोगों के हिन्दी को उसके अपने ही घर में तोड़ डालने के मंसूबे ध्वस्त हो सके तथा ऐसी ताकतें बेनकाब हो सकें, जो व्यक्ति मेरे इस कथन को विस्तार से समझना चाहते हैं, वे मेरे 'क्या उत्तर प्रदेश एवं बिहार हिन्दी भाषी राज्य नहीं हैं' शीर्षक लेख का अध्ययन कर सकते हैं।

भाषा क्षेत्र

एक भाषा का जन–समुदाय अपनी भाषा के विविध भेदों एवं रूपों के माध्यम से एक भाषिक इकाई का निर्माण करता है। विविध भाषिक भेदों के मध्य सम्भाषण की सम्भाव्यता से भाषिक एकता का निर्माण होता है। एक भाषा के समस्त भाषिक–रूप जिस क्षेत्र में प्रयुक्त होते हैं, उसे उस भाषा का 'भाषा–क्षेत्र' कहते हैं। प्रत्येक 'भाषा क्षेत्र में भाषिक भिन्नताएँ प्राप्त होती हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भाषा की भिन्नताओं का आधार प्रायः वर्णगत एवं धर्मगत नहीं होता। एक वर्ण या एक धर्म के व्यक्ति यदि भिन्न भाषा क्षेत्रों में निवास करते हैं तो वे भिन्न भाषाओं का प्रयोग करते हैं। हिन्दू मुसलमान आदि सभी धर्मावलम्बी तमिलनाडु में तमिल बोलते हैं तथा केरल में मलयालम। इसके विपरीत यदि दो भिन्न वर्णों या दो धर्मों के व्यक्ति एक भाषा क्षेत्र में रहते हैं तो उनके एक ही भाषा को बोलने की सम्भावनाएँ अधिक होती हैं। हिन्दी भाषा क्षेत्र में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्व आदि सभा वर्णों के व्यक्ति हिन्दी का प्रयोग करते हैं। यह बात अवश्य है कि विशिष्ट स्थितियों में वर्ण या धर्म के आधार पर भाषा में बोलीगत अथवा शैलगत प्रभेद हो जाते हैं। कभी–कभी ऐसी भी स्थितियाँ विकसित हो जाती हैं, जिनके कारण एक भाषा के दो रूपों को दो भिन्न भाषाएँ समझा जाने लगता है।

प्रश्न यह उपस्थित होता है कि हम यह किस प्रकार निर्धारित करें कि उच्चारण के कोई दो रूप एक ही भाषा के भिन्न रूप हैं अथवा अलग–अलग भाषाएँ हैं ? इसका एक प्रमुख कारण यह है कि भाषिक भिन्नताएँ सापेक्षिक होती हैं तथा दो भिन्न भाषा क्षेत्रों के मध्य कोई सीधी एवं सरल विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती। यही कारण है कि भाषिक–भूगोल पर कार्य करते समय बहुधा कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। भारत का भाषा–सर्वेक्षण करते समय इसी प्रकार की कठिनाई का अनुभव ग्रियर्सन को हुआ था। उन्होंने लिखा है कि ''

सर्वेक्षण का कार्य करते समय यह निश्चित करने में कठिनाई पड़ी कि वास्तव में एक कथित भाषा स्वतंत्र भाषा है, अथवा अन्य किसी भाषा की बोली है। इस सम्बन्ध में इस प्रकार का निर्णय देना जिसे सब लोग स्वीकार कर लेंगे, कठिन है। भाषा और बोली में प्राय: वही सम्बन्ध है, जो पहाड़ तथा पहाड़ी में है। यह नि:संकोच रूप से कहा जा सकता है कि एवरेस्ट पहाड़ है और हालबर्न एक पहाड़ी, किन्तु इन दोनों के बीच की विभाजक रेखा को निश्चित रूप से बताना कठिन है।---- सच तो यह है कि दो बोलियों अथवा भाषाओं में भेदीकरण केवल पारस्परिक वार्ता सम्बन्ध पर ही निर्भर नहीं करता। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से इस सम्बन्ध में विचार करने के लिए अन्य महत्वपूर्ण तथ्यों को भी दृष्टि में रखना आवश्यक है।

व्यावहारिक दृष्टि से जिस क्षेत्र में भाषा के विभिन्न भेदों में पारस्परिक बोधगम्यता होती है, वह क्षेत्र उस भाषा के विभिन्न भेदों का 'भाषा-क्षेत्र' कहलाता है। भिन्न भाषा-भाषी व्यक्ति परस्पर विचारों का आदान-प्रदान नहीं कर पाते। इस प्रकार जब एक व्यक्ति अपनी भाषा के माध्यम से दूसरे भाषा-भाषी को भाषा के स्तर पर अपने विचारों, भावनाओं, कल्पनाओं, संवेदनाओं का बोध नहीं करा पाता, तब ऐसी स्थिति में उन दो व्यक्तियों के भाषा रूपों को अलग-अलग भाषाओं के नाम से अभिहित किया जाता है। इस बात इस तथ्य से समझा जा सकता है कि जब कोई ऐसा तमिल-भाषी व्यक्ति जो पहले से हिन्दी नहीं जानता, हिन्दी-भाषी व्यक्ति से बात करता है, तो वह हिन्दी-भाषा व्यक्ति द्वारा कही गई बात को भाषा के माध्यम से नहीं समझ पाता, भले ही वह कही गई बात का आशय संकेतों, मुख मुद्राओं, भाव-भंगिमाओं के माध्यम से समझ जाए। इसके विपरीत यदि कन्नौजी बोलने वाला व्यक्ति अवधी बोलने वाले से बातें करता है तो दोनों को विचारों के आदान-प्रदान करने में कठिनाइयाँ तो होती हैं, किन्तु फिर भी वे किसी न किसी मात्रा में विचारों का आदान-प्रदान कर लेते हैं।

भाषा रूपों की भिन्नता अथवा एकता का यह व्यावहारिक आधार है।भिन्न भाषा रूपों को एक ही भाषा के रूप में अथवा अलग अलग भाषाओं के रूप में मान्यता दिलाने में ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक एवं उन भाषिक रूपों की संरचना एवं व्यवस्था आदि कारण एवं तथ्य अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं, तथा कभी-कभी 'पारस्परिक बोधगम्यता' अथवा 'एक तरफा बोधगम्यता' के व्यावहारिक सिद्धांत की अपेक्षा अधिक निर्णायक हो

जाते हैं। इस दृष्टि से कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं।ऐतिहासिक कारणों से वैनिशन (Venetian) तथा सिसिली (Sicily) को इटाली भाषा की बोलियाँ माना जाता है, यद्यपि इनमें पारस्परिक बोधगम्यता का प्रतिशत बहुत कम है। इसी प्रकार लैपिश (Lappish) को एक ही भाषा माना जाता है। इसके अन्तर्गत परस्पर अबोधगम्य भाषिक रूप समाहित हैं। इसके विपरीत राजनैतिक कारणों से डेनिश, नार्वेजियन एवं स्वेडिश को अलग-अलग भाषाएँ माना जाता है। इनमें पारस्परिक बोधगम्यता का प्रतिशत वैनिशन तथा सिसिली के पारस्परिक बोधगम्यता के प्रतिशत से कम नहीं है।

भारतवर्ष के संदर्भ में हिन्दी भाषा के पश्चिमी वर्ग की उप-भाषाओं तथा बिहारी वर्ग की उप-भाषाओं के मध्य बोधगम्यता का प्रतिशत कम है। 'बिहारी वर्ग' की उप-भाषाओं पर कार्य करने वाले भाषा-वैज्ञानिकों ने उनमें संरचनात्मक भिन्नताएँ भी पर्याप्त मानी हैं। इतना होने पर भी सांस्कृतिक, राष्ट्रीय एवं ऐतिहासिक कारणों से भोजपुरी एवं मगही बोलने वाले अपने को हिन्दी भाषा-भाषी मानते हैं। ये भाषिक रूप हिन्दी भाषा-क्षेत्र के अन्तर्गत समाहित हैं। इसके विपरीत यद्यपि असमिया एवं बांग्ला में पारस्परिक बोधगम्यता एवं संरचनात्मक साम्यता का प्रतिशत कम नहीं है तथापि ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक कारणों से इनके बोलने वाले इन भाषा रूपों को भिन्न भाषाएँ मानते हैं। इसी कारण कुछ विद्वानों का मत है कि भाषा-क्षेत्र उस क्षेत्र के प्रयोक्ताओं की मानसिक अवधारणा है। भाषा-क्षेत्र में बोली जाने वाली विभिन्न बोलियों के प्रयोक्ता अपने अपने भाषिक-रूप की पहचान उस भाषा के रूप में करते हैं। विशेष रूप से जब वे किसी भिन्न भाषा-भाषी-क्षेत्र में रहते हैं तो वे अपनी अस्मिता की पहचान उस भाषा के प्रयोक्ता के रूप में करते हैं।

यदि दो भाषा-क्षेत्रों के मध्य कोई पर्वत या सागर जैसी बड़ी प्राकृतिक सीमा नहीं होती अथवा उन क्षेत्रों में रहने वाले व्यक्तियों के अलग अलग क्षेत्रों में उनके सामाजिक सम्पर्क को बाधित करने वाली राजनैतिक सीमा नहीं होती तो उन भाषा क्षेत्रों के मध्य कोई निश्चित एवं सरल रेखा नहीं खींची जा सकती। प्रत्येक दो भाषाओं के मध्य प्रायः ऐसा 'क्षेत्र' होता है, जिसमें निवास करने वाले व्यक्ति उन दोनों भाषाओं को किसी न किसी रूप में समझ लेते हैं। ऐसे क्षेत्र को उन भाषाओं का 'संक्रमण-क्षेत्र कहते हैं।

जिस प्रकार अपभ्रंश और हिन्दी के बीच किसी एक वर्ष की 'काल रेखा' निर्धारित नहीं की जा सकती, फिर भी एक युग 'अपभ्रंश-युग' कहलाता है और

दूसरा हिन्दी, मराठी, गुजराती आदि 'नव्यतर भारतीय आर्य भाषाओं का युग' कहलाता है, उसी प्रकार यद्यपि हिन्दी और मराठी के बीच (अथवा अन्य किन्हीं दो भाषाओं के बीच) हम किलोमीटर या मील की कोई रेखा नहीं खींच सकते फिर भी एक क्षेत्र हिन्दी का कहलाता है और दूसरा मराठी का। ऐतिहासिक दृष्टि से अपभ्रंश और हिन्दी के बीच एव 'सन्धि-युग' है, जो इन दो भाषाओं के काल-निर्धारण का काम करता है। संकालिक दृष्टि से दो भाषाओं के बीच 'संक्रमण-क्षेत्र' होता है, जो उन भाषाओं के क्षेत्र को निर्धारित करता है।

प्रत्येक भाषा-क्षेत्र में भाषिक भेद होते हैं। हम किसी ऐसे भाषा क्षेत्र की कल्पना नहीं कर सकते, जिसके समस्त भाषा-भाषी भाषा के एक ही रूप के माध्यम से विचारों का आदान-प्रदान करते हों। यदि हम वर्तमानकाल में किसी ऐसे भाषा-क्षेत्र का निर्माण कर भी लें जिसकी भाषा में एक ही बोली हो तब भी कालान्तर में उस क्षेत्र में विभिन्नताएँ विकसित हो जाती हैं। इसका कारण यह है कि किसी भाषा का विकास सम्पूर्ण क्षेत्र में समरूप नहीं होता। परिवर्तन की गति क्षेत्र के अलग-अलग भागों में भिन्न होती है। विश्व के भाषा-इतिहास में ऐसा कोई भी उदाहरण प्राप्त नहीं है, जिसमें कोई भाषा अपने सम्पूर्ण क्षेत्र में समान रूप से परिवर्तित हुई हो।

भाषा और बोली के युग्म पर विचार करना सामान्य धारणा है। सामान्य व्यक्ति भाषा को विकसित और बोली को अविकसित मानता है। सामान्य व्यक्ति भाषा को शिक्षित, शिष्ट, विद्वान एवं सुजान प्रयोक्ताओं से जोड़ता है और बोली को अशिक्षित, अशिष्ट, मूर्ख एवं गँवार प्रयोक्ताओं से जोड़ता है। भाषाविज्ञान इस धारणा को अतार्किक और अवैज्ञानिक मानता है। भाषाविज्ञान भाषा को निम्न रूप से परिभाषित करता है-'भाषा अपने भाषा-क्षेत्र में बोली जाने वाली समस्त बोलियों की समष्टि का नाम है'।

हम आगे भाषा-क्षेत्र के समस्त सम्भावित भेद-प्रभेदों की विवेचना करेंगे।

व्यक्ति बोलियाँ

एक भाषा क्षेत्र में 'एकत्व' की दृष्टि से एक ही भाषा होती है, किन्तु 'भिन्नत्व' की दृष्टि से उस भाषा क्षेत्र में जितने बोलने वाले निवास करते हैं, उसमें उतनी ही भिन्न व्यक्ति-बोलियाँ होती हैं। प्रत्येक व्यक्ति भाषा के द्वारा समाज के व्यक्तियों से सम्प्रेषण-व्यवहार करता है। भाषा के द्वारा अपने निजी व्यक्तित्व व का विकास एवं विचार की अभिव्यक्ति करता है। प्रत्येक

व्यक्ति के निजी व्यक्तित्त्व का प्रभाव उसके अभिव्यक्तिकरण व्यवहार पर भी पड़ता है।

प्रत्येक व्यक्ति के अनुभवों, विचारों, आचरण पद्धतियों, जीवन व्यवहारों एवं कार्यकलापों की निजी विशेषताएँ होती हैं। समाज के सदस्यों के व्यक्तित्त्व की भेदक भिन्नताओं का प्रभाव उनके व्यक्ति-भाषा-रूपों पर पड़ता है और इस कारण प्रत्येक व्यक्ति बोली में निजी भिन्नताएँ अवश्य होती हैं। व्यक्ति बोली के धरातल पर एक व्यक्ति जिस प्रकार बोलता है, ठीक उसी प्रकार दूसरा कोई व्यक्ति नहीं बोलता। यही कारण है कि हम किसी व्यक्ति भले ही न देखें मगर मात्रा उसकी आवाज को सुनकर उसको पहचान लेते हैं।

यदि भिन्नताओं को और सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो यह बात कही जा सकती है कि स्वनिक स्तर पर कोई भी व्यक्ति एक ध्वनि को उसी प्रकार दोबारा उच्चारित नहीं कर सकता। यदि एक व्यक्ति 'प', ध्वनि का सौ बार उच्चारण करता है तो वे 'प्' ध्वनि के सौ स्वन होते हैं। इन स्वनों की भिन्नताओं को हमारे कान नहीं पहचान पाते। जब भौतिक ध्वनि विज्ञान के अन्तर्गत ध्वनि-यन्त्रों की सहायता से इसका अध्ययन किया जाता है तो ध्वनि यन्त्र इनके सूक्ष्म अन्तरों को पकड़ पाने की क्षमता रखते हैं। 'स्वनिक स्तर' पर प्रत्येक ध्वनि का प्रत्येक उच्चारण एक अलग स्वन होता है।

जिस प्रकार दार्शनिक धरातल पर बौद्ध दर्शन के अनुसार इस संसार के प्रत्येक पदार्थ में प्रतिक्षण परिवर्तन होता है, उसी प्रकार भाषा के प्रत्येक व्यक्ति की प्रत्येक ध्वनि का प्रत्येक उच्चार यत्किंचित भिन्नताएँ लिए होता है तथा जिस प्रकार अद्वैतवादी के अनुसार इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में एक ही परमात्म-तत्त्व की सत्ता है, उसी प्रकार एक भाषा क्षेत्र में व्यवहृत होने वाले समस्त भाषिक रूपों को एक ही भाषा के नाम से पुकारा जाता है।

यदि उच्चारण की स्वनिक भिन्नताओं को छोड़ दें तो एक भाषा-क्षेत्र में उस भाषा-जन-समुदाय के जितने सदस्य होते हैं, उतनी ही उसमें व्यक्ति-बोलियाँ होती हैं। उन समस्त व्यक्ति-बोलियों के समूह का नाम भाषा है।

बोली

भाषा-क्षेत्र की समस्त व्यक्ति-बोलियों एवं उस क्षेत्र की भाषा के मध्य प्रायः बोली का स्तर होता है। भाषा की क्षेत्रगत एवं वर्गगत भिन्नताओं को क्रमशः क्षेत्रगत एवं वर्गगत बोलियों के नाम से पुकारा जाता है। इसको इस प्रकार भी कहा

जा सकता है कि भाषा की संरचक बोलियाँ होती हैं, तथा बोली की संरचक व्यक्ति बोलियाँ।

इस प्रकार तत्त्वत: बोलियों की समष्टि का नाम भाषा है। 'भाषा क्षेत्र' की क्षेत्रगत भिन्नताओं एवं वर्गगत भिन्नताओं पर आधारित भाषा के भिन्न रूप उसकी बोलियाँ हैं। बोलियाँ से ही भाषा का अस्तित्त्व है। इस प्रसंग में, यह सवाल उठाया जा सकता है कि सामान्य व्यक्ति अपने भाषा-क्षेत्र में प्रयुक्त बोलियों से इतर जिस भाषिक रूप को सामान्यत: 'भाषा' समझता है वह फिर क्या है। वह असल में उस भाषा क्षेत्र की किसी क्षेत्रीय बोली के आधार पर विकसित 'उस भाषा का मानक भाषा रूप' होता है।

इस दृष्टि के कारण ऐसे व्यक्ति 'मानक भाषा' या 'परिनिष्ठित भाषा' को मात्रा 'भाषा' नाम से पुकारते हैं तथा अपने इस दृष्टिकोण के कारण 'बोली' को भाषा का भ्रष्ट रूप, अपभ्रंश रूप तथा 'गँवारू भाषा' जैसे–नामों से पुकारते हैं। वस्तुत: बोलियाँ अनौपचारिक एवं सहज अवस्था में अलग-अलग क्षेत्रों में उच्चारित होने वाले रूप हैं, जिन्हें संस्कृत में 'देश भाषा' तथा अपभ्रंश में 'देसी भाषा' कहा गया है। भाषा का 'मानक' रूप समस्त बोलियों के मध्य सम्पर्क सूत्र का काम करता है। भाषा की क्षेत्रगत एवं वर्गगत भिन्नताएँ उसे बोलियों के स्तरों में विभाजित कर देती है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि बोलियों के स्तर पर विभाजित भाषा के रूप निश्चित क्षेत्र अथवा वर्ग में व्यवहृत होते हैं, जबकि प्रकार्यात्मक धरातल पर विकसित भाषा के मानक रूप, उपमानक रूप, विशिष्ट रूप (अपभाषा, गुप्त भाषा आदि) पूरे भाषा क्षेत्र में प्रयुक्त होते हैं, भले ही इनके बोलने वालों की संख्या न्यूनाधिक हो।

प्रत्येक उच्चारित एवं व्यवहृत भाषा की बोलियाँ होती हैं। किसी भाषा में बोलियों की संख्या दो या तीन होती है तो किसी में बीस-तीस भी होती है। कुछ भाषाओं में बोलियों का अन्तर केवल कुछ विशिष्ट ध्वनियों के उच्चारण की भिन्नताओं तथा बोलने के लहजे मात्रा का होता है, जबकि कुछ भाषाओं में बोलियों की भिन्नताएँ भाषा के समस्त स्तरों पर प्राप्त हो सकती हैं। दूसरे शब्दों में, बोलियों में ध्वन्यात्मक, ध्वनिग्रामिक, रूपग्रामिक, वाक्यविन्यासीय, शब्दकोषीय एवं अर्थ सभी स्तरों पर अन्तर हो सकते हैं। कहीं-कहीं ये भिन्नताएँ इतनी अधिक होती हैं कि एक सामान्य व्यक्ति यह बता देता है कि अमुक भाषिक रूप का बोलने वाला व्यक्ति अमुक बोली क्षेत्र का है।

किसी-किसी भाषा में क्षेत्रगत भिन्नताएँ इतनी व्यापक होती हैं तथा उन भिन्न भाषिक-रूपों के क्षेत्र इतने विस्तृत होते हैं कि उन्हें सामान्यत: भाषाएँ माना जा सकता है। इसका उदाहरण चीन देश की मंदारिन भाषा है, जिसकी बोलियों के क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत हैं तथा उनमें से बहुत-सी परस्पर अबोधगम्य भी हैं जब तक यूगोस्लाविया एक देश था, तब तक क्रोएशियाई और सर्बियाई को एक भाषा की दो बोलियाँ माना जाता था। यूगोस्लाव के विघटन के बाद से इन्हें भिन्न भाषाएँ माना जाने लगा है। ये उदाहरण इस तथ्य को प्रतिपादित करते हैं कि पारस्परिक बोधगम्यता के सिद्धांत की अपेक्षा कभी-कभी सांस्कृतिक एवं राजनैतिक कारण अधिक निर्णायक भूमिका अदा करते हैं।

हिन्दी भाषा क्षेत्र में भी 'राजस्थानी' एवं 'भोजपुरी' के क्षेत्र एवं उनके बोलने वालों की संख्या संसार की बहुत सी भाषाओं के क्षेत्र एवं बोलने वालों की संख्या से अधिक है। 'हिन्दी भाषा-क्षेत्र' में, सामाजिक-सांस्कृतिक समन्वय के प्रतिमान के रूप में मानक अथवा व्यावहारिक हिन्दी सामाजिक जीवन में परस्पर आश्रित सहसम्बन्धों की स्थापना करती है। सम्पूर्ण हिन्दी भाषा क्षेत्र में मानक अथवा व्यावहारिक हिन्दी के उच्च प्रकार्यात्मक सामाजिक मूल्य के कारण ये भाषिक रूप 'हिन्दी भाषा' के अन्तर्गत माने जाते हैं। इस सम्बंध में आगे विस्तार से चर्चा की जाएगी।

भाषा-क्षेत्र की क्षेत्रगत भिन्नताओं के सम्भावित स्तर–

अभी तक हमने किसी भाषा-क्षेत्र में तीन भाषिक स्तरों की विवेचना की है–

(1) व्यक्ति-बोली
(2) बोली
(3) भाषा

व्यक्ति-बोलियों के समूह को 'बोली' तथा बोलियों के समूह को 'भाषा' कहा गया है, जिस प्रकार किसी भाषा के व्याकरण में शब्द एवं वाक्य के बीच अनेक व्याकरणिक स्तर हो सकते हैं, उसी प्रकार भाषा एवं बोली एवं व्यक्ति-बोली के बीच अनेक भाषा स्तर हो सकते हैं। इन अनेक स्तरों के निम्न में से कोई एक अथवा अनेक आधार हो सकते हैं–

1. भाषा क्षेत्र का विस्तार एवं फैलाव।
2. उस भाषा क्षेत्र के विविध उपक्षेत्रों की भौगोलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक स्थितियाँ।

3. भाषा-क्षेत्र में निवास करने वाले व्यक्तियों के पारस्परिक सामाजिक और भावात्मक सम्बन्ध।

उपभाषा

यदि किसी भाषा में बोलियों की संख्या बहुत अधिक होती है तथा उस भाषा का क्षेत्र बहुत विशाल होता है तो पारस्परिक बोधगम्यता अथवा अन्य भाषेतर कारणों से बोलियों के वर्ग बन जाते हैं। इनको 'उप भाषा' के स्तर के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

उपबोली

यदि एक बोली का क्षेत्र बहुत विशाल होता है तो उसमें क्षेत्रगत अथवा वर्गगत भिन्नताएँ स्पष्ट दिखाई देती हैं। इनको बोली एवं व्यक्ति-बोली के बीच 'उपबोली' का स्तर माना जाता है। उपबोली को कुछ भाषा वैज्ञानिकों ने पेटवा, जनपदीय बोली अथवा स्थान-विशेष की बोली के नाम से पुकारना अधिक संगत माना है।

इसको इस प्रकार भी व्यक्त किया जा सकता है कि किसी भाषा क्षेत्र में भाषा की संरचक उपभाषाएँ, उपभाषा के संरचक बोलियाँ, बोली के संरचक उपबोलियाँ तथा उपबोली के संरचक व्यक्ति बोलियाँ हो सकती हैं। व्यक्ति-बोली से लेकर भाषा तक अनेक वर्गीकृत स्तरों का अधिक्रम हो सकता है।

हिन्दी भाषा-क्षेत्र के क्षेत्रीय भाषिक-रूप

हिन्दी भाषा के संदर्भ में विचारणीय है कि अवधी, बुन्देली, छत्तीसगढ़ी, ब्रज, कन्नौजी, खड़ी बोली को बोलियाँ माने या उपभाषाएँ ?

यहाँ यह द्रष्टव्य है कि इनके क्षेत्र तथा इनके बोलने वालों की संख्या काफी विशाल है तथा इनमें बहुत अधिक भिन्नताएँ हैं, जिनके कारण इनको बोली की अपेक्षा उपभाषा मानना अधिक संगत है। उदाहरण के रूप में यदि बुन्देली को उपभाषा के रूप में स्वीकार किया जाता है तो पंवारी, लोधान्ती, खटोला, भदावरी, सहेरिया तथा 'छिन्दवाड़ा बुन्देली' आदि रूपों को बुन्देली उपभाषा की बोलियाँ माना जा सकता है। इन बोलियों में एक या एक से अधिक बोलियों की अपनी उपबोलियाँ हैं। उदाहरण के रूप में बुन्देली उपभाषा की 'छिन्दवाड़ा बुन्देली' बोली की पोवारी, गाओंली, राघोबंसी,

किरारी आदि उपबोलियाँ हैं। इस प्रकार बुन्देली के संदर्भ में व्यक्तिगत बोली, उपबोली, बोली, एवं उपभाषा रूप प्राप्त हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जिस प्रकार बुन्देली में बोलियाँ एवं उनकी उपबोलियाँ मिलती हैं, उसी प्रकार कन्नौजी की बोलियाँ एवं उनकी उपबोलियाँ अथवा हरियाणवी की बोलियाँ एवं उपबोलियाँ प्राप्त नहीं होती, किन्तु हरियाणवी एवं कन्नौजी को भी वही दर्जा देना पड़ेगा जो हम बुन्देली को देंगे। यदि हम बुन्देली को हिन्दी की एक उपभाषा के रूप में स्वीकार करते हैं तो कन्नौजी एवं हरियाणवी भी हिन्दी की उपभाषाएँ हैं। इस दृष्टि से हिन्दी के क्षेत्रगत रूपों के स्तर वर्गीकरण में कहीं उपभाषा एवं बोली के अलग-अलग स्तर हैं तथा कहीं उपभाषा एवं बोली का एक ही स्तर है। यह बहुत कुछ इसी प्रकार है, जिस प्रकार मिश्र एवं संयुक्त वाक्यों में वाक्य एवं उपवाक्य के स्तर अलग-अलग होते हैं, किन्तु सरल वाक्य में एक ही उपवाक्य होता है।

हिन्दी भाषा के संदर्भ में विचारणीय है कि क्या उपभाषा एवं भाषा के बीच भी कोई स्तर स्थापित किया जाना चाहिए अथवा नहीं।इसका कारण यह है कि जिन भाषा रूपों को हमने उपभाषाएँ कहा है, उन उपभाषाओं को ग्रियर्सन ने भाषा-सर्वेक्षण में ऐतिहासिक सम्बंधों के आधार पर 05 वर्गों में बाँटा है तथा प्रत्येक वर्ग में एकाधिक उपभाषाओं को समाहित किया है। ये पाँच वर्ग निम्नलिखित है–

(1) पश्चिमी हिन्दी
(2) पूर्वी हिन्दी
(3) राजस्थानी
(4) बिहारी
(5) पहाड़ी

इस सम्बंध में लेखक का मत है कि संकालिक भाषावैज्ञानिक दृष्टि से इस प्रकार के वर्गीकरण की आवश्यकता नहीं है, जो विद्वान ग्रियर्सन के ऐतिहासिक भाषाविज्ञान की दृष्टि से इन वर्गों को कोई नाम देना ही चाहते हैं तो वे हिन्दी के सन्दर्भ में उपभाषा एवं भाषा के बीच उपभाषा की समूह गत इकाइयों को अन्य किसी नाम के अभाव में 'उपभाषावर्ग' के नाम से पुकार सकते हैं।

इस प्रकार जिस भाषा का क्षेत्र अपेक्षाकृत छोटा होता है वहाँ भाषा के केवल 3 क्षेत्रगत स्तर होते हैं–

1. व्यक्ति बोली
2. बोली
3. भाषा

हिन्दी जैसे–विस्तृत भाषा-क्षेत्र में निम्नलिखित क्षेत्रगत स्तर हो सकते हैं–

व्यक्ति बोली
उपबोली
बोली
उपभाषा
उपभाषावर्ग
भाषा

जो विद्वान हिन्दी भाषा की कुछ उपभाषाओं को हिन्दी भाषा से भिन्न भाषाएँ मानने के मत एवं विचार प्रस्तुत कर रहे हैं, उनके निराकरण के लिए तथा जिज्ञासु पाठकों के अवलोकनार्थ एवं विचारार्थ निम्न टिप्पणी प्रस्तुत हैं–

'हिन्दी भाषा क्षेत्र' के अन्तर्गत भारत के निम्नलिखित राज्य एवं केन्द्र शासित प्रदेश समाहित हैं–

उत्तर प्रदेश
उत्तराखंड
बिहार
झारखंड
मध्यप्रदेश
छत्तीसगढ़
राजस्थान
हिमाचल प्रदेश
हरियाणा
दिल्ली
चण्डीगढ़।

मैथिली भाषा

मैथिली को अलग भाषा का दर्जा दे दिया गया है हॉलाकि हिन्दी साहित्य के पाठ्यक्रम में अभी भी मैथिली कवि विद्यापति पढ़ाए जाते हैं तथा जब नेपाल में मैथिली आदि भाषिक रूपों के बोलने वाले मधेसी लोगों पर दमनात्मक

कार्रवाई होती है तो वे अपनी पहचान 'हिन्दी भाषी' के रूप में उसी प्रकार करते हैं, जिस प्रकार मुम्बई में रहने वाले भोजपुरी, मगही, मैथिली एवं अवधी आदि बोलने वाले अपनी पहचान 'हिन्दी भाषी' के रूप में करते हैं।

छत्तीसगढ़ी एवं भोजपुरी

जबसे मैथिली एवं छत्तीसगढ़ी को अलग भाषाओं का दर्जा मिला है तब से भोजपुरी को भी अलग भाषा का दर्जा दिए जाने की माँग प्रबल हो गई है। हिन्दी को उसके अपने ही घर में तोड़ने का सिलसिला मैथिली एवं छत्तीसगढ़ी से आरम्भ हो गया है। मैथिली पर टिप्पण लिखा जा चुका है। छत्तीसगढ़ी एवं भोजपुरी के सम्बंध में कुछ विचार प्रस्तुत हैं जब तक छत्तीसगढ़ मध्य प्रदेश का हिस्सा था तब तक छत्तीसगढ़ी को हिन्दी की बोली माना जाता था। रायपुर विश्वविद्यालय के भाषा विज्ञान के प्रोफेसर डॉ. रमेश चन्द्र महरोत्र का सन् 1976 में एक आलेख रायपुर से भाषिकी प्रकाशन से प्रकाशित हुआ जिसमें हिन्दी की 22 बोलियों के अंतर्गत छत्तीसगढ़ी समाहित है।

लेखक भोजपुरी के सम्बंध में भी कुछ निवेदन करना चाहता है। लेखक को जबलपुर के विश्वविद्यालय में डॉ. उदय नारायण तिवारी जी के साथ काम करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। भोजपुरी की भाषिक स्थिति को लेकर अकसर हमारे बीच विचार विमर्श होता था। उनके जामाता डॉ. शिव गोपाल मिश्र उनकी स्मृति में प्रतिवर्ष व्याख्यानमाला आयोजित करते हैं। दिनांक 26 जून, 2013 को मुझे हिन्दुस्तानी एकाडमी, इलाहाबाद के श्री बृजेशचन्द्र का 'डॉ. उदय नारायण तिवारी व्याख्यानमाला' निमंत्रण पत्र प्राप्त हुआ। व्याख्यान का विषय था–'भोजपुरी भाषा'। लेखक ने उसी दिन व्याख्यान के सम्बंध में डॉ. शिव गोपाल मिश्र को जो पत्र लिखा उसका व्याख्यान के विषय से सम्बंधित अंश पाठको के अवलोकनार्थ अविकल प्रस्तुत हैं–

डॉ. उदय नारायण तिवारी जी ने भोजपुरी का भाषावैज्ञानिक अध्ययन किया। उनके अध्ययन का वही महत्व है, जो सुनीति कुमार चटर्जी के बांग्ला पर सम्पन्न कार्य का है। इस विषय पर हमारे बीच अनेक बार संवाद हुए। कई बार मत भिन्नता भी हुई। जब लेखक भाषा–भूगोल एवं बोली–विज्ञान के सिद्धांतों के आलोक में हिन्दी भाषा–क्षेत्र की विवेचना करता था तो डॉ. तिवारी जी इस मत से सहमत हो जाते थे कि हिन्दी भाषा–क्षेत्र के अंतर्गत भारत के जितने राज्य एवं केन्द्र शासित प्रदेश समाहित हैं, उन समस्त क्षेत्रों में जो भाषिक रूप बोले

जाते हैं, उनकी समष्टि का नाम हिन्दी है। खड़ी बोली ही हिन्दी नहीं है अपितु यह भी हिन्दी भाषा-क्षेत्र का उसी प्रकार एक क्षेत्रीय भेद है, जिस प्रकार हिन्दी भाषा-क्षेत्र के अन्य अनेक क्षेत्रीय भेद हैं। मगर कभी-कभी उनका तर्क होता था कि खड़ी बोली बोलने वाले और भोजपुरी बोलने वालों के बीच बोधगम्यता बहुत कम होती है। इस कारण भोजपुरी को यदि अलग भाषा माना जाता है तो इसमें क्या हानि है, जब लेखक कहता था कि भाषाविज्ञान का सिद्धांत है कि संसार की प्रत्येक भाषा के 'भाषा-क्षेत्र' में भाषिक भिन्नताएँ होती हैं। हम ऐसी किसी भाषा की कल्पना नहीं कर सकते जिसके भाषा-क्षेत्र में क्षेत्रगत एवं वर्गगत भिन्नताएँ न हों। इस पर डॉ. तिवारी जी असमंजस में पड़ जाते थे। अनेक वर्षों के संवाद के अनन्तर एक दिन डॉ. तिवारी जी ने मुझे अपने मन के रहस्य से अवगत कराया। उनके शब्द थे:

"जब मैं ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के अपने अध्ययन के आधार पर विचार करता हूँ तो मुझे भोजपुरी की स्थिति हिन्दी से अलग भिन्न भाषा की लगती है मगर जब मैं संकालिक भाषाविज्ञान के सिद्धांतों की दृष्टि से सोचता हूँ तो पाता हूँ कि भोजपुरी भी हिन्दी भाषा-क्षेत्र का एक क्षेत्रीय रूप है"।

बहुत से विद्वान यह तर्क देते हैं कि डॉ. उदय नारायण तिवारी ने 'भोजपुरी भाषा और साहित्य' शीर्षक ग्रंथ में 'भोजपुरी' को भाषा माना है। इस सम्बंध में, लेखक विद्वानों को इस तथ्य से अवगत करना चाहता है कि हिन्दी में प्रकाशित उक्त ग्रंथ उनके डी. लिट्. उपाधि के लिए स्वीकृत अंग्रेजी भाषा में लिखे गए शोध-प्रबंध का हिन्दी रूपांतर है। डॉ. उदय नारायण तिवारी ने कलकत्ता में सन् 1941 ईस्वी में पहले 'तुलनात्मक भाषाविज्ञान' में एम. ए. की परीक्षा पास की तथा सन् 1942 ईस्वी में डी. लिट्. उपाधि के लिए शोध-प्रबंध पूरा करके इलाहाबाद लौट आए तथा उसे परीक्षण के लिए इलाहाबाद विश्वविद्यालय में जमा कर दिया। आपने अपना शोध-प्रबंध अंग्रेजी भाषा में डॉ. सुनीति कुमार चाटुर्ज्या के निर्देशन में सम्पन्न किया तथा डी. लिट्. की उपाधि प्राप्त होने के बाद इसका प्रकाशन 'एशियाटिक सोसाइटी' से हुआ। इस शोध-प्रबंध का शीर्षक है-'ए डाइलेक्ट ऑफ भोजपुरी'। डॉ. उदय नारायण तिवारी ने इस तथ्य को स्वयं अपने एक लेख अभिव्यक्त किया है।

राजस्थानी

"श्रीमद्जवाहराचार्य स्मृति व्याख्यानमाला" के अन्तर्गत "विश्व शान्ति एवं अहिंसा" विषय पर व्याख्यान देने सन् 1987 ईस्वी में लेखक का कलकत्ता

(कोलकोता) जाना हुआ था। वहाँ श्री सरदारमल जी कांकरिया के निवास पर लेखक का संवाद राजस्थानी भाषा की मान्यता के लिए आन्दोलन चलाने वाले तथा राजस्थानी में "धरती धौरां री" एवं "पातल और पीथल" जैसी कृतियों की रचना करने वाले कन्हैया लाल सेठिया जी से हुआ। उनका आग्रह था कि राजस्थानी को स्वतंत्र भाषा का दर्जा मिलना चाहिए। लेखक ने उनसे अपने आग्रह पर पुनर्विचार करने की कामना व्यक्त की और मुख्यत: निम्न मुद्दों पर विचार करने का अनुरोध किया–

(1) ग्रियर्सन ने ऐतिहासिक दृष्टि से विचार किया है। स्वाधीनता आन्दोलन में हमारे राष्ट्रीय नेताओं के कारण हिन्दी का जितना प्रचार प्रसार हुआ उसके कारण हमें ग्रियर्सन की दृष्टि से नहीं अपितु डॉ. धीरेन्द्र वर्मा आदि भाषाविदों की दृष्टि से विचार करना चाहिए।

(2) राजस्थानी भाषा जैसी कोई स्वतंत्र भाषा नहीं है। राजस्थान में निम्न क्षेत्रीय भाषिक-रूप बोले जाते हैं–

i. मारवाड़ी
ii. मेवाती
iii. जयपुरी
iv. मालवी (राजस्थान के साथ-साथ मध्य-प्रदेश में भी)

राजस्थानी जैसी स्वतंत्र भाषा नहीं है। इन विविध भाषिक रूपों को हिन्दी के रूप मानने में क्या आपत्ति हो सकती है।

(3) यदि आप राजस्थानी का मतलब केवल मारवाड़ी से लेंगे तो क्या मेवाती, जयपुरी, मालवी, हाड़ौती, शेखावाटी आदि अन्य भाषिक रूपों के बोलने वाले अपने अपने भाषिक रूपों के लिए आवाज नहीं उठायेंगे।

(4) भारत की भाषिक परम्परा रही है कि एक भाषा के हजारों भूरि भेद माने गए हैं मगर अंतरक्षेत्रीय सम्पर्क के लिए एक भाषा की मान्यता रही है।

(5) हिन्दी साहित्य की संश्लिष्ट परम्परा रही है। इसी कारण हिन्दी साहित्य के अंतर्गत रास एवं रासो साहित्य की रचनाओं का भी अध्ययन किया जाता है।

(6) राजस्थान की पृष्ठभूमि पर आधारित हिन्दी कथा साहित्य एवं हिन्दी फिल्मों में जिस राजस्थानी मिश्रित हिन्दी का प्रयोग होता है, उसे हिन्दी भाषा क्षेत्र के प्रत्येक भाग का रहने वाला समझ लेता है।

(7) मारवाड़ी लोग व्यापार के कारण भारत के प्रत्येक राज्य में निवास करते हैं तथा अपनी पहचान हिन्दी भाषी के रूप में करते हैं। यदि आप राजस्थानी को हिन्दी से अलग मान्यता दिलाने का प्रयास करेंगे तो राजस्थान के बाहर रहने वाले मारवाड़ी व्यापारियों के हित प्रभावित हो सकते हैं।

(8) भारतीय भाषाओं के अस्तित्त्व एवं महत्व को अंग्रेजी से खतरा है। संसार में अंग्रेजी भाषियों की जितनी संख्या है, उससे अधिक संख्या केवल हिन्दी भाषियों की है। यदि हिन्दी के उपभाषिक रूपों को हिन्दी से अलग मान लिया जाएगा तो भारत की कोई भाषा अंग्रेजी से टक्कर नहीं ले सकेगी और धीरे-धीरे भारतीय भाषाओं के अस्तित्त्व का संकट पैदा हो जाएगा।10

पहाड़ी

डॉ. सर जॉर्ज ग्रियर्सन ने 'पहाड़ी' समुदाय के अन्तर्गत बोले जाने वाले भाषिक रूपों को तीन शाखाओं में बाँटा–

(अ) पूर्वी पहाड़ी अथवा नेपाली।

(आ) मध्य या केन्द्रीय पहाड़ी।

(इ) पश्चिमी पहाड़ी।

हिन्दी भाषा के संदर्भ में वर्तमान स्थिति यह है कि हिन्दी भाषा के अन्तर्गत मध्य या केन्द्रीय पहाड़ी की उत्तराखंड में बोली जाने वाली 1. कूमाऊँनी 2. गढ़वाली तथा पश्चिमी पहाड़ी की हिमाचल प्रदेश में बोली जाने वाली हिन्दी की अनेक बोलियाँ हैं, जिन्हें आम बोलचाल में ' पहाड़ी ' नाम से पुकारा जाता है।

हिन्दी भाषा के संदर्भ में विचारणीय है कि अवधी, बुन्देली, ब्रज, भोजपुरी, मैथिली आदि को हिन्दी भाषा की बोलियाँ माना जाए अथवा उपभाषाएँ माना जाए। सामान्य रूप से इन्हें बोलियों के नाम से अभिहित किया जाता है, किन्तु लेखक ने अपने ग्रन्थ ' भाषा एवं भाषाविज्ञान' में इन्हें उपभाषा मानने का प्रस्ताव किया है। '-- क्षेत्र, बोलने वालों की संख्या तथा परस्पर भिन्नताओं के कारण इनको बोली की अपेक्षा उपभाषा मानना अधिक संगत है। इसी ग्रन्थ में लेखक ने पाठकों का ध्यान इस ओर भी आकर्षित किया कि हिन्दी की कुछ उपभाषाओं के भी क्षेत्रगत भेद हैं, जिन्हें उन उपभाषाओं की बोलियों अथवा उपबोलियों के नाम से पुकारा जा सकता है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि इन उपभाषाओं के बीच कोई स्पष्ट विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती है। प्रत्येक दो उपभाषाओं के मध्य संक्रमण क्षेत्र विद्यमान है।

विश्व की प्रत्येक भाषा के विविध बोली अथवा उपभाषा क्षेत्रों में से विभिन्न सांस्कृतिक कारणों से जब कोई एक क्षेत्र अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है तो उस क्षेत्र के भाषा रूप का सम्पूर्ण भाषा क्षेत्र में प्रसारण होने लगता है। इस क्षेत्र के भाषा रूप के आधार पर पूरे भाषा क्षेत्र की 'मानक भाषा' का विकास होना आरम्भ हो जाता है। भाषा के प्रत्येक क्षेत्र के निवासी इस भाषारूप को 'मानक भाषा' मानने लगते हैं। इसको मानक मानने के कारण यह मानक भाषा रूप 'भाषा क्षेत्र' के लिए सांस्कृतिक मूल्यों का प्रतीक बन जाता है। मानक भाषा रूप की शब्दावली, व्याकरण एवं उच्चारण का स्वरूप अधिक निश्चित एवं स्थिर होता है एवं इसका प्रचार, प्रसार एवं विस्तार पूरे भाषा क्षेत्र में होने लगता है। कलात्मक एवं सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का माध्यम एवं शिक्षा का माध्यम यही मानक भाषा रूप हो जाता है।

इस प्रकार भाषा के 'मानक भाषा रूप' का आधार उस भाषा क्षेत्र की क्षेत्रीय बोली अथवा उप भाषा ही होती है, किन्तु मानक भाषा होने के कारण चूँकि इसका प्रसार अन्य बोली क्षेत्रों अथवा उप भाषा क्षेत्रों में होता है इस कारण इस भाषा रूप पर 'भाषा क्षेत्र' की सभी बोलियों का प्रभाव पड़ता है तथा यह भी सभी बोलियों अथवा उपभाषाओं को प्रभावित करता है। उस भाषा क्षेत्र के शिक्षित व्यक्ति औपचारिक अवसरों पर इसका प्रयोग करते हैं। भाषा के मानक भाषा रूप को सामान्य व्यक्ति अपने भाषा क्षेत्र की 'मूल भाषा', केन्द्रक भाषा', 'मानक भाषा' के नाम से पुकारते हैं। यदि किसी भाषा का क्षेत्र हिन्दी भाषा की तरह विस्तृत होता है तथा यदि उसमें 'हिन्दी भाषा क्षेत्र' की भाँति उपभाषाओं एवं बोलियों की अनेक परतें एवं स्तर होते हैं तो 'मानक भाषा' के द्वारा समस्त भाषा क्षेत्र में विचारों का आदान प्रदान सम्भव हो पाता है। भाषा क्षेत्र के यदि आंशिक अबोधगम्य उपभाषी अथवा बोली बोलने वाले परस्पर अपनी उपभाषा अथवा बोली के माध्यम से विचारों का समुचित आदान-प्रदान नहीं कर पाते तो इसी मानक भाषा के द्वारा संप्रेषण करते हैं। भाषा विज्ञान में इस प्रकार की बोधगम्यता को 'पारस्परिक बोधगम्यता' न कहकर 'एकतरफा बोधगम्यता' कहते हैं। ऐसी स्थिति में अपने क्षेत्र के व्यक्ति से क्षेत्रीय बोली में बातें होती हैं, किन्तु दूसरे उप भाषा क्षेत्र अथवा बोली क्षेत्र के व्यक्ति से अथवा औपचारिक अवसरों

पर मानक भाषा के द्वारा बातचीत होती हैं। इस प्रकार की भाषिक स्थिति को फर्गुसन् ने बोलियों की परत पर मानक भाषा का अध्यारोपण कहा है। गम्पर्ज ने इसे 'बाइलेक्टल' के नाम से पुकारा है।

हिन्दी भाषा क्षेत्र में अनेक क्षेत्रगत भेद एवं उपभेद तो है ही, प्रत्येक क्षेत्र के प्राय: प्रत्येक गाँव में सामाजिक भाषिक रूपों के विविध स्तरीकृत तथा जटिल स्तर विद्यमान हैं और यह हिन्दी भाषा-क्षेत्र के सामाजिक संप्रेषण का यथार्थ है, जिसको जाने बिना कोई व्यक्ति हिन्दी भाषा के क्षेत्र की विवेचना के साथ न्याय नहीं कर सकता। ये हिन्दी पट्टी के अन्दर सामाजिक संप्रेषण के विभिन्न नेटवर्कों के बीच संवाद के कारक हैं। इस हिन्दी भाषा क्षेत्र अथवा पट्टी के गावों के रहनेवालों के वाग्व्यवहारों का गहराई से अध्ययन करने पर पता चलता है कि ये भाषिक स्थितियाँ इतनी विविध, विभिन्न एवं मिश्र हैं कि भाषा व्यवहार के स्केल के एक छोर पर हमें ऐसा व्यक्ति मिलता है, जो केवल स्थानीय बोली बोलना जानता है तथा जिसकी बातचीत में स्थानीयेतर कोई प्रभाव दिखाई नहीं पड़ता वहीं दूसरे छोर पर हमें ऐसा व्यक्ति मिलता है, जो ठेठ मानक हिन्दी का प्रयोग करता है तथा जिसकी बातचीत में कोई स्थानीय भाषिक प्रभाव परिलक्षित नहीं होता। स्केल के इन दो दूरतम छोरों के बीच बोलचाल के इतने विविध रूप मिल जाते हैं कि उन सबका लेखा-जोखा प्रस्तुत करना असाध्य हो जाता है। हमें ऐसे भी व्यक्ति मिल जाते हैं, जो एकाधिक भाषिक रूपों में दक्ष होते हैं, जिसका व्यवहार तथा चयन वे संदर्भ, व्यक्ति, परिस्थियों को ध्यान में रखकर करते हैं। सामान्य रूप से हम पाते हैं कि अपने घर के लोगों से तथा स्थानीय रोजाना मिलने जुलने वाले घनिष्ठ मित्रों से व्यक्ति जिस भाषा रूप में बातचीत करता है, उससे भिन्न भाषा रूप का प्रयोग वह उनसे भिन्न व्यक्तियों एवं परिस्थितियों में करता है। सामाजिक संप्रेषण के अपने प्रतिमान हैं। व्यक्ति प्राय: वाग्व्यवहारों के अवसरानुकूल प्रतिमानों को ध्यान में रखकर बातचीत करता है।

हम यह कह चुके हैं कि किसी भाषा क्षेत्र की मानक भाषा का आधार कोई बोली अथवा उप भाषा ही होती है, किन्तु कालान्तर में उक्त बोली एवं मानक भाषा के स्वरूप में पर्याप्त अन्तर आ जाता है। सम्पूर्ण भाषा क्षेत्र के शिष्ट एवं शिक्षित व्यक्तियों द्वारा औपचारिक अवसरों पर मानक भाषा का प्रयोग किए जाने के कारण तथा साहित्य का माध्यम बन जाने के कारण स्वरूपगत परिवर्तन स्वाभाविक है। प्रत्येक भाषा क्षेत्र में किसी क्षेत्र विशेष के भाषिक रूप के आधार पर उस भाषा का मानक रूप विकसित होता है,

जिसका उस भाषा-क्षेत्र के सभी क्षेत्रों के पढ़े-लिखे व्यक्ति औपचारिक अवसरों पर प्रयोग करते हैं। हम पाते हैं कि इस मानक हिन्दी अथवा व्यावहारिक हिन्दी का प्रयोग सम्पूर्ण हिन्दी भाषा क्षेत्र में बढ़ रहा है तथा प्रत्येक हिन्दी भाषी व्यक्ति शिक्षित, सामाजिक दृष्टि से प्रतिष्ठित तथा स्थानीय क्षेत्र से इतर अन्य क्षेत्रों के व्यक्तियों से वार्तालाप करने के लिए इसी को आदर्श, श्रेष्ठ एवं मानक मानता है। गाँव में रहने वाला एक सामान्य एवं बिना पढ़ा लिखा व्यक्ति भले ही इसका प्रयोग करने में समर्थ तथा सक्षम न हो फिर भी वह इसके प्रकार्यात्मक मूल्य को पहचानता है तथा वह भी अपने भाषिक रूप को इसके अनुरूप ढालने की जुगाड़ करता रहता है, जो मजदूर शहर में काम करने आते हैं, वे किस प्रकार अपने भाषा रूप को बदलने का प्रयास करते हैं-इसको देखा परखा जा सकता है।

सन् 1960 में लेखक ने बुलन्द शहर एवं खुर्जा तहसीलों (ब्रज एवं खड़ी बोली का संक्रमण क्षेत्र) के भाषिक रूपों का संकालिक अथवा एककालिक भाषा वैज्ञानिक अध्ययन करना आरम्भ किया।14 सामग्री संकलन के लिए जब लेखक गाँवों में जाता था तथा वहाँ रहने वालों से बातचीत करता था, तबके उनके भाषिक रूपों एवं आज लगभग 55 वर्षों के बाद के भाषिक रूपों में बहुत अन्तर आ गया है। अब इनके भाषिक-रूपों पर मानक हिन्दी अथवा व्यावहारिक हिन्दी का प्रभाव आसानी से पहचाना जा सकता है। इनके भाषिक-रूपों में अंग्रेजी शब्दों का चलन भी बढ़ा है। यह कहना अप्रासंगिक होगा कि उनकी जिन्दगी में और व्यवहार में भी बहुत बदलाव आया है।

मानक हिन्दी अथवा व्यावहारिक हिन्दी का सम्पूर्ण हिन्दी भाषा क्षेत्र में व्यवहार होने तथा इसके प्रकार्यात्मक प्रचार-प्रसार के कारण, यह हिन्दी भाषा-क्षेत्र में प्रयुक्त समस्त भाषिक रूपों के बीच संपर्क सेतु की भूमिका का निर्वाह कर रहा है।

हिन्दी भाषा का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। इस कारण इसकी क्षेत्रगत भिन्नताएँ भी बहुत अधिक हैं।'खड़ी बोली' हिन्दी भाषा क्षेत्र का उसी प्रकार एक भेद है ये जिस प्रकार हिन्दी भाषा के अन्य बहुत से क्षेत्रगत भेद हैं। हिन्दी भाषा क्षेत्र में ऐसी बहुत सी उपभाषाएँ हैं, जिनमें पारस्परिक बोधगम्यता का प्रतिशत बहुत कम है, किन्तु ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से सम्पूर्ण भाषा क्षेत्र एक भाषिक इकाई है तथा इस भाषा-भाषी क्षेत्र के बहुमत भाषा-भाषी अपने-अपने क्षेत्रगत भेदों को हिन्दी भाषा के रूप में मानते एवं स्वीकारते आए हैं। कुछ विद्वानों ने

इस भाषा क्षेत्र को 'हिन्दी पट्टी' के नाम से पुकारा है तथा कुछ ने इस हिन्दी भाषी क्षेत्र के निवासियों के लिए 'हिन्दी जाति' का अभिधान दिया है।

वस्तु स्थिति यह है कि हिन्दी, चीनी एवं रूसी जैसी भाषाओं के क्षेत्रगत प्रभेदों की विवेचना यूरोप की भाषाओं के आधार पर विकसित पाश्चात्य भाषा विज्ञान के प्रतिमानों के आधार पर नहीं की जा सकती।

जिस प्रकार अपने 29 राज्यों एवं 07 केन्द्र शासित प्रदेशों को मिलाकर भारतदेश है, उसी प्रकार भारत के जिन राज्यों एवं शासित प्रदेशों को मिलाकर हिन्दी भाषा क्षेत्र है, उस हिन्दी भाषा-क्षेत्र के अन्तर्गत जितने भाषिक रूप बोले जाते हैं, उनकी समाष्टि का नाम हिन्दी भाषा है। हिन्दी भाषा क्षेत्र के प्रत्येक भाग में व्यक्ति स्थानीय स्तर पर क्षेत्रीय भाषा रूप में बात करता है। औपचारिक अवसरों पर तथा अन्तर-क्षेत्रीय, राष्ट्रीय एवं सार्वदेशिक स्तरों पर भाषा के मानक रूप अथवा व्यावहारिक हिन्दी का प्रयोग होता है। आप विचार करें कि उत्तर प्रदेश हिन्दी भाषी राज्य है अथवा खड़ी बोली, ब्रजभाषा, कन्नौजी, अवधी, बुन्देली आदि भाषाओं का राज्य है। इसी प्रकार मध्य प्रदेश हिन्दी भाषी राज्य है अथवा बुन्देली, बघेली, मालवी, निमाड़ी आदि भाषाओं का राज्य है, जब संयुक्त राज्य अमेरिका की बात करते हैं तब संयुक्त राज्य अमेरिका के अन्तर्गत जितने राज्य हैं, उन सबकी समष्टि का नाम ही तो संयुक्त राज्य अमेरिका है। विदेश सेवा में कार्यरत अधिकारी जानते हैं कि कभी देश के नाम से तथा कभी उस देश की राजधानी के नाम से देश की चर्चा होती है। वे ये भी जानते हैं कि देश की राजधानी के नाम से देश की चर्चा भले ही होती है, मगर राजधानी ही देश नहीं होता। इसी प्रकार किसी भाषा के मानक रूप के आधार पर उस भाषा की पहचान की जाती है मगर मानक भाषा, भाषा का एक रूप होता है : मानक भाषा ही भाषा नहीं होती। इसी प्रकार खड़ी बोली के आधार पर मानक हिन्दी का विकास अवश्य हुआ है, किन्तु खड़ी बोली ही हिन्दी नहीं है। तत्वत: हिन्दी भाषा क्षेत्र के अन्तर्गत जितने भाषिक रूप बोले जाते हैं, उन सबकी समष्टि का नाम हिन्दी है। हिन्दी को उसके अपने ही घर में तोड़ने के षडयंत्र को विफल करने की आवश्कता है तथा इस तथ्य को बलपूर्वक रेखांकित, प्रचारित एवं प्रसारित करने की आवश्यकता है कि सन् 1991 की भारतीय जनगणना के अन्तर्गत भारतीय भाषाओं के विश्लेषण का जो ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है, उसमें मातृभाषा के रूप में हिन्दी को स्वीकार करने वालों की संख्या का प्रतिशत उत्तर प्रदेश (उत्तराखंड राज्य सहित) में 90.11, बिहार (झारखण्ड राज्य सहित) में 80.86, मध्य प्रदेश

(छत्तीसगढ़ राज्य सहित) में 85.55, राजस्थान में 89.56, हिमाचल प्रदेश में 88.88, हरियाणा में 91.00, दिल्ली में 81.64, तथा चण्डीगढ़ में 61.06 है।

हिन्दी भाषा-क्षेत्र एवं मंदारिन भाषा-क्षेत्र

जिस प्रकार चीन में मंदारिन भाषा की स्थिति है, उसी प्रकार भारत में हिन्दी भाषा की स्थिति है, जिस प्रकार हिन्दी भाषा-क्षेत्र में विविध क्षेत्रीय भाषिक रूप बोले जाते हैं, वैसे ही मंदारिन भाषा-क्षेत्र में विविध क्षेत्रीय भाषिक-रूप बोले जाते हैं। हिन्दी भाषा-क्षेत्र के दो चरम छोर पर बोले जाने वाले क्षेत्रीय भाषिक रूपों के बोलने वालों के बीच पारस्परिक बोधगम्यता का प्रतिशत बहुत कम है। मगर मंदारिन भाषा के दो चरम छोर पर बोले जाने वाले क्षेत्रीय भाषिक रूपों के बोलने वालों के बीच पारस्परिक बोधगम्यता बिल्कुल नहीं है। उदाहरण के लिए मंदारिन के एक छोर पर बोली जाने वाली हार्बिन और मंदारिन के दूसरे छोर पर बोली जाने वाली शिआनीज के वक्ता एक दूसरे से संवाद करने में सक्षम नहीं हो पाते। उनमें पारस्परिक बोधगम्यता का अभाव है। वे आपस में मंदारिन के मानक भाषा रूप के माध्यम से बातचीत कर पाते हैं। मंदारिन के इस क्षेत्रीय भाषिक रूपों को लेकर वहाँ कोई विवाद नहीं है। पाश्चात्य भाषावैज्ञानिक मंदारिन को लेकर कभी विवाद पैदा करने का साहस नहीं कर पाते। मंदारिन की अपेक्षा हिन्दी के भाषा-क्षेत्र में बोले जाने वाले भाषिक-रूपों में पारस्परिक बोधगम्यता का प्रतिशत अधिक है। यही नहीं सम्पूर्ण हिन्दी भाषा-क्षेत्र में पारस्परिक बोधगम्यता का सातत्य मिलता है। इसका अभिप्राय यह है कि यदि हम हिन्दी भाषा-क्षेत्र में एक छोर से दूसरे छोर तक यात्रा करे तो निकटवर्ती क्षेत्रीय भाषिक-रूपों में बोधगम्यता का सातत्य मिलता है।

हिन्दी भाषा-क्षेत्र के दो चरम छोर के क्षेत्रीय भाषिक-रूपों के वक्ताओं को अपने अपने क्षेत्रीय भाषिक-रूपों के माध्यम से संवाद करने में कठिनाई होती है। कठिनाई तो होती है मगर इसके बावजूद वे परस्पर संवाद कर पाते हैं। यह स्थिति मंदारिन से अलग है, जिसके चरम छोर के क्षेत्रीय भाषिक-रूपों के वक्ता अपने अपने क्षेत्रीय भाषिक-रूपों के माध्यम से कोई संवाद नहीं कर पाते। मंदारिन के एक छोर पर बोली जाने वाली हार्बिन और मंदारिन के दूसरे छोर पर बोली जाने वाली शिआनीज के वक्ता एक दूसरे से संवाद करने में सक्षम नहीं हैं, मगर हिन्दी के एक छोर पर बोली जाने वाली भोजपुरी और मैथिली तथा दूसरे

छोर पर बोली जाने वाली मारवाड़ी के वक्ता एक दूसरे के अभिप्राय को किसी न किसी मात्रा में समझ लेते हैं।

यदि चीन में मंदारिन भाषा-क्षेत्र के समस्त क्षेत्रीय भाषिक-रूप मंदारिन भाषा के ही अंतर्गत स्वीकृत है तो उपर्युक्त विवेचन के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी भाषा-क्षेत्र के अन्तर्गत समाविष्ट क्षेत्रीय भाषिक-रूपों को भिन्न-भिन्न भाषाएँ मानने का विचार नितान्त अतार्किक और अवैज्ञानिक है। लेखक का स्पष्ट एवं निर्भ्रांत मत है कि हिन्दी को उसके अपने ही घर में तोड़ने के षड़यंत्रों को बेनकाब करने और उनको निर्मूल करने की आवश्यकता असंदिग्ध है। हिन्दी देश को जोड़ने वाली भाषा है। उसे उसके ही घर में तोड़ने का अपराध किसी को नहीं करना चाहिए।

हिन्दी भाषा का स्वरूप एवं विकास दशा और दिशा

हिन्दी भाषा को राष्ट्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय भूमिकाओं के निर्वहण के लिए विकसित करने की जरूरत है। इसके लिए भाषा की प्रकृति एवं स्वरूप के परिप्रेक्ष्य में विकास के प्रतिमानों का निर्धारण जरूरी है। आधुनिक भाषाविज्ञान के परिप्रेक्ष्य में ये प्रतिमान निम्न हैं–

(1) भाषा के ऐतिहासिक स्वरूप की अपेक्षा एककालिक अथवा संकालिक स्तर पर उस भाषा समाज के पढ़े लिखे लोगों के द्वारा बोली जाने वाली मानक भाषा के स्वरूप एवं प्रकृति को महत्व दिया जाना चाहिए। इस दृष्टि से भारतीय वैयाकरणों ने काल विशेष की भाषा के पढ़े लिखे लोगों के द्वारा बोले जाने वाले भाषा-रूप को महत्व दिया। पणिनी के समय में वैदिक भाषा का आदर होता था। उसे सम्माननीय माना जाता था। मगर पाणिनी ने अपने व्याकरण के नियमों का निर्धारण करने के लिए वैदिक भाषा को आधार नहीं बनाया। पाणिनी ने उदीच्य भाग के गुरुकुलों में उनके समय में बोली जाने वाली लौकिक संस्कृत को प्रमाण मानकर अपने ग्रंथ में संस्कृत व्याकरण के नियमों का निर्धारण किया।

(2) भाषा की प्रकृति बदलना है। "भाखा बहता नीर' है। नदी की प्रकृति गतिमान होना है। भाषा की प्रकृति प्रवाहशील होना है है।संस्कृति में परिवर्तन होता है, हमारी सोच तथा हमारी आवश्कताएँ परिवर्तित होती हैं, उसी अनुपात में शब्दावली में परिवर्तन होता रहता है।

(3) कोई भी जीवंत एवं प्राणवान भाषा 'अछूत' नहीं होती। कोई भी जीवंत एवं प्राणवान भाषा अपने को शुद्ध एवं निखालिस बनाने के व्यामोह में अपने घर के दरवाजों एवं खिड़कियों को बंद नहीं करती। यदि किसी भाषा को शुद्धता की जंजीरों से जकड़ दिया जाएगा, निखालिस की लक्ष्मण रेखा से बाँध दिया जाएगा तो वह धीरे-धीरे सड़ जाएगी और फिर मर जाएगी।

(4) राजतंत्रात्मक शासन व्यवस्था में राजा महाराजाओं द्वारा बोली जाने वाली भाषा को महत्व दिया जाता है। लोकतंत्रात्मक शासन व्यवस्था में आम आदमी के द्वारा बोली जाने वाली जन-प्रचलित-भाषा को महत्व दिया जाना चाहिए। बोलचाल की सहज, रवानीदार एवं प्रवाहशील भाषा पाषाण खंडों में ठहरे हुए गंदले पानी की तरह नहीं होती। पाषाण खंडों के ऊपर से बहती हुई अजस्र धारा की तरह होती है।

(5) प्रत्येक भाषा की प्रकृति अलग होती है। प्रत्येक भाषा की अपनी व्यवस्था और संरचना होती है। 'भिन्नत्वं हि प्रकृतिः'। भाषा की पद रचना एवं वाक्य रचना की प्रकृति के अनुरूप भाषा का प्रयोग होना चाहिए।

उपर्युक्त प्रतिमानों के अनुरूप, हिन्दी भाषा के विकास के सम्बंध में लेखक के दो लेख प्रवक्ता डॉट कॉम पर प्रकाशित हुए हैं, जिनमें लेखक ने हिन्दी भाषा के स्वरूप, प्रगति एवं विकास से सम्बंधित सभी पहलुओं की विस्तार से चर्चा की है।17 उपर्युक्त संदर्भित लेखों में से लेखक का जो लेख 12 जून, 2014 को प्रकाशित हुआ, उस पर अनेक विद्वानों की प्रतिक्रियाएँ प्रकाशित हुई। प्रस्तुत लेख में लेखक सबसे पहले उन सभी प्रकाशित प्रतिक्रियाओं के संदर्भ में, हिन्दी भाषा-विकास के सम्बंध में पुनः अपने विचारों को विद्वानों के विचारार्थ व्यक्त करना चाहता है। लेख पर जिन विद्वानों ने प्रतिक्रियाएँ व्यक्त कीं, उन सबके प्रति लेखक यथायोग्य स्नेह, आदर, अत्मीय भाव व्यक्त करता है। हम सबका एक ही लक्ष्य है-हिन्दी का विकास हो। हम सबके रास्ते अलग हो सकते हैं। हम सबकी सोच भिन्न हो सकती है। लेखक ने अपने अब तक के पूरे जीवन में हिन्दी की प्रगति और विकास के लिए काम किया है। लेख पर प्रतिक्रिया देने वाले विद्वानों ने भी यही किया है। इस दृष्टि से हम सब एक ही पथ के पथिक हैं। लेखक स्थानाभाव के कारण सबके अलग अलग बिन्दुवार उत्तर नहीं देना चाहता। वह भाषा विकास और लेख पर प्राप्त टिप्पणों के बारे में अपने चिंतन के कुछ विचार सूत्र पाठकों के विचार के लिए प्रस्तुत कर रहा है–

भारतीय संस्कृति का स्वरूप एवं भाषा-प्रयोग

भारत में भाषाओं, प्रजातियों, धर्मों, सांस्कृतिक परम्पराओं एवं भौगोलिक स्थितियों का असाधारण एवं अद्वितीय वैविध्य विद्यमान है। मेरे दिमाग में दिनकर की पंक्तियाँ गूँजती रही हैं कि भारतीय संस्कृति समुद्र की तरह है, जिसमें अनेक धाराएँ आकर विलीन होती रही हैं। कुछ विद्वान आगत धाराओं को गंदे नालों के रूप में देखते हैं। इस सम्बंध में लेखक का विचार अलग है। उन समस्त आगत धाराओं को जिनको कुछ विद्वान गंदे नालों एवं मल' के रूप में देखते हैं, उनको लेखक 'ऐसे मले की श्रेणी में नहीं रखना चाहता जो हमारी भाषा, धर्म, एवं संस्कृति रूपी गंगा को गंदा नाला' बनाते हैं। आगत धाराएँ हमारी गंगा की मूल स्रोत भागीरथी में आकर मिलने वाली अलकनंदा, धौली गंगा, अलकनन्दा, पिंडर और मंदाकिनी धाराओं की श्रेणी में आती हैं। भाषा के मामले में, लेखक की सोच है कि हिन्दी समाज के प्रयोक्ता जिस बोलचाल की सहज, रवानीदार एवं प्रवाहशील भाषा का प्रयोग करते हैं, उनमें प्रयुक्त होने वाले समस्त शब्दों को स्वीकार कर लेना चाहिए। इसी परिप्रेक्ष्य में लेखक का विचार है कि हम अपने रोजाना के व्यवहार में अंग्रेजी के जिन शब्दों का धड़ल्ले से प्रयोग करते हैं, उनको अपनाने पर आपत्ति नहीं होनी चाहिए। अंग्रेजी के जिन शब्दों को हिन्दी के अखबारों एवं टी. वी. चैनलों ने अपना लिया है तथा जो जनजीवन एवं लोक में प्रचलित हो गए हैं, उनको अपना लेना चाहिए।

प्रजातंत्र एवं लोकतंत्र में हिन्दी भाषा का स्वरूप

लेखक ने अपने लेख में लिखा था कि "प्रजातंत्र में शुद्ध हिन्दी, क्लिष्ट हिन्दी, संस्कृत गर्भित हिन्दी जबरन नहीं चलाई जानी चाहिए"। एक विद्वान ने टिप्पण किया–"प्रजातंत्र में शुद्ध हिन्दी, क्लिष्ट हिन्दी, संस्कृत गर्भित हिन्दी जबरन नहीं चलाई जानी चाहिए -लेखक महोदय ने ऐसा लिखा, परन्तु क्या अशुद्ध फारसी-अरबी-अंग्रेजी गर्भित-भाषा लिखनी चाहिये- यह कौन सी, कहाँ की और कैसी विचित्र परिभाषा है प्रजातन्त्र की"। एक दूसरे विद्वान का टिप्पण थारू " संस्कृताधारित शब्द अपना पूरा परिवार लेकर भाषा में प्रवेश करता है, अंग्रेजी अकेला आता है, उर्दू भी अकेला आता है। नया गढ़ा हुआ, संस्कृत शब्द भी प्रचलित होने पर सरल लगने लगता है। भाषा बदलती है, स्वीकार करता हूँ। पर उसे सुसंस्कृत भी की जा सकती है और विकृत भी। संस्कृत रचित शब्द सहज स्वीकृत होकर कुछ काल के पश्चात रूढ़ हो जाएंगे। अंग्रेजी के शब्द जब

हिंदी में प्रायोजित होते हैं, तो लुढ़कते लुढ़कते चलते हैं। उनमें बहाव का अनुभव नहीं होता।और कौनसा स्वीकार करना, कौनसा नहीं, इसका क्या निकष? आज प्रदूषित हिंदी को उसी के प्रदूषित शब्दों द्वारा विचार और प्रयोग करके शुद्ध करना है, जैसे–रक्त का क्षयरोग उसी रक्त को शुद्ध कर किया जाता है"।18 लेखक का इन विद्वानों से निवेदन है कि वे संदर्भ को ध्यान में रखकर "शुद्ध" शब्द का अभिधेयार्थ नहीं, अपितु व्यंग्यार्थ ग्रहण करने की अनुकंपा करें। प्रजातंत्र में और जबरन चलाने पर विशेष ध्यान देंगे तो शब्द प्रयोग का व्यंग्यार्थ स्वत: स्पष्ट हो जाएगा।

नाम रखने अथवा नामकरण तथा जन प्रचलित शब्द के स्थान पर नया शब्द बनाने अथवा 'गढ़ने' में अन्तर।

भारत सरकार के वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग के द्वारा शब्द निर्माण पर लेखक ने अपने लेख में निम्न टिप्पण किया था–

"उन्होंने जन-प्रचलित शब्दों को अपनाने के स्थान पर संस्कृत का सहारा लेकर शब्द गढ़े। शब्द बनाए नहीं जाते। गढ़े नहीं जाते। लोक के प्रचलन एवं व्यवहार से विकसित होते हैं।" इस पर एक विद्वान ने जो प्रतिक्रिया व्यक्त की वह नीचे उद्धृत है–

(क) "जन प्रचलित"–यह जन कोई एक व्यक्ति नहीं है और अनेक व्यक्ति यदि प्रचलित करते हैं, तो, क्या वे एक ही शब्द जो सर्वमान्य हो, ऐसा शब्द प्रचलित कर सकते हैं?

और प्रचलित कैसे करेंगे? जब प्रत्येक का अलग शब्द होगा, तो, अराजकता नहीं जन्मेगी? और यदि ऐसा होता है, तो वैचारिक संप्रेषण कैसे किया जाए?

(ख) शब्द बनाए नहीं जाते। गढ़े नहीं जाते?"।

इस लेख में, लेखक विद्वान महोदय की उपर्युक्त आपत्तियों का निराकरण करना चाहता है–

किसी व्यक्ति, स्थान, वस्तु का 'नाम रखने अथवा नामकरण करने' तथा जन प्रचलित शब्द के स्थान पर नया शब्द 'बनाने अथवा 'गढ़ने में अन्तर है। ये भिन्न 'विचारों' के वाचक हैं, भिन्न 'संकल्पनाओं के बोधक हैं।

नामकरण करना अथवा नाम रखना–

(क) व्यक्ति का नामकरण–घर में जब किसी शिशु का जन्म होता है, वह भगवान के घर से कोई नाम लेकर पैदा नहीं होता। उसका नामकरण' होता

है। उसका हम नाम रखते हैं। उसके लिए नाम बनाते नहीं हैं। उसके लिए नाम गढ़ते नहीं हैं, जो नाम रखते हैं, वह समाज में उस शिशु के लिए प्रचलित हो जाता है। लोक उसे उसके रखे नाम से पहचानता है। नाम व्यक्तित्त्व का अंग हो जाता है। नाम व्यक्ति से जुड़ जाता है।

(ख) नई व्यवस्था, नई वस्तु, नए आविष्कार के लिए नामकरण–भारत ने गुलामी की जंजीरों को काटकर स्वतंत्रता प्राप्त की। स्वाधीन होने के पहले से ही हमारे राष्ट्रीय नेताओं ने स्वतंत्र भारत के संविधान के लिए 'संविधान सभा का गठन कर दिया था। हमारे देश की संविधान सभा ने राजतंत्र के स्थान पर लोकतंत्र को ध्यान में रखकर संविधान बनाया। राजतंत्र में सर्वोच्च पद राजा का होता है। लोकतंत्र के लिए उन्होंने 'राष्ट्रपति' का पद बनाया। राष्ट्रपति शब्द इस कारण प्रचलित हो गया। उसके लिए कोई दूसरा शब्द जनता में प्रचलित नहीं था। पद ही नहीं था तो उसका वाचक कैसे होता। लोकतंत्रत्मक शासन व्यवस्था में इसी कारण बहुत से नए शब्दों का नामकरण किया। उनके लिए लोक में कोई अन्य नाम प्रचलित नहीं थे। आपने अपने टिप्पण में जो उदाहरण प्रस्तुत किए हैं, उनमें से अधिकतर इसी कोटि के अन्तर्गत आते हैं। कुछ अन्य उदाहरण देखें- (1) भारत की सरकार ने जब पद्म पुरस्कारों की नई योजना बनाई तो पुरस्कारों की तीन श्रेणियाँ बनाई तथा उनके नाम रखे– (अ) पद्म विभूषण (आ) पद्म भूषण (इ) पद्म श्री। इसके लिए कोई अन्य नाम प्रचलित नहीं थे। प्रचलित नहीं थे, क्योंकि ये पुरस्कार ही नहीं थे। इस कारण रखे गए नाम चले। इनका प्रचलन हो गया। (2) भारत की सरकार ने जब पूर्वोत्तर भारत में नए राज्यों का गठन किया तो उनके लिए नाम रखे। (अ) अरुणाचल प्रदेश (आ) मणिपुर (इ) मेघालय (ई) मिजोरम (उ) नगालैण्ड आदि। इन नए गठित राज्यों के लिए पहले से कोई शब्द नहीं थे। शब्द इस कारण नहीं थे, क्योंकि राज्य ही नहीं थे। इन नए राज्यों का नामकरण किया गया। इन राज्यों को सब इनके नाम से पुकारते हैं। (3) अभी हाल में 'आन्ध्र प्रदेश' को दो भागों में बाँटा गया है। एक राज्य का नामकरण किया गया–तेलंगाना। दूसरे राज्य का नामकरण किया गया सीमान्ध्र। ये नाम चलेंगे। लोक प्रचलित हो जाएँगे। (4) भारत के अंतरिक्ष वैज्ञानिकों ने चन्द्रमा पर भेजे जाने वाले अंतरिक्ष प्रेक्षण उपग्रह का नाम 'चन्द्रयान' तथा मंगल पर भेजे जाने वाले अंतरिक्ष प्रेक्षण उपग्रह का नाम 'मंगलयान' रखा। इनका 'नामकरण' 'चन्द्रयान' एवं 'मंगलयान' किया। ये नाम चल रहे हैं। संसार की किसी भी देश का वैज्ञानिक जब किसी भी भाषा में इनका उल्लेख करेगा तो उसे 'चन्द्रयाने एवं 'मंगलयाने शब्दों का प्रयोग करना पड़ेगा।

शब्द बनाना अथवा शब्द गढ़ना

शब्द बनाने अथवा शब्द गढ़ने को निम्न उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है। अंग्रेजों ने भारत में 'रेलवे नेटकर्क' शुरु किया। रेल की पटरियों का जाल बिछाने का काम किया। रेल से जुड़े अंग्रेजी के सैकड़ों शब्द जन प्रचलित हो गए। उदाहरण देखें- (1) इंजन (2) रेलवे (3) एक्सप्रेस (4) केबिन (5) गॉर्ड (6) स्टेशन (7) जंक्शन (8) टाइम टेबिल (9) टिकट (10) टिकट कलेक्टर (11) डीजल इंजन (12) प्लेटफॉर्म (13) बोगी (14) बुकिंग (15) सिग्नल (16) स्टेशन (17) स्टेशन मास्टर।

इन जैसे–जन प्रचलित शब्दों के स्थान पर इनके लिए नए शब्द बनाने अथवा गढ़ने वालों से लेखक सहमत नहीं हो सकता। भारतीय भाषा विज्ञान की महान परम्परा के अध्ययन के बाद लेखक को जो ज्ञान प्राप्त हुआ है, उसके आधार पर वह यह बात कह रहा है। आचार्य रघुवीर जी ने जो कार्य किया है वह स्तुत्य है मगर, उन्होंने भी अंग्रेजी के जन प्रचलित शब्दों के स्थान पर जिन शब्दों को गढ़ा है, उनसे सहमत नहीं हूँ। उदाहरण के लिए रेलगाड़ी के स्थान पर उन्होंने संस्कृत की धातुओं एवं परसर्गों एवं विभक्तियों की सहायता से शब्द बनाया, जो उपहास का कारक बना। ऐसे ही उदाहरणों के कारण 'रघुवीरी हिन्दी' हास्यास्पद हो गई। लोक में रेल ही चलता है और चलेगा। गढ़ा शब्द नहीं चलेगा। इसी संदर्भ में, लेखक का मत है कि जो शब्द जन-प्रचलित हैं, उनके स्थान पर शब्द गढ़े नहीं। आप नया आविष्कार करें और उसका नामकरण करें, यह ठीक है, जो शब्द जन-प्रचलित हो गए हैं, उनके स्थान पर नए शब्द बनाना अथवा गढ़ना श्रम का अपव्यय है। हमें किसी विचार शाखा से अपने को जकड़ना नहीं चाहिए। भाषा की प्रवाहशील प्रकृति को आत्मसात करना चाहिए।

संस्कृत भाषा तथा हिन्दी भाषा

संस्कृत और आधुनिक भारतीय भाषाएँ भिन्न कालों की भाषाएँ हैं। एक काल की भाषा पर दूसरे काल की भाषा के नियमों को नहीं थोपा जा सकता। संस्कृत और आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की व्यवस्थाओं एवं संरचनाओं के अन्तर को हमें जानना चाहिए। किसी भाषा के व्याकरण के नियमों को दूसरी किसी अन्य भाषा पर थोपना गलत है। भाषा विज्ञान का यह सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक नियम है। लेखक ने लिखा कि 'भाषा की प्रकृति नदी की धारा की तरह होती है'। इस पर कुछ विद्वानों ने सवाल उठाया कि क्या नदी की धारा

को अनियंत्रित, अमर्यादित एवं बेलगाम हो जाने दें। लेखक का उत्तर है–नदी की धारा अपने तटों के द्वारा मर्यादित रहती है। भाषा अपने व्याकरण की व्यवस्था एवं संरचना के तटों के द्वारा मर्यादित रहती है। भाषा में बदलाव एवं ठहराव दोनों साथ–साथ रहते हैं। 'शब्दावली' गतिशील एवं परिवर्तनशील है। व्याकरण भाषा को ठहराव प्रदान करता है। ऐसा नहीं है कि 'व्याकरण' कभी बदलता नहीं है। बदलता है मगर बदलाव की रफ्तार बहुत धीमी होती है। 'शब्द' आते जाते रहते हैं। हम विदेशी अथवा अन्य भाषा से शब्द तो आसानी से ले लेते हैं मगर उनको अपनी भाषा की प्रकृति के अनुरूप ढाल लेते हैं। 'शब्द' को अपनी भाषा के व्याकरण की पद रचना के अनुरूप विभक्ति एवं परसर्ग लगाकर अपना बना लेते हैं। हम यह नहीं कहते कि मैंने चार 'फिल्म्स' देखीं, हम कहते हैं कि मैंने चार फिल्में देखीं।

संस्कृत भाषा का महत्व और पाणिनी तथा पतंजलि का भाषा वैज्ञानिक चिंतन

लेखक के लेख को पढ़कर जिन विद्वानों ने प्रतिक्रियाएँ व्यक्त कीं, उनमें से कुछ विद्वानों ने लेखक को संस्कृत की व्याकरण परम्परा के महत्व से परिचित कराना चाहा। लेखक सम्प्रति यह निवेदन करना चाहता है कि वह संस्कृत के महान वैयाकरणों एवं निरुक्तकारों के योगदान से सर्वथा अनभिज्ञ नहीं है। वह इससे अवगत है कि प्रातिशाख्यों तथा शिक्षा–ग्रंथों में भाषाविज्ञान और विशेष रूप से ध्वनि विज्ञान से सम्बंधित कितना सूक्ष्मदर्शी और गहन विचार सन्निहित है। भारतीय भाषाविज्ञान की परम्परा बड़ी समृद्ध है और उसमें न केवल वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत के भाषाविद् समाहित हैं, अपितु प्राकृतों एवं अपभ्रंशों के भाषाविद् भी समाहित है। पाणिनी ने अपने काल के पूर्व के 10 आचार्यों का उल्लेख किया है। उन आचार्यों ने वेदों के काल की छान्दस् भाषा पर कार्य किया था। पाणिनी ने वैदिक काल की छान्दस भाषा को आधार बनाकर अष्टाध्यायी की रचना नहीं की। उन्होंने अपने काल की जन–सामान्य भाषा संस्कृत को आधार बनाकर व्याकरण के नियमों का निर्धारण किया। वाल्मीकीय रामायण में इस भाषा के लिए 'मानुषी विशेषण का प्रयोग हुआ है। पाणिनी के समय संस्कृत का व्यवहार एवं प्रयोग बहुत बड़े भूभाग में होता था। उसके अनेक क्षेत्रीय भेद–प्रभेद रहे होंगे। पाणिनी ने भारत के उदीच्य भाग के गुरुकुलों में बोली जानेवाली भाषा को आधार बनाया। पाणिनी के व्याकरण का महत्व सर्वविदित

है। उस सम्बंध में लिखना अनावश्यक है। पाणिनी के व्याकरण की विशिष्टता को अनेक विद्वानों ने रेखांकित किया है। संस्कृत भाषा को नियमबद्ध करने के लिए पाणिनी के सूत्र बीजगणित के जटिल सूत्रों की भाँति हैं।

पतंजलि ने भाषा प्रयोग के मामले में भाषा के वैयाकरण से अधिक महत्व सामान्य गाड़ीवान (सारथी) को दिया। महाभाष्यकार पतंजलि के 'पतंजलिमहाभाष्य' से एक प्रसंग प्रस्तुत कर रहा हूँ, जिसमें उन्होंने भाषा के प्रयोक्ता का महत्व प्रतिपादित किया है। प्रयोक्ता व्याकरणिक नियमों का भले ही जानकार नहीं होता किन्तु वह अपनी भाषा का प्रयोग करता है। व्याकरणिक नियमों के निर्धारण करने वाले तथा भाषा का प्रयोग करनेवाले का पतंजलि-महाभाष्य में रोचक प्रसंग मिलता है। वैयाकरण तथा रथ चलानेवाले के बीच के संवाद का प्रासंगिक अंश उद्धृत है-"वैयाकरण ने पूछा–इस रथ का 'प्रवेतो कौन है?

सारथी का उत्तर–आयुष्मान्, मैं इस रथ का 'प्राजितो हूँ।

(प्राजिन् = सारथी, रथ-चालक, गाड़ीवान)

वैयाकरण–'प्राजिता' अपशब्द है।

सारथी का उत्तर– (देवानां प्रिय) आप केवल 'प्राप्तिज्ञे हैं, 'इष्टिज्ञे नहीं।

('प्राप्तिज्ञ' = नियमों का ज्ञाता, 'इष्टिज्ञे = प्रयोग का ज्ञाता)

वैयाकरण–यह दुष्ट 'सूते हमें 'दुरुत' (कष्ट पहुँचाना) रहा है।

सूत- आपका 'दुरुत' प्रयोग उचित नहीं है। आप निंदा ही करना चाहते हैं तो 'दुःसूत' शब्द का प्रयोग करें।

लेखक इस तथ्य से अवगत है कि प्रत्याहार, गणपाठ, विकरण, अनुबंध आदि की विपुल तकनीक से अलंकृत पाणिनीय सूत्र उनकी अद्वितीय प्रतिभा को प्रमाणित करते हैं।

लेखक को संस्कृत भाषा के व्यवहार एवं प्रसार की भी थोड़ी बहुत जानकारी है। उत्तर-वैदिक काल में संस्कृत भारत की सभी दिशाओं में चारों ओर फैलती गई। संस्कृत का यह प्रसार केवल भौगोलिक दिशाओं में ही नहीं हो रहा थाय सामाजिक स्तर पर मानक संस्कृत से भिन्न अनेक आर्य एवं अनार्य भाषाओं के बोलने वाले समुदायों में भी हो रहा था।

संस्कृत भाषा के भारत के विभिन्न भागों एवं विभिन्न सामाजिक समुदायों में व्यवहार एवं प्रसार के कारण दो बातें घटित हुईं–

1. संस्कृत ने अपने प्रसार के कारण भारत के प्रत्येक क्षेत्र की भाषा को प्रभावित किया।

2. संस्कृत भाषा स्वयं भी भारत में अन्य भाषा-परिवारों की भाषाओं से तथा संस्कृत युग में भारतीय आर्य परिवार की संस्कृतेतर अन्य लोक भाषाओं/जनभाषाओं से प्रभावित हुई। लेखक यह स्पष्ट करना चाहता है कि संस्कृत काल में अन्य लोक भाषाओं/जनभाषाओं का व्यवहार होता था।

संस्कृत के प्रभाव से तो संस्कृत के विद्वान परिचित हैं मगर संस्कृत पर संस्कृतेतर अन्य लोक भाषाओं/जनभाषाओं के प्रभाव से शायद परिचित नहीं हैं अथवा इस पक्ष को अनदेखा कर जाते हैं। लेखक ने इन दोनों पक्षों पर अपनी पुस्तक में विस्तार से लिखा है। यह भी विवेचित किया है कि पाणिनी के बाद के संस्कृत साहित्य में प्रयुक्त किन धातुओं का (शब्दों का नहीं) प्रयोग हुआ है, जिनका उल्लेख पाणिनी की अष्टाध्यायी में नहीं हुआ है। वस्तुतः संसार की प्रत्येक भाषा में अन्य भाषा/भाषाओं से आगत शब्दों का व्यवहार होता है। हिन्दी में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग हो रहा है। संसार की प्रत्येक भाषा अन्य भाषा से शब्द ग्रहण करती है और उसे अपनी भाषा में पचा लेती है। संसार की प्रत्येक प्रवाहशील भाषा में परिवर्तन होता है।

हिन्दी के समाचार पत्रों, टी. वी. चैनलों एवं फिल्मों की भाषा

समाचार पत्रों में तथा टी. वी. के हिन्दी चैनलों एवं हिन्दी की फिल्मों में उस भाषा का प्रयोग हो रहा है, जिसे हमारी संतति बोल रही है। भविष्य की हिन्दी का स्वरूप हमारे प्रपौत्र एवं प्रपौत्रियों की पीढ़ी के द्वारा बोली जानेवाली हिन्दी के द्वारा निर्धारित होगा जिसका निर्धारण उनके अपने काल में भाषा के वैयाकरण करेंगे।। ऐतिहासिक भाषा विज्ञान एवं एककालिक अथवा संकालिक भाषा विज्ञान की दृष्टियाँ समान नहीं होती। उनमें अन्तर होता है। शब्द प्रयोग के संदर्भ में जब ऐतिहासिक भाषा विज्ञान की दृष्टि से विचार किया जाता है तो यह पता लगाने की कोशिश की जाती है कि भाषा के शब्द का स्रोत कौन सी भाषा है। शब्द प्रयोग के संदर्भ में जब एककालिक अथवा संकालिक भाषा विज्ञान की दृष्टि से विचार किया जाता है तो भाषा का प्रयोक्ता जिन शब्दों का व्यवहार करता है, वे समस्त शब्द उसकी भाषा के होते हैं। उस धरातल पर कोई शब्द स्वदेशी अथवा विदेशी नहीं होता। प्रत्येक जीवन्त भाषा में अनेक स्रोतों से शब्द आते रहते हैं और उस भाषा के अंग बनते रहते हैं। भाषा में शुद्ध एवं अशुद्ध का, मानक एवं अमानक का, सुसंस्कृत एवं अपशब्द का तथा आजकल भाषा के मानकीकरण एवं आधुनिकीकरण के बीच वाद-विवाद होता रहा है और होता

रहेगा। भारत में ऐसे विद्वानों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक है, जो केवल मानक भाषा की अवधारणा से परिचित हैं, जो भाषाएँ इन्टरनेट पर अधिक विकसित एवं उन्नत हो गयीं हैं, उनके भाषाविद् मानक भाषा से ज्यादा महत्व भाषा के आधुनिकीकरण को देते हैं। वैयाकरण प्रयोक्ता द्वारा बोली जाने वाली भाषा को आधार मानकर व्याकरण के नियमों का निर्धारण करता है। परम्परा से चिपके रहने वालों की नजर में कुछ शब्द सुसंस्कृत होते हैं एवं कुछ अपशब्द होते हैं। भाषा की प्रकृति बदलना है। भाषा बदलती है। परम्परावादियों को बदली भाषा भ्रष्ट लगती है। मगर उनके लगने से भाषा अपने प्रवाह को, अपनी गति को, अपनी चाल को रोकती नहीं है। बहती रहती है। बहना उसकी प्रकृति है। इसी कारण कबीर ने कहा था–'भाखा बहता नीरे।भाषा का अन्तिम निर्णायक उसका प्रयोक्ता होता है। दूसरे काल की भाषा के आधार पर उस काल का वैयाकरणिक संकालिक भाषा के व्याकरण के पुनः नए नियम बनाता है। व्याकरण के नियमों में भाषा को बाँधने की कोशिश करता है। भाषा गतिमान है। पुनः पुनः नया रूप धारण करती रहती है।भाषा वह है, जो भाषा के प्रयोक्ताओं द्वारा बोली जाती है। लेखक इस बात को दोहराना चाहता है कि भविष्य में हिन्दी भाषा का रूप वह होगा जो लेखक के एवं हिन्दी समाज के प्रपौत्रों तथा प्रपौत्रियों के काल की पीढ़ी द्वारा बोला जाएगा। भाषा का मूल आधार उस के समाज के पढ़े, लिखे द्वारा बोली जानेवाली भाषा ही होती है। इसी के आधार पर किसी काल का वैयाकरण मानक भाषा के नियमों का निर्धारण करता है।

सामान्य जनता द्वारा बोली जाने वाली सरल, बोधगम्य हिन्दी का प्रयोग

यहाँ इसको रेखांकित करना अप्रसांगिक न होगा कि स्वाधीनता संग्राम के दौरान हिन्दीतर भाषी राष्ट्रीय नेताओं ने जहाँ देश की अखंडता एवं एकता के लिए राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार प्रसार की अनिवार्यता की पैरोकारी की वहीं भारत के सभी राष्ट्रीय नेताओं ने एकमतेन सरल एवं सामान्य जनता द्वारा बोली जाने वाली हिन्दी का प्रयोग करने एवं हिन्दी उर्दू की एकता पर बल दिया था। इसी प्रसंग में, लेखक यह जोड़ना चाहता है कि प्रजातंत्र में शुद्ध हिन्दी, क्लिष्ट हिन्दी, संस्कृत गर्भित हिन्दी जबरन नहीं चलाई जानी चाहिए। जनतंत्र में ऐसा करना सम्भव नहीं है। ऐसा फासिस्ट शासन में ही सम्भव है। हमें सामान्य आदमी जिन शब्दों का प्रयोग करता है, उनको अपना लेना चाहिए। यदि वे शब्द अंग्रेजी से हमारी भाषाओं में आ गए हैं, हमारी भाषाओं के अंग बन गए हैं तो उन्हें भी अपना

लेना चाहिए। यह सर्वविदित है कि प्रेमचन्द जैसे–महान रचनाकार ने भी प्रसंगानुरूप किसी भी शब्द का प्रयोग करने से परहेज नहीं किया। उनकी रचनाओं में अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। अपील, अस्पताल, ऑफिसर, इंस्पैक्टर, एक्टर, एजेंट, एडवोकेट, कलर, कमिश्नर, कम्पनी, कॉलिज, कांस्टेबिल, कैम्प, कौंसिल, गजट, गवर्नर, गैलन, गैस, चेयरमेन, चौक, जेल, जेलर, टिकट, डाक्टर, डायरी, डिप्टी, डिपो, डेस्क, ड्राइवर, थियेटर, नोट, पार्क, पिस्तौल, पुलिस, फंड, फिल्म, फैक्टरी, बस, बिस्कुट, बूट, बैंक, बैंच, बैरंग, बोतल, बोर्ड, ब्लाउज, मास्टर, मिनिट, मिल, मेम, मैनेजर, मोटर, रेल, लेडी, सरकस, सिगरेट, सिनेमा, सिमेंट, सुपरिन्टेंडैंट, स्टेशन आदि हजारों शब्द इसके उदाहरण हैं।

प्रेमचन्द जैसे–हिन्दी के महान साहित्यकार ने अपने उपन्यासों एवं कहानियों में अंग्रेजी के इन शब्दों का प्रयोग करने में कोई झिझक नहीं दिखाई है, जब प्रेमचंद ने उर्दू से आकर हिन्दी में लिखना शुरु किया था तो उनकी भाषा को देखकर छायावादी संस्कारों में रँगे हुए आलोचकों ने बहुत नाक भौंह सिकौड़ी थी तथा प्रेमचंद को उनकी भाषा के लिए पानी पी पीकर कोसा था। मगर प्रेमचंद की भाषा खूब चली। खूब इसलिए चली, क्योंकि उन्होंने प्रसंगानुरूप किसी भी शब्द का प्रयोग करने से परहेज नहीं किया। उन्होंने शब्दावली आयोग की तरह इसके लिए विशेषज्ञों को बुलाकर यह नहीं कहा कि पहले इन अंग्रेजी के शब्दों के लिए शब्द गढ़ दो, ताकि मैं अपना साहित्य सर्जित कर सकूँ। उनके लेखन में अंग्रेजी के ये शब्द ऊधारी के नहीं हैं, जनजीवन में प्रयुक्त शब्द भंडार के आधारभूत, अनिवार्य, अवैकल्पिक एवं अपरिहार्य अंग हैं। फिल्मों, रेडियो, टेलिविजन, दैनिक समाचार पत्रों में जिस हिन्दी का प्रयोग हो रहा है वह जनप्रचलित भाषा है, जनसंचार की भाषा है।

समय समय पर बदलती भी रही है। पुरानी फिल्मों में प्रयुक्त होने वाले चुटीले संवादों तथा फिल्मी गानों की पंक्तियाँ जैसे–पुरानी पीढ़ी के लोगों की जबान पर चढ़कर बोलती थीं वैसे ही आज की युवा पीढ़ी की जुबान पर आज की फिल्मों में प्रयुक्त संवादों तथा गानों की पंक्तियाँ बोलती हैं। फिल्मों की स्क्रिप्ट के लेखक जनप्रचलित भाषा को परदे पर लाते हैं। उनके इसी प्रयास का परिणाम है कि फिल्मों को देखकर समाज के सबसे निचले स्तर का आम आदमी भी फिल्म का रस ले पाता है। लेखक का सवाल यह है कि यदि साहित्यकार, फिल्म के संवादों तथा गीतों के लेखक, समाचार पत्रों के रिपोर्टर जनप्रचलित हिन्दी का प्रयोग कर सकते हैं तो भारत सरकार का शासन`प्रशासन की राजभाषा हिन्दी' को जनप्रचलित क्यों

नहीं बना सकता। विचारणीय है कि हिंदी फिल्मों की भाषा ने गाँवों और कस्बों की सड़कों एवं बाजारों में आम आदमी के द्वारा रोजमर्रा की जिंदगी में बोली जाने वाली बोलचाल की भाषा को एक नई पहचान दी है। फिल्मों के कारण हिन्दी का जितना प्रचार-प्रसार हुआ है, उतना किसी अन्य एक कारण से नहीं हुआ। आम आदमी जिन शब्दों का व्यवहार करता है, उनको हिन्दी फिल्मों के संवादों एवं गीतों के लेखकों ने बड़ी खूबसूरती से सहेजा है।

राजभाषा के संदर्भ में यह संवैधानिक आदेश है कि संघ का यह कर्त्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे, जिससे वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्त्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्थानी में और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए और जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो वहाँ उसके शब्द-भंडार के लिए मुख्यत: संस्कृत से और गौणत: अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करे। भारत सरकार का शासन राजभाषा का तदनुरूप विकास कर सका है अथवा नहीं यह सोचने विचारने की बात है। इस दृष्टि से भी लेखक फिल्मों में कार्यरत सभी रचनाकारों एवं कलाकारों का अभिनंदन करता है।हिन्दी सिनेमा ने भारत की सामासिक संस्कृति के माध्यम की निर्मिति में अप्रतिम योगदान दिया है। बंगला, पंजाबी, मराठी, गुजराती, तमिल आदि भाषाओं एवं हिन्दी की विविध उपभाषाओं एवं बोलियों के अंचलों तथा विभिन्न पेशों की बस्तियों के परिवेश को सिनेमा की हिन्दी ने मूर्तमान एवं रूपायित किया है।

भाषा तो हिन्दी ही है मगर उसके तेवर में, शब्दों के उच्चारण के लहजे में, अनुतान में तथा एकाधिक शब्द-प्रयोग में परिवेश का तड़का मौजूद है। भाषिक प्रयोग की यह विशिष्टता निंदनीय नहीं अपितु प्रशंसनीय है। लेखक को प्रसन्नता है कि देर आए दुरुस्त आए, राजभाषा विभाग ने प्रशासनिक हिन्दी को सरल बनाने की दिशा में कदम उठाने शुरु कर दिए हैं जैसे-प्रेमचन्द ने जनप्रचलित अंग्रेजी के शब्दों को अपनाने से परहेज नहीं किया वैसे ही प्रशासनिक हिन्दी में भी प्रशासन से सम्बंधित ऐसे शब्दों को अपना लेना चाहिए जो जन-प्रचलित हैं। उदाहरण के लिए एडवोकेट, ओवरसियर, एजेंसी, लाट, चौक, अपील, स्टेशन, प्लेटफार्म, एसेम्बली, ऑडिट, केबिनेट, केम्पस, कैरियर, केस, कैश, बस, सेंसर, बोर्ड, सर्टिफिकेट, चालान, चेम्बर, चार्जशीट, चार्ट, चार्टर, सर्किल, इंस्पेक्टर, सर्किट हाउस, सिविल, क्लेम, क्लास, क्लर्क, क्लिनिक,

क्लॉक रूम, मेम्बर, पार्टनर, कॉपी, कॉपीराइट, इन्कम, इन्कम टैक्स, इंक्रीमेंट, स्टोर आदि। इसी प्रसंग में, लेखक भारत सरकार के राजभाषा विभाग को यह सुझाव भी देना चाहता है कि जिन संस्थाओं में सम्पूर्ण प्रशासनिक कार्य हिन्दी में शतकों अथवा दशकों से होता आया है वहाँ की फाइलों में लिखी गई हिन्दी भाषा के आधार पर प्रशासनिक हिन्दी को सरल बनाएँ। जब कोई रोजाना फाइलों में सहज रूप से लिखता है तब उसकी भाषा का रूप अधिक सरल और सहज होता है बनिस्पत जब कोई सजग होकर भाषा को बनाता है। सरल भाषा बनाने से नहीं बनतीय सहज प्रयोग करते रहने से बन जाती है, ढल जाती है।

सन् 2014 में, राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव पर हुई बहस का जो उत्तर भारत के प्रधान मंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने संसद के दोनों सदनों में दिया उसको लेखक ने सुना तथा प्रयुक्त अंग्रेजी के शब्दों को अपनी शक्ति-सीमा के दायरे में लिखता गया। बहुत से शब्द छूट भी गए। लेखक उक्त संदर्भित भाषण में बोले गए अंग्रेजी के जिन शब्दों को लिख पाया, वे शब्द निम्नलिखित हैं– 1.स्कैम इंडिया 2. स्किल इंडिया 3. एंटरप्रेन्योरशिप 4. स्किल डेवलपमेंट 5. एजेंडा 6. रोडमैप 7. रेप 8. एफ आई आर 9. रेंज 10. कॉमन 11. ब्रेक 12.इंडस्ट्रीज 13. फोकस 14. मार्केटिंग 15. प्रोडक्ट। लेखक ने प्रवक्ता डॉट कॉम पर 12 जून, 2014 को प्रकाशित अपने लेख में मोदी जी के इस भाषण में प्रयुक्त अंग्रेजी के शब्दों का उल्लेख जानबूझ कर किया। ऐसा लेखक ने इस कारण किया, जिससे वह उन विद्वानों को उत्तर देने में समर्थ हो सके जो मूल धारा की शुद्धता को बनाए रखने के नाम पर केवल संस्कृताधारित शब्दों के प्रयोग के हिमायती हैं। भारत सरकार के अधिकारियों को तथा विशेष रूप से गृह मंत्रालय के राजभाषा विभाग के अधिकारियों को इस पर विचार करना चाहिए और तदनुरूप भाषा प्रयोग की नीति का निर्धारण करना चाहिए। राजभाषा हिन्दी में अरबी-फारसी एवं अंग्रेजी के जन प्रचलित शब्दों का प्रयोग करने से परहेज नहीं करना चाहिए। जिन शब्दों का हिन्दी भाषा-क्षेत्र का प्रयोक्ता अपनी जिन्दगी में रोजाना प्रयोग करता है, वे समस्त शब्द एककालिक स्तर पर हिन्दी भाषा के शब्दकोश के अंग हैं। एककालिक स्तर पर प्रयुक्त शब्द देशी अथवा विदेशी नहीं होता।

अंग्रेजी में भारतीय भाषाओं के शब्दों का प्रयोग

ऐसा नहीं है कि केवल हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में ही अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग होता है और अंग्रेजी बिल्कुल अछूती है। अंग्रेजी में संसार की

उन सभी भाषाओं के शब्द प्रयुक्त होते हैं, जिन भाषाओं के बोलने वालों से अंग्रेजो का सामाजिक सम्पर्क हुआ। चूँकि अंग्रेजों का भारतीय समाज से भी सम्पर्क हुआ, इस कारण अंग्रेजी ने हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के शब्दों का आदान किया है। यदि ब्रिटेन में इंडियन रेस्तरॉ में अंग्रेज समोसा, इडली, डोसा, भेलपुरी खायेंगे, खाने में 'करी', 'भुना आलू' एवं 'रायता' मागेंगे तो उन्हें उनके वाचक शब्दों का प्रयोग करना पड़ेगा। यदि भारत का 'योग' करेंगे तो उसके वाचक शब्द का भी प्रयोग करना होगा और वे करते हैं, भले ही उन्होंने उसको अपनी भाषा में 'योगा' बना लिया है, जैसे–हमने 'हॉस्पिटल' को 'अस्पताल' बना लिया है, जिन अंग्रेजों ने भारतविद्या एवं धर्मशास्त्र का अध्ययन किया है, उनकी भाषा में अवतार, अहिंसा, कर्म, गुरु, तंत्र, देवी, नारद, निर्वाण, पंडित, ब्राह्मन, बुद्ध, भक्ति, भगवान, भजन, मंत्र, महात्मा, महायान, माया, मोक्ष, यति, वेद, शक्ति, शिव, संघ, समाधि, संसार, संस्कृत, साधू, सिद्ध, सिंह, सूत्र, स्तूप, स्वामी, स्वास्तिक, हनुमान, हरि, हिमालय आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है।

भारत में रहकर जिन अंग्रेजों ने पत्र, संस्मरण, रिपोर्ट, लेख आदि लिखे उनकी रचनाओं में तथा वर्तमान इंगलिश डिक्शनरी में अड्डा, इज्जत, कबाब, कोरा, कौड़ी, खाकी, खाट, घी, चक्कर, चटनी, चड्डी, चमचा, चिट, चोटी, छोटू, जंगल, ठग, तमाशा, तोला, धतूरा, धाबा, धोती, नबाब, नमस्ते, नीम, पंडित, परदा, पायजामा, बदमाश, बाजार, बासमती, बिंदी, बीड़ी, बेटा, भाँग, महाराजा, महारानी, मित्र, मैदान, राग, राजा, रानी, रुपया, लाख, लाट, लाठी चार्ज, लूट, विलायती, वीणा, शाबास, सरदार, सति, सत्याग्रह, सारी (साड़ी), सिख, हवाला एवं हूकाह (हुक्का) जैसे–शब्दों को पहचाना जा सकता है।

हिन्दी भाषा की प्रकृति के अनुरूप वाक्य रचना

लेखक ने अपने लेख में लिखा था कि राजभाषा हिन्दी का प्रयोग करते समय वाक्य रचना अंग्रेजी की वाक्य रचना के अनुरूप नहीं होनी चाहिए। यह रचना हिन्दी की प्रकृति के अनुरूप होनी चाहिए। भारत सरकार के मंत्रालय के राजभाषा अधिकारी का काम होता है कि वह अंग्रेजी के मैटर का आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली में अनुवाद करदे। अधिकांश अनुवादक शब्द की जगह शब्द रखते जाते हैं। हिन्दी भाषा की प्रकृति को ध्यान में रखकर वाक्य नहीं बनाते। इस कारण जब राजभाषा हिन्दी में अनुवादित सामग्री पढ़ने को मिलती है तो उसे समझने के लिए कसरत करनी पड़ती है। लेखक जोर देकर यह कहना चाहता

है कि लोकतंत्र में राजभाषा आम आदमी के लिए बोधगम्य होनी चाहिए। सरकारी अधिकारियों ने इस बात पर जोर दिया है कि राजभाषा सामान्य भाषा से अलग दिखनी चाहिए। वह गरिमामय लगनी चाहिए। उसको सुनकर सत्ता का आधिपत्य परिलक्षित होना चाहिए। राजभाषा अधिकारी हिन्दी में अंग्रेजी की सामग्री का अनुवाद अधिक करता है। मूल टिप्पण हिन्दी में नहीं लिखा जाता। मूल टिप्पण अंग्रेजी में लिखा जाता है। अनुवादक जो अनुवाद करता है, वह अंग्रेजी की वाक्य रचना के अनुरूप अधिक होता है। हिन्दी भाषा की रचना-प्रकृति अथवा संरचना के अनुरूप कम होता है। उदाहरणार्थ, जब कोई पत्र मंत्रालय को भेजते हैं तो उसकी पावती की भाषा की रचना निम्न होती है–

'पत्र दिनांक-- -, क्रमांक---प्राप्त हुआ'।

सवाल यह है कि क्या प्राप्त हुआ। क्रमांक प्राप्त हुआ अथवा दिनांक प्राप्त हुआ अथवा पत्र प्राप्त हुआ। अंग्रेजी की वाक्य रचना में क्रिया पहले आती है। हिन्दी की वाक्य रचना में क्रिया बाद में आती है। इस कारण जो वाक्य रचना अंग्रेजी के लिए ठीक है, उसके अनुरूप रचना हिन्दी के लिए सहज, सरल एवं स्वाभाविक नहीं है। क्रिया (प्राप्त होना अथवा मिलना) का सम्बंध दिनांक से अथवा क्रमांक से नहीं है। पत्र से है। एक विद्वान को इसमें कोई दोष नजर नहीं आता। लेखक उनका ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहता है कि हिन्दी एवं अंग्रेजी की वाक्य संरचना में अन्तर हैं। हिन्दी एवं अंग्रेजी के व्यतिरेकी अध्ययन पर अनेक विद्वानों ने कार्य किया है। उन ग्रंथों को पढ़ा जा सकता है। सामान्य पाठक के लिए लेखक यह स्पष्ट करना चाहता है कि उपर्युक्त उदाहरण की वाक्य रचना हिन्दी की रचना प्रकृति के हिसाब से निम्न होनी चाहिए-आपका दिनांक---का लिखा पत्र प्राप्त हुआ। उसका क्रमांक है---- '।

हिन्दी की वाक्य रचना भी दो प्रकार की होती है। एक रचना सरल होती है। दूसरी रचना जटिल एवं क्लिष्ट होती है। सरल वाक्य रचना में वाक्य छोटे होते हैं। संयुक्त एवं मिश्र वाक्य बड़े होते हैं। सरल वाक्य रचना वाली भाषा सरल, सहज एवं बोधगम्य होती है। संयुक्त एवं मिश्र वाक्यों की रचना वाली भाषा जटिल होती है, कठिन लगने लगती है, क्लिष्ट लगने लगती है और इस कारण अबोधगम्य हो जाती है।

अंत में, लेखक यह निवेदन करना चाहता है कि हिन्दी के विकास के लिए सरल, सहज, पठनीय, बोधगम्य भाषा-शैली का विकास करना अपेक्षित है। इससे हिन्दी लोक में प्रिय होगी। लोकप्रचलित होगी।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास एवं हिन्दी

अर्थव्यवस्था के भूमंडलीकरण और उदारीकरण के दबाव के कारण आज प्रौद्योगिकी की आवश्यकता पहले से और अधिक बढ़ गई है। प्रौद्योगिकीय गतिविधियों को बनाए रखने के लिए, लोकतंत्रात्मक दर्शन एवं मूल्यों के अनुरूप सामान्य नागरिक एवं शासनतंत्र के बीच सार्थक संवाद के लिए ई-गवर्नेंस के प्रसार तथा सामाजिक-आर्थिक चुनौतियों के समाधान के लिए भारतीय जन मानस में वैज्ञानिक चेतना एवं प्रौद्योगिकी के उपयोग का विकास अनिवार्य है। देश की सम्पर्क भाषा हिन्दी में वैज्ञानिक तथा प्रौद्योगिकीय ज्ञान के सतत विकास और प्रसार के लिए हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन एवं प्रौद्योगिकी विकास के लिए वैज्ञानिकों, प्रौद्योगिकविदों एवं हिन्दी भाषा के विशेषज्ञों को मिलकर निरन्तर कार्य करना होगा।

हिन्दी में विज्ञान सम्बन्धी साहित्य का लेखन-कार्य

हिन्दी में विज्ञान सम्बन्धी साहित्य का लेखन-कार्य भारतेन्दु काल से प्रारम्भ हो गया था। 19वीं शताब्दी से इस दिशा में यत्र तत्र हुए प्रयास बिखरे हुए मिलते हैं। स्कूल बुक सोसायटी, आगरा (सन् 1847), साइंटिफिक सोसायटी, अलीगढ़ (सन् 1862), काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी (सन् 1898), गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार (सन् 1900) विज्ञान परिषद, इलाहाबाद (सन् 1913), वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली मण्डल (सन् 1950), वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग (सन् 1961) आदि ने वैज्ञानिक साहित्य के निर्माण में उल्लेखनीय कार्य किया है। यह जरूर है कि इस वैज्ञानिक-लेखन की भाषिक स्थिति के सम्बन्ध में अपेक्षित विचार सम्भव नहीं हो सका। हिन्दी में जो पुस्तकें वैज्ञानिक विषयों पर उच्चतर माध्यमिक एवं इन्टरमीडिएट कक्षा के विद्यार्थियों को ध्यान में रखकर लिखी गई हैं, उनकी संख्या बहुत अधिक है। उनकी भाषा-शैली भी अपेक्षाकृत सहज एवं बोधगम्य है, किन्तु जिन ग्रन्थों का निर्माण ''मानक ग्रन्थ अनुवाद योजना'' के अंतर्गत किया गया उनकी भाषा-शैली में अपेक्षाकृत अस्पष्टता एवं अस्वाभाविकता है तथा अंग्रेजी के वाक्य-विन्यासों की छाया दिखाई देती है।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास एवं हिन्दी

इस दृष्टि से हिन्दी भाषा के विकास में नए आयाम जोड़ने की आवश्यकता असंदिग्ध है। यह निम्न उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए जरूरी है–

1. सुगम एवं बोधगम्य तकनीकी लेखन की शैली का तीव्र गति से अधिकाधिक विकास होना।
2. जन-सामान्य के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी को सुबोध और सम्प्रेषणीय बनाना।
3. जन-सामान्य में जिज्ञासा, तार्किकता एवं विवेकशीलता की प्रवृत्तियों का स्वाभाविक रूप से विकास करना।
4. उनमें विश्लेषणात्मक चिंतन शक्ति का विकास।उनमें प्रकृति की प्रक्रियाओं के बोध की दृष्टि उत्पन्न करना।
5. हिन्दी के वैज्ञानिक लेखन को बच्चों और किशोरों के लिए आकर्षक एवं बोधगम्य बनाना।
6. वयस्कों को उस लेखन का ज्ञान सहज ढंग से उपलब्ध कराना।

विद्वानों को वैज्ञानिक लेखन की विषय-वस्तु और उसके प्रस्तुतीकरण, सरलीकरण, मानकीकरण, शैलीकरण आदि पर विचार-विमर्श करना चाहिए। इस सम्बंध में एक स्पष्ट नीति एवं योजना बनाने की आवश्यकता है। इस दृष्टि से लेखक का व्यक्तिगत विचार यह है कि हिन्दी के वैज्ञानिक लेखन के प्रसार के लिए भाषा के मानकीकरण की अपेक्षा भाषा के आधुनिकीकरण पर अधिक बल देने की आवश्यकता है।

सूचना प्रौद्यौगिकी के संदर्भ में हिन्दी की स्थिति पर भी विचार अपेक्षित है। आने वाले समय में वही भाषायें विकसित हो सकेंगी तथा जिन्दा रह पायेंगी जिनमें इन्टरनेट पर सूचनायें उपलब्ध होंगी। भाषा वैज्ञानिकों का अनुमान है कि इक्कीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक भाषाओं की संख्या में अप्रत्याशित रूप से कमी आएगी। अनुमान है कि वे भाषाएँ ही टिक पायेंगी जिनका व्यवहार अपेक्षाकृत व्यापक क्षेत्र में होगा तथा जो भाषिक प्रौद्योगिकी की दृष्टि से इतनी विकसित हो जायेंगी, जिससे इन्टरनेट पर काम करने वाले उपयोगकर्ताओं के लिए उन भाषाओं में उनके प्रयोजन की सामग्री सुलभ होगी।

केन्द्रीय हिन्दी संस्थान एवं हिन्दी सूचना एवं प्रौद्योगिकी

केन्द्रीय हिन्दी संस्थान ने सन् 1990 ईस्वी के बाद से हिन्दी सूचना एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में कार्य करने की दिशा में कारगर कदम उठाने शुरु किए। सन् 1992 में, संकाय संवर्धन कार्यक्रम के अन्तर्गत भाषा प्रौद्योगिकी पाठ्यक्रम और कम्प्यूटर परिचय की कार्यशाला आयोजित हुई। विदेशी भाषा के रूप में

हिन्दी भाषा का कम्प्यूटर साधित अध्ययन एवं शिक्षण परियोजना का कार्य सम्पन्न हुआ। संस्थान ने सन् 2000 में, हिन्दी विश्वकोश की समस्त सामग्री को 6 खण्डों में तैयार करके उसे इन्टरनेट पर डालने की योजना बनाई तथा इसके जीरो वर्जन का विमोचन इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र के तत्कालीन अध्यक्ष डॉ. लक्ष्मी मल्ल सिंघवी ने किया। सन् 1991 में, भारत सरकार के तत्कालीन 'सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय' की 'भारतीय भाषाओं में प्रौद्योगिकी विकास' सम्बंधित योजना के अन्तर्गत 'हिन्दी कॉर्पोरा' परियोजना का काम आरम्भ हुआ।

इस परियोजना के अन्तर्गत विविध विषयों के 3 करोड़ से अधिक शब्दों का संग्रह कर लिया गया है। इसकी टैगिंग के नियमों का निर्धारण सन् 2000 ईस्वी तक हो गया था। समस्त शब्दों की टैगिंग होने से कम्प्यूटर पर हिन्दी में और अधिक सुविधाएँ सुलभ हो जाएँगी। टैगिंग से मतलब शब्द के केवल अधिकतर समझे जाने वाले वाग् भाग के निर्धारण से ही नहीं है अपितु भाषा में उसके समस्त प्रयोगो एवं संदर्भित अर्थों के आधार पर उसके समस्त वाग् भागों (संज्ञा, क्रिया, विशेषण, पूर्वसर्ग, सर्वनाम, क्रिया विशेषण, अव्यय, संयोजन, विस्मयादिबोधक) तथा समस्त व्याकरणिक कोटियों (वचन, लिंग, पुरुष, कारक आदि) को स्पष्ट करना है, उसके सहप्रयोगों को स्पष्ट करना है। यदि उसके प्रयोग में संदिग्धार्थकता की सम्भावनाएँ हैं तो उन्हें भी बताना है। उदाहरण के लिए सामान्यत: 'पत्थर' शब्द संज्ञा समझा जाता है मगर इसका प्रयोग संज्ञा, क्रिया, विशेषण, अव्यय के रूप में भी होता है। निम्न वाक्यों से यह स्पष्ट हो जाएगा।

(1) यह पत्थर बड़ा चमकीला है।
(2) वह तो बिलकुल ही पथरा गया है।
(3) पत्थर दिल नहीं पसीजते।
(4) तुम मेरा काम क्या पत्थर करोगे।

इसके अलावा टैगिंग में विवेच्य भाषा में प्रयुक्त उस शब्द के संदर्भित अर्थ प्रयोगों का आवृत्ति परक अथवा सांख्यिकीय तकनीक से अध्ययन किया जाता है। मशीनी अनुवाद की सटीकता के लिए गतिशील प्रोग्रामिंग एल्गोरिदम का विकास जरूरी है। कम्प्यूटरीकृत भाषा विश्लेषण के लिए टैगिंग की वह तकनीक अधिक सटीक हो सकती है, जहाँ शब्द की टैगिंग उसके समस्त वाग्भागों की पूरी-पूरी जानकारी प्रदान करे, प्रयोगों की आवृत्ति का साख्यिकीय तकनीक से अध्ययन सम्पन्न करे तथा वाक्य विन्यास और अर्थ विज्ञान के सिद्धांतों के परिप्रेक्ष्य में उसके समस्त प्रयोगों को स्पष्ट करे।

फॉण्ट

यह संतोष का विषय है कि इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों ने अब धीरे-धीरे हिन्दी में अपनी जगह बनानी शुरु कर दी है। आज से एक दशक पहले तक फॉण्ट की बहुत बड़ी समस्या थी। मुझे याद आ रहा है, लेखक ने एक लेख कृतिदेव फॉण्ट में टाइप कराकर एक साइट पर प्रकाशन के लिए भेजा था। जब लेख पढ़ने को मिला तो लेख में जिन शब्दों में 'श' वर्ण था उसके स्थान पर 'ष' वर्ण छप गया तथा जिन शब्दों में 'ष' वर्ण था उसके स्थान पर 'श' छप गया। 'भाषा' का रूप 'भाशा' हो गया। देवनागरी यूनिकोड के कारण अब स्थिति बदल गई है। हिन्दी में देवनागरी में टाइपिंग के लिए अनेक प्रकार के साधन उपलब्ध हैं। मंगल, रघु, संस्कृत 2003, अपराजिता आदि में से किसी फॉण्ट में टाइप किया जा सकता है, जो हिन्दी टाइपिंग नहीं जानते वे क्विलपैड, गूगल इण्डिक लिप्यन्तरण आदि में से किसी साइट पर जाकर रोमन लिपि में टाइप कर सकते हैं। रोमन वर्ण देवनारी वर्ण में बदल जाएगा अर्थात लिप्यन्तरित हो जाएगा।

ऑपरेटिंग सिस्टम में हिन्दी

विण्डोज के संस्करणों में हिन्दी में काम करने के लिए दो तरीके हैं। कुछ विण्डोज में उसके कंट्रोल पैनल में जाकर हिन्दी समर्थन सक्षम करना होता है, जबकि कुछ विण्डोज में हिन्दी भाषा का पैक पहले से इंस्टॉल्ड होता है अर्थात वे हिन्दी के लिए स्वत: समर्थन सक्षम होते हैं। उदाहरण के लिए माइक्रोसॉफ्ट विण्डोज के विण्डोज क्सपी, विण्डोज 2003 में कंट्रोल पैनल में जाकर हिन्दी समर्थन सक्षम करना होता है (इनमें कंट्रोल पैनल में जाकर रीजनल लैंग्वेज ऑप्शन्स में यूनिकोड को एक्टिवेट किया जाता है। हिन्दी (देवनागरी इंस्क्रिप्ट) का चयन करने के बाद कम्प्यूटर पर हिन्दी में वैसे ही काम किया जा सकता है, जैसे-रोमन लिपि से होता है। विण्डोज विस्ता, विण्डोज 7 में भारतीय भाषाओं के लिए स्वत: समर्थन सक्षम व्यवस्था है। भारतीय भाषाओं को ध्यान में रखकर सी-डेक ने बॉस लिनक्स निर्मित किया है। लिनक्स के सभी नए संस्करणों का ऑपरेटिंग सिस्टम हिन्दी भाषा में काम करने के लिए स्वत: समर्थन सक्षम है।

फॉण्ट परिवर्तक एवं लिप्यन्तरण

मेरे बहुत से लेख कृतिदेव फॉण्ट में हैं। अब इस फॉण्ट की सामग्री को फॉण्ट परिवर्तक साइट पर जाकर यूनिकोड में बदलना आसान हो गया है। फॉण्ट

परिवर्तक की कई साइटें हैं, जिन पर जाकर पुराने फॉण्टों में टाइप की हुई पाठ सामग्री को यूनिकोड में बदला जा सकता है। लिप्यन्तरण के औजारों से किसी एक भारतीय भाषा की लिपि में टाइप सामग्री को किसी अन्य भारतीय भाषा की लिपि में ऑनलाइन बदलकर पढ़ा जा सकता है।

शब्दकोश

अब हिन्दी में प्रत्येक प्रकार के शब्दकोश उपलब्ध हैं। हिन्दी शब्द तंत्र, शब्दमाला, विक्षनरी, ई-महाशब्दकोश, वर्धा हिन्दी शब्दकोश के अलावा हिन्दी विश्वकोश, हिन्दी यूनिकोड पाठ संग्रह, अरविंद समान्तर कोश आदि हैं। 'प्रबोधमहाशब्दकोश' के बाद नया महाशब्दकोश विकसित करने का काम प्रगति पर है। केन्द्रीय हिन्दी संस्थान ने श्री अरविन्द कुमार और उनकी पत्नी श्रीमती कुसुम कुमार से 'संस्थान अरविंद लेक्सीकॉन' बनवाया है, जिसमें नौ लाख से अधिक अभिव्यक्तियाँ हैं।

वर्तनी की जाँच (स्पैल चौकर), ईमेल, मोबाइल, चेट, सर्च इंजन

वर्तनी की जाँच (स्पैल चौकर) के लिए 'कुशल हिन्दी वर्तनी जाँचक', 'सक्षम हिन्दी वर्तनी परीश्रक' तथा 'ओपन सोर्स यूनिकोड वर्तनी परीक्षक तथा शोधक' हैं। ईमेल, मोबाइल, चेट, सर्च इंजन आदि पर हिन्दी उपलब्ध है। ईमेल के लिए जीमेल में हिन्दी की सुविधा सबसे अधिक हैं। निर्देश भी हिन्दी में हैं। चेट के लिए गूगल टॉक एवं याहू मैसेंजर में हिन्दी सुविधा है।

सी-डेक एवं राजभाषा के लिए सुविधाएँ

हम पूर्व में, एक अलग लेख में, पुणें की सी-डेक के द्वारा राजभाषा विभाग के लिए प्रबोध, प्रवीण तथा प्राज्ञ स्तर की परीक्षाओं के लिए कम्प्यूटर की सहायता से मल्टी मीडिया पद्धति से प्रशिक्षण सामग्री के निर्माण के सम्बंध में उल्लेख कर चुके हैं।प्रशिक्षण सामग्री का नाम लीला हिन्दी प्रबोध, लीला हिन्दी प्रवीण, लीला हिन्दी प्राज्ञ है। यह सामग्री भारत सरकार के राजभाषा विभाग की वेबसाइट पर सर्व साधारण के उपयोग के लिए उपलब्ध है। इस संस्था ने अन्य काम भी किए हैं। इसके द्वारा निर्मित 'मंत्र' सॉफ्टवेयर में अनुवाद की सुविधा है। हिंदी पाठ की किसी भी फाइल को 'प्रवाचक' हरीश भिमानी की आवाज में पढ़कर सुना देता है। 'श्रुतलेखन' आपकी आवाज में बोले हुए पाठ को

देवनागरी में रूपांतरित कर देता है। इस प्रकार राजभाषा हिन्दी के लिए अब पाठ से वाक (टैक्स्ट टू स्पीच) तथा वाक से पाठ (स्पीच टू टैक्स्ट) दोनों सुविधाएँ मौजूद हैं। श्रुतलेखन-राजभाषा तथा वाचान्तर-राजभाषा सॉफ्टवेयर बन गए हैं।

मशीनी अनुवाद, ओसीआर, हिन्दी भाषा शिक्षण, देवनागरी शिक्षण

मशीनी अनुवाद की सुविधा गूगल, बैबीलॉन, विकिभाषा पर उपलब्ध है। हम पहले उल्लेख कर चुके हैं कि सी-डेक ने भारत सरकार के कार्यालयों में राजभाषा के प्रयोग के लिए अंग्रेजी पाठ का हिन्दी में अनुवाद के लिए मशीनी अनुवाद की व्यवस्था कर दी है। इसके लिए 'मंत्र-राजभाषा' सॉफ्टवेयर निर्मित हो गया है।

मशीनी अनुवाद को सक्षम बनाने के लिए यह जरूरी है कि इन्टरनेट पर प्रत्येक विषय की सामग्री उपलब्ध हो। मशीनी अनुवाद सूचना निष्कर्षण पद्धति पर आधारित होता है अर्थात मशीन किसी भाषा में जो डॉटा उपलब्ध होता है, उसे याद कर लेती है और उस स्मृति क्षमता के आधार पर अनुवाद करती है। उसे जिस भाषा की जितनी अधिक सामग्री मिलती जाती है वह उस भाषा में अनुवाद करने के अपने मॉडल को उसी अनुपात में बदलती जाती है। सीखने एवं याद करने की प्रक्रिया सतत जारी रहती है। इस कारण जिस भाषा की जितनी सामग्री इन्टरनेट पर उपलब्ध होगी, उस भाषा का मशीनी अनुवाद उतना ही प्रभावी और सक्षम होगा।

देवनागरी वर्ण चिन्हक (OCR) बन गया है। हिन्दी के पाठ में शब्दों की आवृत्ति के लिए पहले शोधक वर्षों मेहनत करके हजारों लाखों चिटें बनाने का श्रम करते थे। अब सॉफ्टवेयर इस काम को बहुत कम समय में सहज सम्पन्न कर देता है। हिन्दी भाषा सीखने के लिए 'हिन्दी गुरु' है तथा देवनागरी लिपि सीखने के लिए 'अच्छा' है। देवनागरी में लिखे शब्दों अथवा शब्द समूहों को देवनागरी वर्ण-क्रम के अनुसार व्यवस्थित करने का ऑनलाइन प्रोग्राम मौजूद है। पाठ को तरह तरह से संसाधित करने के ऑनलाइन प्रोग्राम भी मौजूद हैं।

शब्द संसाधन एवं डाटाबेस प्रबंधन

देवनागरी में लिखे शब्दों अथवा शब्द समूहों को देवनागरी वर्ण-क्रम के अनुसार व्यवस्थित करने के ऑनलाइन प्रोग्राम मौजूद है। पाठ को तरह-तरह से संसाधित करने के ऑनलाइन प्रोग्राम भी मौजूद हैं।

प्रकाशन, वेबसाइट, ज्ञानकोष

डीटीपी प्रकाशन के लिए माइक्रोसॉफ्ट पब्लिशर अच्छा है। प्रकाशन सॉफ्टवेयर पैकेज उपलब्ध हैं। हिन्दी में वेबसाइट बनाना आसान हो गया है। वेबदुनिया, जागरण, प्रभासाक्षी और बीबीसी हिंदी के दैनिक पाठकों की संख्या बीस लाख से अधिक हो गई है। श्री आदित्य चौधरी ने विकीपीडिया की तरह 'भारतकोष' नामक पॉर्टल बनाया है। इसमें इतिहास, भूगोल, विज्ञान, धर्म, दर्शन, संस्कृति, पर्यटन, साहित्य, कला, राजनीति, जीवनी, उद्योग, व्यापार और खेल आदि विषयों पर पर्याप्त सामग्री है, जो काम महात्मा गाँधी अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय को करना चाहिए था उसे भारतकोश की टीम कर रही है। यह संतोष का विषय है कि केन्द्रीय हिन्दी संस्थान में 'लघु हिन्दी विश्वकोश परियोजना' पर काम हो रहा है।

सूचना प्रौद्यौगिकी के संदर्भ में हिन्दी की प्रगति एवं विकास

सूचना प्रौद्यौगिकी के संदर्भ में हिन्दी की प्रगति एवं विकास के लिए लेखक एक बात की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता है। व्यापार, तकनीकी और चिकित्सा आदि क्षेत्रों की अधिकांश बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ अपने माल की बिक्री के लिए सम्बंधित सॉफ्टवेयर ग्रीक, अरबी, चीनी सहित संसार की लगभग 30 से अधिक भाषाओं में बनाती हैं मगर वे हिन्दी भाषा का पैक नहीं बनाती। उनके प्रबंधक इसका कारण यह बताते हैं कि हम यह अनुभव करते हैं कि हमारी कम्पनी को हिन्दी के लिए भाषा पैक की जरूरत नहीं है। हमारे प्रतिनिधि भारतीय ग्राहकों से अंग्रेजी में आराम से बात कर लेते हैं अथवा हमारे भारतीय ग्राहक अंग्रेजी में ही बात करना पसंद करते हैं। यह स्थिति कुछ उसी प्रकार की है, जैसी लेखक तब अनुभव करता था जब वह रोमानिया के बुकारेस्त विश्वविद्यालय में हिन्दी का विजिटिंग प्रोफेसर था। उसकी कक्षा के हिन्दी पढ़ने वाले विद्यार्थी बड़े चाव से भारतीय राजदूतावास जाते थे, मगर वहाँ उनको हिन्दी नहीं अपितु अंग्रेजी सुनने को मिलती थी। हमने अंग्रेजी को इतना ओढ़ लिया है, जिसके कारण न केवल हिन्दी का, अपितु समस्त भारतीय भाषाओं का अपेक्षित विकास नहीं हो पा रहा है, जो कम्पनी ग्रीक एवं अरबी में सॉफ्टवेयर बना रही हैं, वे हिन्दी में सॉफ्टवेयर केवल इस कारण नहीं बनाती, क्योंकि उसके प्रबंधकों को पता है कि भारतीय उच्च वर्ग अंग्रेजी मोह से ग्रसित है। इसके कारण भारतीय भाषाओं में जो सॉफ्टवेयर स्वाभाविक ढंग से सहज बन जाते, वे नहीं बन रहे हैं।

भारतीय भाषाओं की भाषिक प्रौद्योगिकी पिछड़ रही है। इस मानसिकता में जिस गति से बदलाव आएगा उसी गति से हमारी भारतीय भाषाओं की भाषिक प्रौद्योगिकी का भी विकास होगा। हम हिन्दी के संदर्भ में, इस बात को दोहराना चाहते हैं कि हिन्दी में काम करने वालों को अधिक से अधिक सामग्री इन्टरनेट पर डालनी चाहिए। लेखक ने मशीनी अनुवाद के संदर्भ में, यह निवेदित किया था कि मशीनी अनुवाद को सक्षम बनाने के लिए यह जरूरी है कि इन्टरनेट पर हिन्दी में प्रत्येक विषय की सामग्री उपलब्ध हो। यह हिन्दी की भाषिक प्रौद्योगिकी के विकास के व्यापक संदर्भ में भी उतनी ही सत्य है, जब प्रयोक्ता को हिन्दी में डॉटा उपलब्ध होगा तो उसकी अंग्रेजी के प्रति निर्भरता में कमी आएगी तथा अंग्रेजी के प्रति हमारे उच्च वर्ग की अंध भक्ति में भी कमी आएगी।

वर्तमान की स्थिति भले ही उत्साहवर्धक न हो किन्तु हिन्दी प्रौद्योगिकी का भविष्य निराशाजनक नहीं है। हिन्दी की प्रगति एवं विकास को अब कोई ताकत रोक नहीं पाएगी। वर्तमान में, कम्प्यूटरों के कीबोर्ड रोमन वर्णों में हैं तथा उनका विकास अंग्रजी भाषा को ध्यान में रखकर किया गया है। आम आदमी को इसी कारण कम्प्यूटर पर अंग्रेजी अथवा रोमन लिपि में काम करने में सुविधा का अनुभव होता है। निकट भविष्य में कम्प्यूटर संसार की लगभग तीस चालीस भाषाओं के लिखित पाठ को भाषा में बोलकर सुना देगा तथा उन भाषाओं के प्रयोक्ता की भाषा को सुनकर उसे लिखित पाठ में बदल देगा। ऐसी स्थिति में, कम्प्यूटर पर काम करने में भाषा की कोई बाधा नहीं रह जाएगी। एक भाषा के पाठ को मशीनी अनुवाद से दूसरी भाषा में भी बदला जा सकेगा, उन भाषाओं में परस्पर वाक से पाठ तथा पाठ से वाक में अंतरण बहुत सहज हो जाएगा। भाषा विशेष के ज्ञान का रुतबा समाप्त हो जाएगा।

हिंदी भाषा के स्वरूप

हिंदी के प्रकृतिक रूप पाँच हैं–

(क) मातृभाषा हिंदी: हिंदी का मातृभाषिक प्रदेश दिल्ली और दिल्ली से लगा उत्तर प्रदेश का जिला मेरठ मात्रा है। वस्तुत: मातृभाषा वह भाषा है, जिसे व्यक्ति अपनी माता की गोद में सीखता है, अर्थात् उसे माँ-बाप, उसे अड़ोस-पड़ोस, उसके अपने संस्कार की भाषा मातृभाषा होती है। मातृभाषा की पहचान के संबंध में गुलाब राय ने अपने लेख "मातृभाषा की महत्ता" में लिखा है कि यदि किसी की मातृभाषा का पता करना हो और, यह किसी भी प्रकार

पता नहीं चल पाए तो अचानक पीछे से उसकी पीठ पर मुक्का मारो। ऐसी स्थिति में जिस भाषा में वह अपनी आह व्यक्त करे, वही उसकी मातृभाषा होगी। कारण, कोई कितना भी विदेशी भाषा का ज्ञान रखने वाला हो, अतिशय सुख अथवा अतिशय दु:ख की अवस्था में वह अपनी मातृभाषा में ही अपने हृदय का भाव व्यक्त करेगा। यह एक अजीब-सी बात देखने को मिलती है कि जो हिंदी मातृभाषा के रूप में मात्रा दिल्ली और उससे लगे मेरठ जिले एवं उसके आस-पास के एक छोटे से भू-भाग में प्रयोग में रही, द्वितीय भाषा के रूप में लगभग सारे भारत के विस्तार में प्राजल संपर्क का एक मात्रा साधन बन चुकी है।

(ख) संपर्क भाषा हिंदी–एक भाषा भाषी जिसे भाषा के माध्यम से किसी दूसरी भाषा के बोलने वालों के साथ संपर्क स्थापित कर सके, उसे संपर्क भाषा कहते हैं। ऐसी भाषा मात्रा दो या दो से अधिक भिन्न-भिन्न भाषा भाषियों के बीच संपर्क का माध्यम नहीं बनती जो एक दूसरे की भाषा से परिचित नहीं हैं, अपतु दो या दो से अधिक भिन्न-भिन्न भाषा भाषी राज्यों के बीच तथा केंद्र और राज्यों के बीच भी संपर्क स्थापित करने का माध्यम बन सकती है। भारत के ही प्राचीन इतिहास पर यदि हम नजर डालते हैं तो पाते हैं कि यहाँ हर युग में राष्ट्र की एक प्रमुख भाषा संपर्क भाषा की भूमिका का निर्वाह करती रही है। आधुनिक भारतीय भाषाओं के उद्‌भव और विकास से पहले संपर्क भाषा की इसी परंपरा के क्रम में हम संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश का प्राजल प्रयोग पाते हैं। बाद में, मुगल शासन, देशी राजाओं और अंग्रेजी शासन काल में हिंदी को संपूर्ण रूप से तो नहीं, किंतु आंशिक रूप से संपर्क भाषा के रूप में व्यवहार किया गया। आजादी की लड़ाई के समय में गाँधी और सुभाष जैसे–गैर हिंदी भाषी नेताओं ने देश के विभिन्न क्षेत्रों में क्रांति संदेश देने और दो भिन्न-भाषियों के बीच संपर्क के लिए हिंदी को संपर्क भाषा के रूप में अपनाया। आजादी के बाद हमारी यहां हिंदी देश की सर्वमान्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी है।

(ग) राष्ट्र भाषा हिंदी–राष्ट्रभाषा का अर्थ है राष्ट्र की भाषा। इस तरह राष्ट्र की जितनी भी भाषाएं हैं, सभी राष्ट्रभाषा है। फलस्वरूप भारत के संविधान की अष्टम अनुसूची में सम्मिलित 22 भाषाओं के अतिरिक्त देश की दर्जनों अन्य भाषाएं भी, जो अपने अपने क्षेत्रों में लोक सम्प्रेषण के माध्यम है हमारी राष्ट्र भाषाएं है। यही कारण है कि भारत के संविधान में इनमें से किसी भी एक भाषा को राष्ट्रभाषा के नाम से अभिहित नहीं किया गया है। यही राजभाषा, संघभाषा

अथवा संपर्क भाषा जैसे–शब्दों का ही व्यवहार हुआ है, परंतु इतना होते हुए भी एक विशिष्ट अर्थ में राष्ट्रभाषा की संकल्पना और उसकी सार्थकता से हम इन्कार नहीं कर सकते और इस सार्थकता एवं यथार्थता के हकदार भी अपनी स्थिति के चलते हिंदी हो रही है।

राजभाषा अथवा संपर्क भाषा अपनी एक सीमा में परिधि में बंधी है, परन्तु, उस परिधि की सीमा के आर–पार विस्तृत व्यापक आयामों में परिव्याप्त, राष्ट्र के प्रशासन समस्त कार्य व्यापार, व्यवसाय रीति–नीति तकनीक तथा संस्कति और परंपरा को अभिव्यक्ति देने वाली तथा विश्व के विभिन्न देशों तक इन्हें पहुचाने में समर्थ राष्ट्र की एक सुगम सुबोध एवं सशक्त भाषा राष्ट्र भाषा होती है। भारत में इस रूप में राष्ट्रभाषा के स्वरूप में भी हिंदी स्वभावत: प्रतिष्ठित है। वस्तुत: राष्ट्रभाषा राष्ट्र की वह भाषा होती है, जो अपने व्यापक परिवेश और विकासोन्मुख प्रवर्धमान शक्तियों के चलते अपनी क्षेत्रीयता की सीमा से उपर उठते हुए देश के विभिन्न क्षेत्रों संवेदन स्पंदन को अपनी आत्मा में समेट कर उसे प्रकाश, अभिव्यक्ति देती है और जो विभिन्न क्षेत्रों और विभिन्न भाषा भाषियों के बीच भावनात्मक ऐक्य स्थापित करने में सेतु का काम करता है। हिंदी इन दोनों ही दायित्वों का बखूबी निर्वाह कर रही है और इसलिए इसकी राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठा किसी कृत्रिम प्रयास का नहीं, स्वाभाविक गति का परिणाम है–

(घ) राजभाषा हिंदी–राजभाषा का अर्थ है वह भाषा जो राजकाज, प्रशासन–तंत्र के कार्य के संपादन को गतिविधि की कार्यकलापों की भाषा हो जैसे–हर देश के अपने प्रतीक स्वरूप झंडे होते है और उसे राष्ट्रध्वज के नाम से पुकारते हैं, उसी तरह हर देश की समग्रता की अभिव्यक्ति माध्यम के रूप में सार्वदेशिक स्वरूप रखने वाली उसकी राजकीय गतिविधि के संपादन की एक भाषा भी होती है और उस भाषा को राजभाषा की संज्ञा दी जाती है, परंतु ऐसे संघ राष्ट्रों में जहां देश राष्ट के भिन्न–भिन्न राज्यों का अलग–अलग राजभाषाएं है, वहां भाषा संघ की राजभाषा होती है, जो आमतौर पर समस्त देश में अथवा देश के अधिकांश भागों में परस्पर भिन्न–भिन्न भाष भाषियों के बीच संपर्क माध्यम का कार्य तो करती ही है, देश की शिक्षा, देश का ज्ञान विज्ञान, रीति–नीति, कला संस्कृति आदि से संबंधित समस्त कार्यव्यापारी का निर्वाह भी करती है। हिंदी बखूबी इन दायित्वों का निर्वाह करती है। यह आजादी से पहले मुगल शासन काल में और अंग्रेजी शासन काल में अनेक देशी राजाओं के राज्य

की राजभाषा देश के व्यापक क्षेत्रों की संपर्क भाषा तथा मुगल एवं अंग्रेजी शासन में ऊपरी तौर पर द्वितीय राजभाषा की तरह प्रयोग की जाती रही।

आजादी की लड़ाई में इसे विभिन्न भाषाभाषी सेनानियों के बीच भावों विचारों एवं कार्ययोजनाओं के संपादन के लिए संपर्क भाषा के रूप में अपनाया गया। यही कारण था कि संविधान सभा ने 14 सितंबर 1949 को इस प्राजल भारतीय संपर्क भाषा एवं राष्ट्रभाषा को संघ की राजभाषा बनाने का संकल्प पारित किया।

भारत के संविधान के अनुसार "देवनागरी लिपि में हिंदी संघ की राजभाषा होगी। "

वस्तुतः संविधान की अष्टम अनुसूची में सम्मिलित देश की बाइसों (22) भाषाएं देश की राजभाषाएं है, परंतु जब हम पूरे देश को ध्यान में रखकर राजभाषा की चर्चा करते हैं तो उसका एक मात्रा अर्थ होता है, संघ की राजभाषा जो संघ के प्रशासनिक कार्यों संघ और राज्यों के बीच संपर्क तथा अपने देश का दूसरों देशों के साथ राजनायिक संबंध और परस्पर आदान-प्रदान के माध्यम के रूप में प्रायुक्त होता है। यही हिंदी भारत के संघ की राजभाषा है।

(ङ) बहुराष्ट्रीय भाषा हिंदी अथवा विश्वात्मक भाषा हिंदी–बहुराष्ट्रीय भाषा अथवा विश्वात्मक भाषा से उस भाषा का बोध होता है, जो एक से अधिक देशें में प्रयोग किया जाता है। हिंदी गुयाना, फिजी, सुरिनाम, मॉरीशस त्रिनिदाद आदि अनेक देशों में बहुसंख्यक जनता के बीच संपर्क भाषा के रूप में प्रयोग की जाती है। भारत के पड़ोसी देश नेपाल, बर्मा, श्रीलंका आदि के अतिरिक्त इंग्लैंड अमेरिका, कनाडा, अफ्रिका, आदि देशों में काभी संख्या में एशियाई लोग हैं, जिनके बीच हिंदी संपर्क भाषा है। मुस्लिम देशों में तो हिंदी इतनी परिचित एवं सुलभ है कि वे अनेक हिंदी सीरियल बड़े चाव से और नियमित रूप से देखते हैं। विश्व के अधिकांश बड़े देशों में विश्वविद्यालय स्तर तक हिंदी का पाठ्यक्रम है और उसमें काफी छात्र-छात्राएं अध्ययनरत है। आज. विश्वात्मक गणना के आधार पर हिंदी विश्व में सबसे अधिक बोली समझी जाने वाली भाषाओं में पहले स्थान पर है। तात्पर्य यह है कि विश्व में किसी एक भाषा बोलने समझने वालों में हिंदी बोलने समझने वाले सर्वाधिक लोग है।

भारत में आद्योगित उदारीकरण के फलस्वरूप बहुराष्ट्रीय कंपनियों के आगमन और उनके द्वारा इस देश में अपने व्यवसाय के प्रसार के उद्देश्य से देश की व्यापक जन भाषा हिंदी को व्यावसायिक संपर्क भाषा के रूप में प्रयोग तथा

टी.वी चैनलों क्षरा हिंदी के अनेक कार्यक्रमों का एक साथ भारत अरब इंग्लैंड, अमेरिका आदि में प्रसारण से पहले विश्व के अनेक देशों में हिंदी का प्रयोग होने की जानकारी के बावजूद इस भाषा के बहुराष्ट्रीय भाषिक स्वरूप अथवा यूँ कहें कि विश्वात्मक स्वरूप से आम तौर पर इस देश के बुद्धिजीवी भी परिचित नहीं थे। विश्व स्तर पर सबसे अधिक लोगों द्वारा जानी समझी जाने वाली भाषाओं के बीच प्रथम स्थान ग्रहण करने के पश्चात भी हमारे पढ़े-लिखे भारतीय की मानस दशा कुछ ऐसी हो चुकी है कि हम बुद्धिजीवी भी हिंदी के विश्वात्मक स्वरूप को अपने मानस-पटल पर उतार पाने में बड़ी कठिनाई अनुभव कर रहे हैं, जन सामान्य की तो बात ही क्या? फिर भी आज हिंदी के विश्वात्मक प्रकृति से हम अपना पल्ला नहीं झाड़ सकते, न ही इस तथ्य को झुठला सकते हैं।

9

हिन्दी भाषा और साहित्य

हिन्दी भारत और विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं में से एक है। उसकी जड़ें प्राचीन भारत की संस्कृत भाषा में तलाशी जा सकती हैं, परंतु हिन्दी साहित्य की जड़ें मध्ययुगीन भारत की अवधी, मागधी, अर्धमगधी तथा मारवाड़ी जैसी भाषाओं के साहित्य में पाई जाती हैं। हिंदी में गद्य का विकास बहुत बाद में हुआ और इसने अपनी शुरुआत कविता के माध्यम से जो कि ज्यादातर लोकभाषा के साथ प्रयोग कर विकसित की गई।हिंदी का आरंभिक साहित्य अपभ्रंश में मिलता है। हिंदी में तीन प्रकार का साहित्य मिलता है। गद्य पद्य और चम्पू। हिंदी की पहली रचना कौन सी है इस विषय में विवाद है, लेकिन ज्यादातर साहित्यकार देवकीनन्दन खत्री द्वारा लिखे गये उपन्यास चंद्रकांता को हिन्दी की पहली प्रामाणिक गद्य रचना मानते हैं।

भाषा वैज्ञानिक हमें शब्द देते हैं, लेकिन साहित्यकार उन शब्दों को चुनकर एक रचना को जन्म देते हैं। भाषा वैज्ञानिक वाक्य संरचना का ज्ञान कराते हैं, लेकिन साहित्यकार वाक्य का अर्थ सुरक्षित रखते हुए रचना में लालित्य पैदा करते हैं। भाषा वैज्ञानिक लेखन में भाषा अनुशासन का पाठ पढ़ाते हैं, लेकिन साहित्यकार किसी भी भाषायी अनुशासन से परे शब्दों के जोड़-तोड़ के जादू से पाठक के दिलों में समा जाते हैं।

भाषा और साहित्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। भाषा है तो साहित्य है और जब साहित्य होता है तब भाषा स्वत: ही विकासमान होती है। वर्तमान

में हिन्दी भाषा दुनिया भर में अपनी पहचान बना चुकी है। इस विकास का एकमात्रा आधार है समन्वय। हिन्दी भाषा ने न केवल भारत की अपितु विश्व की अनेक भाषाओं के शब्दों से अपने आपको परिपूर्ण किया और आज भी अनेक शब्दों को अपने अंदर समाहित कर रही है। यदि हम हिन्दी भाषा और साहित्य के इतिहास पर दृष्टि डालें तो अनेक पहलू निकलकर आएँगे।

हिन्दी भाषा का विकास क्रम

हिन्दी साहित्य की दृष्टि से सम्वत् 769 से 1318 के काल को आदिकाल की संज्ञा दी गयी है। इस काल में संस्कृत, अपभ्रंश (प्राकृत एवं पालि) एवं हिन्दी भाषा, साहित्य की भाषाएँ थीं। संस्कृत उच्च एवं राजवर्ग की, अपभ्रंश धर्म प्रसार की एवं हिन्दी लोक प्रवृत्ति की भाषा बन गयी थी। इस काल में संस्कृत में व्याकरण का अनुशासन चरम पर था इस कारण संस्कृत भाषा का विस्तार ठहर गया और धर्म प्रसार के लिए सरल भाषा का प्रयोग करने की आवश्यकता अनुभव की गयी इस कारण अपभ्रंश या प्राकृत भाषा का निर्माण होने लगा। इस काल में तुर्की, फारसी और अरबी भाषा भारत में आ चुकी थी। भारत में अनेक क्षेत्रीय भाषाएँ भी विद्यमान थी, अतः संस्कृत और प्राकृत के बाद हिन्दी भाषा तीव्रता से विस्तार लेने लगी। हिन्दी भाषा चूँकि सभी भाषाओं के मेल से बनी थी इस कारण इसमें शब्दों की प्रचुरता रही और इसी कारण यह भाषा आगे चलकर साहित्य की भाषा बनी।

अंग्रजों के आगमन के बाद सन् 1780 से अंग्रेजी भाषा को स्थापित करने के लिए शिक्षा प्रणाली विकसित की गयी और कॉलेज खुलने प्रारम्भ हुए, अतः कुछ नवीन शब्द अंग्रेजी के भी हिन्दी भाषा में सम्मिलित हो गए। विद्वानों का मत है कि संस्कृत भाषा में जब से व्याकरण की अनिवार्यता लागू की गयी तब से संस्कृत भाषा के विस्तार पर विराम लग गया, अतः हिन्दी भाषा के विकास में अन्य भाषाओं एवं व्याकरण का कठोर अनुशासन नहीं होने से वह वर्तमान तक विस्तार लेती चली गयी। स्वतंत्रता के समय हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में मान्यता मिली। यही कारण है कि आज हिन्दी सम्पूर्ण भारत में बोली और समझी जा रही है। हिन्दी आज भारत में 18 करोड लोगों की मातृभाषा है और 30 करोड़ लोगों ने द्वितीय भाषा के रूप में हिन्दी को स्थान दिया है। विदेशों में भी अमेरिका, मारिशस, साउथ अफ्रीका, यमन, युगाण्डा, सिंगापुर, नेपाल, न्यूजीलैण्ड, जर्मनी आदि देशों में भी भारतीय मूल के निवासियों की भाषा हिन्दी

ही है। भारत से गए अप्रवासी भारतीयों ने भी हिन्दी को अपनी भाषा बनाया हुआ है, अत: आज हिन्दी दुनिया के प्रत्येक कोने में बोली जाती है। इतना ही नहीं 1999 के एक सर्वेक्षण के आधार पर हिन्दी विश्व में बोली जाने वाली भाषाओं में पाँचवें स्थान पर है और 1998 के एक अन्य सर्वेक्षण के अनुसार हिन्दी भाषा द्वितीय स्थान पर है। हिन्दी में तत्सम, तद्भव और देशज शब्दों का भी स्थान है तथा अंग्रेजी के शब्दों को भी सम्मिलित करने के बाद इसकी शब्द संख्या का भी निरन्तर विस्तार हो रहा है, अत: आज हिन्दी में सर्वाधिक शब्द संख्या है।

हिन्दी भाषा के विभिन्न काल

डॉ. नगेन्द्र की पुस्तक ?हिन्दी साहित्य का इतिहास? और डॉ. लक्ष्मी लाल वैरागी की पुस्तक ?हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास? तथा इन्टरनेट पर उपलब्ध जानकारी के अनुसार हिन्दी भाषा के तीन प्रमुख काल माने जाते हैं।

आदिकाल–डॉ. नगेन्द्र के अनुसार संस्कृत भाषा का काल ईसा पूर्व 1500 से 500 ई.पू. का है, पालि भाषा का काल 500 से पहली ईसवी तक, अपभ्रंश काल 500 से 1000 ई.तक और हिन्दी का काल 1000 ई.से आगे का काल है, अत: हिन्दी का आदिकाल 1000 से 1500 ई.माना जाता है।

मध्यकाल–1500 से 1800 ई.तक का काल मध्यकाल माना गया है।

आधुनिक काल–1800 से वर्तमान तक का काल आधुनिक काल माना गया है। **डॉ. नगेन्द्र के अनुसार** ?स्वतंत्रता के समय अन्य देश भी स्वतंत्र हुए और लोकतंत्र तथा साम्यवादी सरकारें समान रूप से निराशाजनक सिद्ध हुई। व्यक्ति या तो व्यवस्था का पुर्जा हो गया या प्रविधि का। उसका अपना व्यक्तित्त्व और पहचान खो गयी। इस खोऐ हुए व्यक्तित्त्व की खोज प्रक्रिया का नाम आधुनिकता है।?

डॉ. वैरागी ने भी अपनी पुस्तक में हिन्दी के इन कालों की व्याख्या की है और दोनों ही विद्वानों ने एक अलग व्याख्या भी की है, जिसके अनुसार निम्न कालखण्डों का विवरण दिया है- रीतिकाल, वीरगाथाकाल, चारणकाल, सिद्ध सामन्त काल, छायावाद और प्रगतिवादी काल।

हिन्दी भाषा जब अस्तित्त्व में आयी तब भारतीय राजनीति का संक्रमण काल था। इस कारण भारतीय साहित्य या हिन्दी साहित्य भी प्रभावित हुआ। राजनैतिक गुलामी के कारण साहित्य पर बहुत प्रभाव पड़ा। जहाँ साहित्य समाज की वास्तविकता से जनता को अवगत कराता था, उनका मार्गदर्शन करता था,

प्रेरित करता था, वहीं साहित्य चारणों की परम्परा में चला गया। मुगलकाल में रीति सिद्ध और रीति मुक्त कवियों का उदय हुआ। अंग्रेजों के काल में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का युग प्रारम्भ हुआ जिसे आधुनिक हिन्दी का काल भी कहा जाता है। भारतेन्दु का काल 1850 से 1884 का काल माना जाता है और इसके बाद प्रेमचन्द, जैनेन्द्र, जयशंकर प्रसाद, फणीश्वर नाथ रेणु, सचिदानन्द वात्स्यायन, महादेवी आदि का काल रहा। इस काल में अंग्रेजों ने अंग्रेजी और ईसाइयत के प्रचार के लिए कॉलेज खोलने प्रारम्भ किए। समाचार पत्रों ने भी अपनी जगह बनाना प्रारम्भ किया, इस कारण साहित्य पद्य से निकलकर गद्य तक आ गया, अतः भारतेन्दु के काल को आधुनिक काल कहा गया। इसमें निबंध, नाटक, एकांकी, उपन्यास, कहानी, संस्मरण, रेखा चित्र, समालोचना आदि का विकास हुआ।

छायावाद का काल 1918 से 1936 का काल माना गया। इस काल में आत्माभिव्यक्त स्वच्छंद काव्य की रचना हुई। श्री मुकुटधर पाण्डे ने कहा कि यह काव्य नहीं है, अपितु कविता की छाया मात्रा है। इसी नाम को आगे चलकर स्वीकृति मिली और छायावाद के नाम से एक कालखण्ड जाना गया।

छायावाद के बाद प्रगतिवाद आया। डॉ. वैरागी लिखते हैं कि? एक वाक्य में कहें तो, जो चिन्तन के क्षेत्र में मार्क्सवाद है, वही साहित्य के क्षेत्र में प्रगतिवाद है, साम्यवाद की दिशा में मार्क्सवाद के सहारे आगे बढ़ना प्रगतिवाद है। प्रगतिवादी साहित्य का लक्ष्य साम्यवादी विचारधारा का प्रचार करना, शोषित वर्ग की दुरवस्था का वर्णन करना और शोषण तथा शोषित वर्ग के विरुद्ध शोषितों को उत्तेजित करना है।

स्वतंत्रता के बाद जब हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा मिला, तब अनेक हिन्दी भाषा के साहित्यकारों का जन्म हुआ, लेकिन इस काल में प्रगतिवादी साहित्य का बोलबाला रहा। यह वाद सामूहिकतावाद और निश्चयवाद के विरुद्ध खड़ा था। उनकी दृष्टि में मनुष्य स्वतंत्र था। यहाँ मैं एक घटना के प्रति ध्यान आकृष्ट करना चाहूँगी, जिसे डॉ. नगेन्द्र ने अपनी पुस्तक में भी लिखा है, कि 1893 में जब शिकागो में विश्वधर्म संसद को विवेकानन्द ने सम्बोधित किया तब न्यूयार्क हेराल्ड ट्रिब्यून ने लिखा था कि विश्व धर्म संसद में विवेकानन्द सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति थे। उनको सुनने के बाद ऐसा लगता था कि उस महान् देश में धार्मिक मिशनों को भेजना कितनी बड़ी मूर्खता है। डॉ. नगेन्द्र आगे लिखते हैं कि पश्चिम की भौतिकता से चमत्कृत देशवासियों को पहली बार यह अहसास हुआ

कि हमारी अपनी परम्परा में भी कुछ ऐसी वस्तुएँ हैं, जिन्हें संसार के समक्ष गौरवपूर्ण ढंग से रखा जा सकता है, अत: जब इस देश में प्रगतिवाद के नाम पर धर्मबंधन से मुक्त स्वतंत्रता को साहित्य में स्थान मिल रहा था, उस समय एक वर्ग भारतीय श्रेष्ठ परम्पराओं एवं संस्कृति के सिद्धान्तों को साहित्य में स्थान दे रहा था।

वर्तमान में एक तरफ प्रगतिवाद के नाम पर व्यक्ति की सम्पूर्ण स्वतंत्रता की बात की जा रही है तो दूसरी तरफ भारतीय संस्कृति के अनुरूप परिवारवाद को व्यक्ति से बड़ा माना जा रहा है। प्रगतिवाद के कारण ही शोषित और शोषक की नवीन परिभाषाएँ दी गयीं और पश्चिम को शोषण रहित, स्वतंत्र समाज का दर्जा दिया गया और भारत को शोषक एवं पुरातनपंथी का दर्जा दिया गया। यहाँ एक बात और विचारणीय है कि लार्ड कॉर्नवालिस ने सन् 1793 में बंगाल, बिहार, उड़ीसा में जमींदारी प्रथा लागू कर जमीन को व्यक्तिगत सम्पत्ति के रूप में बदल दिया। इसी के साथ पंचायत व्यवस्था भी समाप्त की गयी और उसकी जगह कचहरी आ गयी। इसी तरह जंगलों पर भी जनजातीय समाज का अधिकार समाप्त कर दिया गया, अत: भारतीय समाज में शोषण की परम्परा अंग्रेजों के काल के बाद प्रारम्भ हुई। आज प्रगतिवादी भारतीय परम्पराओं को शोषण का कारण मानते हैं, जबकि भारतीय परम्परा में न तो महिलाओं को पर्दे में रखा जाता था और न ही मैला ढोने की परम्परा थी। ये दोनों ही परम्परा मुगलकाल के बाद आयीं।

अत: वर्तमान साहित्यकार को इतिहास का ज्ञान हुए बिना वह प्रगतिवाद की व्याख्या नहीं कर सकता। विवेकानन्द ने इसीलिए दुनिया को भारतीय संस्कृति का ज्ञान कराया था। आज इसी प्रकार महिला विमर्श और दलित विमर्श के नाम पर एक वर्ग संघर्ष खड़ा किया जा रहा है। मजेदार बात तो यह है कि महिला विमर्श, पुरुष लिख रहे हैं और दलित विमर्श अदलित लिख रहे हैं। साहित्य समाज के मध्य एकता स्थापित करने की बात करता है, लेकिन आज प्रगतिवाद के नाम पर संघर्ष को स्थापित करने की बात की जा रही है। इसी कारण महिलाओं और दलितों के अधिकारों को दिलाने के स्थान पर महिलाओं को केवल महिला बनाना और दलितों को भी दलित ही रखते हुए वर्ग संघर्ष को हवा दी जा रही है।

अन्त में, मैं इतना ही कहना चाहूँगी कि हिन्दी भाषा और साहित्य वर्तमान युग की आवश्यकता है। आज के युवा को जब तक हिन्दी साहित्य के साथ नहीं जोड़ा जाएगा, तब तक दुनिया में शान्ति स्थापित नहीं की जा सकती। प्रगतिवाद

के नाम पर व्यक्ति की भौतिक और मानसिक प्रगति की बात की जानी चाहिए और इसके लिए भारतीय साहित्य का पुनर्लेखन आवश्यक है।

हिन्दी का विकासशील स्वरूप

विकासशीलता भाषा का प्रकृत गुण है, उसकी जीवंतता का लक्षण है, जीवन के नानाविष व्यापारों की अभिव्यक्ति के लिए व्यवहृत होने वाली वह प्रत्येक भाषा जो अपना संसर्ग दूसरी भाषाओं से बनाए रखती है और ज्ञान के नित नूतन संदर्भों से जुड़ती रहती है, अपनी जीवंतता बनाए रखती है और विकसित होती रहती है। दूसरे शब्दों में, व्यवहारधर्मिता और गतिमयता भाषा की विकासशीलता को सूचित करने वाली दो प्रमुख विशेषताएं हैं।

पदार्थ अथवा विकास की दो गतियां अथवा दिशाएं हैं–

(1) प्रौढ़ अथवा शसक्त होते जाना और

(2) प्रकृति द्वारा निर्धारित ऊँचाई तक बढ़ना। चूंकि मनुष्य बुद्धि सम्पन्न चेतन प्राणी है, उसकी प्रौढ़ता और विकास का पता उसके बुद्धि कौशल, विवेक, चितन, आचार व्यवहार और उसकी सभ्यता से लगता है और दूसरी ओर उसके अंगों की माप से उसके शारीरिक विकास का निश्चय होता है। दोनों का समुचित विकास ही सच्चा व्यक्तित्त्व निर्माता है।

भाषा का विकास भी इसी प्रकार की दो दिशाओं में होता है। एक ओर वह प्रौढ़ होती चलती है और दूसरी ओर उसका प्रसार होता जाता है। पहली स्थिति उसकी अर्थगर्भिता की सूचक है और दूसरी उसकी व्यापक स्वीकृति की। पहली से यदि उसके अंतरंग विकास का द्योतन होता है तो दूसरी से बहिरंग का। दोनों के सम्मिलन से भाषा समृद्ध और विशेष प्रभावशालिनी बनती है।

हिन्दी के विकासशील होने का अर्थ भी यही है कि वह एक ओर अपने अंतरंग का विकास करती चले और दूसरी ओर व्यापक स्वीकृति पाती जाए। यों सामान्यत: यह आशा किसी भी भाषा से की जानी चाहिए, किंतु हिन्दी पर इसका विशेष दायित्व इसलिए है कि भारतीय संविधान के अनुसार उसे संघ की राजभाषा और विभिन्न प्रदेशों के बीच सम्पर्क भाषा की भूमिका भी निभानी है। स्वाभाविक है कि ऐसी स्थिति में यह प्रश्न उठे कि हिन्दी किन दिशाओं में और कितनी विकसित है या कि उससे विकास के लिए क्या अपेक्षाएं हो सकती हैं। हिन्दी इन अपेक्षाओं को कहां तक पूरा कर पा रही है, या उसके लिए कौन से साधक या बाधक तत्त्व हैं और उनसे कैसे निपटा जाए।

भाषा के विकास की जिन दो स्थितियों की ऊपर चर्चा की गई है, उन्हें हम क्रमशः गुणात्मक विकास तथा संख्यात्मक विकास भी कह सकते हैं। निसंदेह संख्यात्मक विकास भी किसी भाषा के इतिहास में, उसके अधिकार का निश्चायक होता है, किंतु उसकी स्थिति एक ऐसे उपकारक तत्त्व की सी है, जिसकी सत्ता किसी दूसरे तत्त्व की तुलना में गौण महत्व की होती है। भाषा के संदर्भ में गुणात्मक ही प्रधान रूप से महत्वपूर्ण है। इसके बिना कोई भाषा अधिकारिक प्रयोक्ताओं को सहयोग प्राप्त नहीं कर सकती। हिन्दी के पक्ष में संख्यात्मकता का बड़ा बल रहा है और आज भी वह है, किंतु न तो सदैव उसी को एकमात्रा आधार मानकर उस पर निर्भर रहा जा सकता है और न इसे भुलाया जा सकता है कि उसके संख्यात्मक विकास में पहले भी उसका गुणात्मक विकास ही कारण था। आज की स्थिति में उस दिशा में उसका विकास और भी अधिक वांछित है।

गुणात्क विकास की दो विशेषताएं हो सकती हैं,

ललित साहित्य के रूप में उसकी प्रौढ़ता का विकास और

ज्ञानात्मक साहित्य की रचना और उसकी अभिव्यक्ति की क्षमता का विकास।

आज जिस संदर्भ में हिन्दी का विचार किया जा रहा है, उसमें ललित साहित्य के रूप में उसकी प्रौढ़ता का दर्शन उतना महत्वपूर्ण नहीं है। यह बात इस संदर्भ में बहुत प्रासंगिक नहीं है कि हिन्दी राष्ट्र की इस या उस भाषा की तुलना में कम सशक्त और प्रौढ़ है। राष्ट्र के सामने जो चुनौती है वह ललित साहित्य को लेकर नहीं है, व्यावहारिक धरातल पर भाषिक संपर्क और उसके माध्यम से पारस्परिक सहयोग की भूमि तैयार करने की है।

ललित साहित्य हो अथवा ज्ञानात्मक, दोनों ही संदर्भों में, किसी भाषा को दो स्तरों पर विकसित होना ओर अपनी क्षमता का परिचय देना पड़ता है। एक के अंतर्गत साहित्य की नाना प्रकार की विधाएं रखी जा सकती हैं और देखा जा सकता है कि उसमें अधिकाधिक कितनी विधाओं में रचना हो रही है, दूसरा है विशेष विधाओं के लिए उपयुक्त भाषा और शब्दावली का विधान। हिन्दी के विकास के प्रसंग में भी इन दोनों बातों का समान महत्व है।

मनुष्य की बुद्धि ने जीवन और जगत के रहस्य को जानने और और उसकी अंतर्निहित शक्तियों का उपयोग करने का सदियों पहले से जो उपक्रम किया है, उसके परिणाम स्वरूप अनेकविष ज्ञान शाखाओं के द्वार उन्मुक्त हुए हैं। दर्शन,

गणित, ज्योतिष आयुर्वेद, कला शिल्प तथा खगोल विद्या आदि अनेक विद्या शाखाओं तक मनुष्य की पहुंच बहुत पहले ही हो चुकी थी। कालापसरण के साथ ज्यों-ज्यों मनुष्य के रागात्मक संबंध बनते बिगड़ते गये उसके जीवन की संकुलता बढ़ती गई और प्रकृति तथा मानव जीवन को लेकर स्वयं मनुष्य नए रहस्यों में उलझता और नए आविष्कार करता चला गया। यंत्र युग ने मनुष्य की अनेक पुरानी अवधारणाओं को बदला और उनकी जगह नई विधाओं तथा नई तकनीक ने ले ली। परिणामत: न केवल अनेक नई शाखाओं का विकास हुआ, या किसी एक विद्याशाखा के अन्तर्गत गृहीत विचारों में से कुछ स्वतुत्र विद्या शाखा के रूप में अधिकाधिक बढ़ता गया। तात्पर्य यह है कि आज ज्ञान के अनंत विस्तार को वाणी देने का काम सरल नहीं रह गया है। आज की विकासशील भाषा को इन सबको समेटते चलना है। पूछा जा सकता है कि क्या हिन्दी ऐसा कर पाई है?

आश्चर्यजनक नहीं होगा, यदि इस प्रश्न का उत्तर हिन्दी के पक्ष से नकारात्मक रूप में दिया जाये। जिस भाषा को सदियों विदेशी भाषाओं के शासन ने दबोच कर रखा और शिक्षा तथा कार्य व्यवहार में माध्यम के रूप में उभरने नहीं दिया है, उससे यह आशा की ही कैसे जा सकती है? यांत्रिक युग का यह एक बड़ा दूषण है कि मनुष्य पूंजी और व्यावसायिकता की दृष्टि से अपने कार्य कलाप को नियमित या नियंत्रित करता है। अतएव आधुनिक युग में जब यांत्रिकता के कारण यह संभव था कि हिन्दी का विकास हो तब भी शिक्षा तथा कार्य व्यवहार में माध्यम के रूप में उस स्थान न मिलने के कारण व्यावसायिक जगत में उसकी अर्थोपयोगिता सिद्ध नहीं हो पाई और इसलिए वांछित दिशाओं में बढ़ने का अवसर नहीं मिला। स्वतंत्रता पाने के बाद कुल 35 वर्षों के काल में जिन विषयों से वह शिक्षण माध्यम से जुड़ी उनमें उसका पर्याप्त विकस हुआ है। 'पर्याप्त' से तात्पर्य यह है कि स्नातक कक्षाओं तक विषय को समझने समझाने के लिए समाजशास्त्रीय और कुछ वैज्ञानिक विषयों में भी पुस्तकें अब उपलब्ध हैं और हिन्दी माध्यम से कला, वाणिज्य और विज्ञान में शिक्षा दी जा सकती है। दी जा रही है, यह कहना अधिक ठीक होगा। यह शिक्षा मात्रा हिन्दी प्रवेश तक सीमित हो ऐसा नहीं है। आंध्र प्रदेश में उसकी राजधानी हैदराबाद नगर में तीनों संकायों का हिन्दी माध्यम महाविद्यालय वर्षों से सफलतापूर्वक चल रहा है। फिर भी यह स्वीकार कर लेने में कोई हिचक नहीं होनी चाहिए कि इन विषयों में भी हिन्दी अभी पूर्णतय: स्वाबलंबिनी नहीं बन सकी है। साथ ही तकनीकि और विधि या आयुर्विज्ञान जैसे–क्षेत्र प्राय: अछूते पड़े हैं।

इस स्थिति के प्रति असंतोष व्यक्त करते समय यदि इस बात को ध्यान में रखा जाए कि एक तो जिन विषयों में अंग्रेजी तथा दूसरी विदेशी भाषाओं में विपुल साहित्य प्रकाशित हो चुका है, जिनमें नित नूतन आविष्कार और परिष्करण हो रहा है, जिनमें प्रचार प्रसार के लिए पत्र पत्रिकाओं की अच्छी सुविधा उपलब्ध है और जिन विषयों की अभिव्यक्ति की एक बंधी सधी सिद्ध भाषा न केवल बन चुकी है, बल्कि उन विषयों में शिक्षित प्रयोक्ता जिनका अभ्यस्त बन चुका है और विदेशी भाषा का अभ्यास करते-करते जिसे अपनी भाषा पर अधिकार नहीं रह गया है और इसलिए यह अनजानी और अटपटी लगने लगी है, उनके विषय में यह आशा करना कि तीस पैंतीस वर्ष के अन्तराल में किसी भाषा में उनकी नींव भी पड़ जायेगी और स्रोत भाषा जैसा समृद्ध साहित्य भी तैयार हो जायेगा, दुराशा मात्रा ही होगा। अनुवाद का ही सहारा लिया जाए तो भी वैसा होना संभव नहीं है। भारत जैसे–विशाल देश में जहां बहुसंख्यक प्रादेशिक भाषाओं को भी विकसित होना है और जिसे तकनीकी, औद्योगिक और वैज्ञानिक विकास में यंत्र-युग की एक नई शक्ति बनने का चाव है।

जहाँ दरिद्रता और अशिक्षता के दबाव में एक तो यों ही मनुष्य अनुपयोग या अपव्यय हो रहा हो और दूसरे अन्य सारे विकास की तुलना में शिक्षा का विकास एक गौण विषय बन गया हो, इस प्रकार के विकास में त्वरित सिद्धि की संभावना कम ही है। ऐसी स्थिति में संपूर्ण साहित्य को अपने में समेट कर चलने की अपेक्षा उचित यह होगा कि लक्ष्य भाषा की ऐसी आधारभूत सामग्री तैयार की जाए, जिससे उसमें वांछित विषय की अभिव्यक्ति सुकर हो सके और आगे के लिए मौलिक चिंतन और लेखन की नींव पड़ सके। तैयारी इस बात की करनी है कि अब से अपनी बात अपने देश की भाषा में कहनी है इस बात की नहीं कि सबसे नाता तोड़ कर अपने आप में सिमट और सिकुड़ जाना है। अपने से अधिक सम्पन्न, समृद्ध और विकसित देशों की होड़ में खड़े होने के लिए न केवल यंत्रों की उपलब्धि काफी है, बल्कि उस साहित्य की जानकारी भी जरूरी है, जिसमें उनकी उपयोगिता और संभावनाएँ भी वर्णित हैं। स्पष्ट है कि ऐसी अवस्था में स्रोत भाषा से जी नहीं चुराया जा सकता। आज का युग अंतरावलंबन का है और विकसित देशों में भी अपनी समृद्ध भाषा में लिखे गये साहित्य के अतिरिक्त इतर देशीय भाषाओं में लिखित साहित्य से लाभ उठाया जाता है। फिर यह समझना कि हिन्दी में अपना कार्यव्यवहार आरंभ कर देने पर उसे छोड़ कर कोई दूसरी भाषा सामने रह ही नहीं जायेगी बड़ी भारी भूल है।

हिन्दी के प्रतिष्ठित हो जाने पर भी उससे उससे अधिक समृद्ध और विकसित भाषा या भाषाओं का उपयोग बना रहेगा और विचारों के आदान-प्रदान के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उसकी आवश्यकता भी बनी रह सकती है, किंतु उस स्थिति में आज की तरह हमारा सारा बल उस विदेशी भाषा को उसकी सारी सूक्ष्मताओं में पकड़ने और उसका हर दृष्टि से अधिकारी बनने पर नहीं होगा, बल्कि परकीय और दूसरी भाषा की तरह उसे जानने और उससे सार ग्रहण कर लेने पर होगा। हिन्दी को इसी धर्म में विकासशील बने रहना है, सर्वथा किसी द्वार को चंद करके अपना अधिराज कायम कर लेना उसका अभीष्ट नहीं है, क्योंकि वैसा करने से स्वयं उसके विकास को ठेस पहुंचती है।

विधागत विशेष ज्ञान के प्रस्तुतीकरण के साथ-साथ हिन्दी को अंतर्देशीय व्यवहार की भाषा के रूप में भी पनपना और विकसित होना है। यहां भी उसका संबंध विभिन्न विषयों से रहेगा, किन्तु विधा या विषय की गहन सूक्ष्म विवेचवना को अभिव्यक्ति देने की अपेक्षा यहां पारस्परिक व्यवहार के अपने तकाजे होते हैं। भाषा के संदर्भ में ये तकाजे उसकी रूप रचना से संबंध रखते हैं। रूप रचना से हमारा तात्पर्य भाषा की शब्द सम्पत्ति, परिभाषिक शब्दावली का गठन, अभिव्यक्ति की सरलता या बोधगम्यता, पथ्यपरकता, लाघव और विषय सम्बद्धता से है। व्यावहारिक धरातल पर विकसित होने वाली किसी भी भाषा को इन या ऐसे ही अनेक तत्त्वों को अपने में समाहित करना पड़ता है। ध्यान रखना चाहिए कि व्यावहारिकता का अर्थ भाषा में कोई अंतर्विरोध है। इस प्रकार की स्वतंत्रता बोली रूप की सीमा से आगे नहीं बढ़ती। अतएव व्यवहार दृष्टि से किसी भाषा की तैयारी का अर्थ है, उसके मानक रूप का सर्व सुलभ और सहज बोधगम्य रूप में तैयार होना। इसी संदर्भ में हिन्दी की स्थिति भी विचारणीय है।

व्यवहार्य भाषा के रूप में हिन्दी की सिद्धता का सबसे पहला आधार उसकी शब्दावली और शब्द संपत्ति ही हो सकता है। यहां हमारा सामना 4 मुख्य प्रश्नों से होता है।

क्या हिन्दी के पास सब प्रकार की अभिव्यक्ति के लिए शब्दावली है?

क्या वह शब्दावली इतनी व्यापक है कि जिन भाषा भाषियों के बीच उसे व्यवहत होना है, उन्हें भी उसमें कुछ परिचित सा लगे और यथा प्रसंग अपनी भाषा के शब्दों को उसमें प्रयुक्त देखकर वे न केवल इस बात का आत्मतोषलाभ कर सके कि उनका सहयोग भी उस भाषा को प्राप्त है, बल्कि यह भी अनुभव

करें कि उसका प्रयोग उनके लिए एकदम सहज न भी हो तो भी वह कठिन नहीं है।

क्या उसमें नए-नए शब्दों की रचना की क्षमता है और

क्या उसमें विविध ज्ञानशाखाओं के लिए परिभाषिक शब्दावली है? प्रश्न और भी हो सकते हैं।

इन प्रश्नों पर क्रमशः विचार करें। जहां तक सब प्रकार की अभिव्यक्ति का प्रश्न है, मोटे तौर पर किसी भी भाषा से यह अपेक्षा की जा सकती है कि उसमें सूक्ष्म, जटिल और गहन भावों और विचारों को अभिव्यक्त करने और उन्हे सुबोध बनाने के लिए अनुकूल शब्दावली हो, साथ ही उसमें उक्त लाघव भी हो। यों तो विद्वानों की राय में सभी भाषाएं विकसित होती रहती हैं, आवश्यकता अनुसार उनमें नए शब्दों का आदान या उनकी रचना में रूपांतरण होता रहता है, किंतु विकासशील भाषाओं की यह समस्या कुछ अधिक गम्भीर होती है, जिस व्यवहार से होकर वे गुजरी ही नहीं, उसकी भरपूर अभिव्यक्ति की शक्ति भी उनमें नहीं हो सकती। फिर यदि उन भाषाओं को केवल शाब्दिक अनुवाद की भाषा का रूप दे दिया जाये तो वे न केवल अप्रकृत हो उठेंगीं, अपितु उनकी सहज संभावनाएं भी कुंठित हो जाएंगी। आरंभिक संक्रमण कालीन स्थिति में उसका उपयोग इसी शाब्दिक जरूरी नहीं है।

हिन्दी का यह दुर्भाग्य रहा है कि प्रशासनिक व्यवहार में उसका उपयोग इसी शाब्दिक अनुवाद के लिए किया गया है अपने प्रकृत स्वभाव को छोड़कर अंग्रेजी वाक्य विन्यास और शब्दावली के पीछे मक्खीमार रूप में भटकने के कारण उसका एक ऐसा कृत्रिम रूप उभरा है, जो सर्वजनबोध्य होना तो दूर स्वयं हिन्दी भाषियों के लिए भी दुर्बोध और कष्ट साध्य जान पड़ता है। उससे एक प्रकार की निरर्थक जटिलता उत्पन्न हुई है। यह निश्चय ही उसके विकासशीलता के लिए धातक है। साहित्यिक भाषा के रूप में हिन्दी ने सूक्ष्म, जटिल और गहन भावों की अभिव्यक्ति की पर्याप्त क्षमता अर्जित की है और उसका उपयोग व्यवहार भाषा के धरातल पर भी किया जा सकता है, किंतु यदि नए चिंतन, नए आविष्कार और नए अभिव्यक्ति कौशल के कारण वह कहीं-कहीं अंग्रेजी की समकक्षता में नहीं खड़ी हो पाती, तो उसका अर्थ यह नहीं है कि उसकी संभावनाओं को भी अनदेखा कर दिया जाये। उसकी प्रकृति की रक्षा करते हुए उसके विकास और संवर्द्धन के दूसरे उपायों का सहारा लेना चाहिए।

दूसरे प्रश्न का उत्तर इन्हीं दो उपायों में समाहित है। भाषा भावों विचारों की वाहिका होती है, किंतु कोई भी भाषा संपूर्णतया आत्मनिर्भर नहीं होती। उसकी क्षमता ग्रहण से बढ़ती है। उसी से उसमें व्यापकता आती है। हिन्दी को अपनी क्षमता बढ़ाने और उक्त प्रकार की अभिव्यक्ति का लक्ष्य भेद करने के लिए इसी ग्रहण उपाय से काम लेना होगा। भाषा का व्यापार विचित्र प्रकार का होता है। वह दूसरों की ऋणी होकर ही धनी होती है और उदार कहलाती है। हिन्दी को जिन भाषाओं के सहचर्य में बढ़ना और बड़ा होना है, उनसे शब्द ग्रहण करना उसके हित में है। इन हितकारियों में सबसे ऊँचा स्थान अपने देश की सहचरी भाषाओं का होना चाहिए, उसके बाद अंग्रेजी का। तात्पर्य यह है कि जहां तक किसी अभिव्यक्ति के लिए अपने देश की भाषा में शब्द मिल सकते हैं, उन्हें स्वीकार करते चलना चाहिए। कारण यह कि उससे परस्पर बंधुता बढ़ती है, पारस्परिक संवाद की भूमि तैयार होती है और हिन्दी में उन शब्दों की नई रचना की संभावनाएं बनी रहती है, लेकिन अंग्रेजी से शब्द ग्रहण करने और अपने देश की भाषाओं से शब्द ग्रहण करने में अभी इस बात का अंतर बना रहेगा कि चूंकि अंग्रेजी इस देश में भी शिक्षितों के बीच सार्वजनिक भाषा बनाकर रही है और अपने देश की भाषाओं के बीच इस प्रकार का संपर्क बहुत ही क्षीण रहा है, अतएव अंग्रेजी शब्दों को जितनी शीघ्रता से व्यापक स्वीकृति मिल सकती है, उतनी शीघ्रता से वैसा एकमत्य प्रादेशिक भाषाओं के संबंध में, कम से कम आरंभ में, संभव न होगा। दूसरी अंग्रेजी शब्द सीधे हिन्दी में किए जा सकते हैं, किंतु भारतीय भाषाओं के बीच हुई आपसी दूरी के कारण यह काम सीधे हिन्दी भाषियों द्वारा नहीं किया जा सकता है। इसके लिए इन दूसरी भाषाओं को अपनी ओर से प्रदाता की भूमिका अपनानी पड़ेगी और यह तभी संभव है, जब हिन्दीतर भाषा भाषियों द्वारा हिन्दी का व्यवहार हो। वे ही आवश्यकता होने पर अपनी भाषा के शब्दों को हिन्दी की बुनावट में ढाल सकेंगे। यह काम और तीव्र गति से संभव हुआ होता यदि हिन्दी प्रदेशों में त्रिभाषा सूत्र को अपनाकर इतर भाषाओं को आत्मसात कर लिया होता।

फिर भी यह ध्यान रखना होगा कि शब्द ग्रहण अनियंत्रित गति से नहीं होता। यह नहीं है कि मनमाने ढंग से चाहे जिस शब्द को प्रयुक्त कर दिया जाए। जिन शब्दों में जितनी ही अधिक अर्थव्यंजकता, संक्षिप्तता, उच्चारण सुकरता और सुखद नादमयता होगी, वे उतने ही अधिक शीघ्रता से ग्रहण किये जा सकते हैं, किंतु एक तो इस प्रकार का ग्रहण तब तक नहीं होता जब तक कि मूल भाषा

में योग्य शब्द मिलते रहते हैं, दूसरे जब कभी ग्रहण के प्रति खिन्नता बरती जाती है तो वह ऐसे स्थलों पर, जहां दूसरी भाषा केवल व्यापक बनने के नाम पर किसी दूसरी भाषा के इतने अधिक शब्द नहीं ले सकती कि वह उनसे शक्ति पाते-पाते स्वयं दुर्बल और अक्षम प्रमाणित होन लगे। हमारे अंग्रेजी जब-जब बात-बात में अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग करते हैं और क्रिया, सर्वनाम या अव्यय को छोड़कर जब पूरा वाक्य अंग्रेजी के शब्दों से लद जाता है तो वह हिन्दी का गौरव नहीं बढ़ाता न उसे विशेष अर्थमय बनाता है, बल्कि इसके विपरीत या तो उसकी या उसके प्रयोक्ता की अक्षमता की प्रमाणित करता है और दोनों को उपहास का विषय बनाता है। अतएव आदान की भी एक सीमा है और मूल भषाओं की सम्भावनाओं की खत्म करके वैसा नहीं किया जा सकता। आदान प्रवाह आपतित शब्दों का ही होता है और वह भी उसकी व्यंजकता आदि को उपयोगी पाकर ही। हिन्दी में न तो ऐसे शब्दों का ग्रहण अनुचित होगा और न ही ऐसे शब्दों का होगा, जो भारतीय अन्यान्य भाषाओं में एक ही अर्थ में प्रचलित हैं और थोड़े बहुत रूप भेद के रहते भी सबोधता की दृष्टि से उपयोगी हैं।

किसी भाषा की शक्ति और सम्पन्नता केवल इस बात पर ही निर्भर नहीं होती कि वह अपने शब्दकोष में कितने शब्द संभाले हुए हैं, बल्कि यह भी उसके लिए अनिवार्य है कि उसमें नवीन शब्दों की रचना की शक्ति हो। यह रचना शक्ति जहां प्रकृति प्रत्यय के योग से आती हैं, वहीं तत्सम, देशज और इतर शब्दों के तद्भवीकरण और रूपांतरीकरण से भी सिद्ध होती है। अनेक बार भाषा देशज शब्दों को ही उनके मूल रूप में अथवा उन्हें व्याकरण सिद्ध करके ऐसा रूप दे देती है कि वे उन्नत होकर तुल्यबल वाले और सम्मानीय बन जाते हैं। विकासशील भाषा के लिए यह गुण अमृत तुल्य है। हिन्दी में भी यह सद्गुण है, पर उसका झुकाव तत्समता की ओर है। मध्यकालीन कवियों में अरबी फारसी के कितने ही शब्दों को अपनी भाषा में न केवल ज्यों का त्यों खपा लिया था, बल्कि उनको अपने रूप में भी ढाल लिया था। वह क्रम चलते रहना चाहिए था, किंतु तत्समता के साथ साथ मूल उच्चारण की सुरक्षा का आधुनिक काल में ऐसा प्रवाह आया कि क्रम भंग हो गया। हम समझते हैं कि हिन्दी को अपनी उस शक्ति का उपयोग करने पर विशेष ध्यान देना चाहिए। केवल तत्समीकरण उपयोगी न होगा।

हिन्दी में इस समय दोनों प्रवृत्तियां चल रही है। एक पक्ष है, जो तत्सम संस्कृत शब्दावली का प्रयोग करता है और दूसरा पक्ष समाजवादी या जनवादी है,

जो उर्दू शब्दों के मिश्रण से उभरती भाषा का अपने लेखन में प्रयोग कर रहा है। हिन्दी आलोचना में तो यह स्थिति है, किंतु अन्य विषयों में अभी दूसरी शैली का प्रयोग नहीं हो रहा है। वहां अभी चूंकि हिन्दी का प्रायः अनुवाद भाषा के रूप में प्रयोग हो रहा है और अर्थशास्त्र आदि के लेखक मूलतः या तो अभी भी अंग्रेजी में सोंचने के अभ्यस्थ हैं या अपने लेखन में आधारा ग्रंथों के रूप में उन्हें अंग्रेजी ग्रंथों से ही सहारा मिलता है और हमारी पारिभाषिक शब्दावली भी संस्कृतनिष्ठ है, वे संस्कृतनिष्ठ शैली का प्रयोग कर रहे हैं। भविष्य में यदि हिन्दी का ऐसा रूप निखर सके, जो संस्कृतनिष्ठ तो हो पर जिसमें हिन्दी की अपनी सरल अभिव्यक्ति को दबाकर कठिन संस्कृत पदावली का या इसी तरह अरबी फारसी के कठिन शब्दों का प्रयोग न हो और आवश्यकता होने पर इतर भारतीय भाषाओं के शब्दों का मेल हो तो हितकर होगा।

हिन्दी में पारिभाषिक शब्दाबली का बहुत कुछ निर्माण हो चुका है। फिर भी भाषा के विचार के साथ नई-नई शब्दावली भी बनती रहती है, अतएव यह नहीं कहा जा सकता कि हिन्दी इस क्षेत्र में किसी अन्तिम सीमा पर पहुंच गई है, किंतु यह हिन्दी के ही क्यों, संसार की किसी भी भाषा के विषय में नहीं कहा जा सकता। एक बार पारिभाषिक शब्दावली की नींव पड़ जाने पर उस क्रम को आगे बढ़ाते जाना सहज और सरल हो जाता है, यदि विचार और अभिव्यक्ति भी उसी भाषा में हो। चूंकि इस प्रकार की शब्दावली की रचना में संक्षिप्तता को एक विशेष सद्गुण माना जाता है अतएव हिन्दी के लिए यही सबसे सुगम और सहज मार्ग माना गया कि उसकी शब्दावली को संस्कृत का आधार दिया जाये ताकि उसकी सामसिकता, संधि और इतर विधियों का लाभ मिले। साथ ही यह भी माना गया है कि संस्कृत पर आधारित शब्दावली को अन्यान्य भाषा भाषी भी ग्रहण कर सकेंगे और वह शब्दावली सबके लिए सहज माध्यम हो सकेगी। सहज संपर्क के लिए देश में एक ही पारिभाषिक शब्दावली का होना आवश्यक है, किंतु इस विषय में भी मतभेद और आपत्तियों की कमी नहीं है।

भिन्न प्रदेशों में संस्कृत के ही शब्दों से एक ही अंग्रेजी शब्द के लिए भिन्न शब्दों का निर्माण, प्रचलित अंग्रेजी शब्दों को ज्यों का त्यों अपनाने की आकांक्षा, नवनिर्मित शब्दों का अनभ्यस्त कानों को अटपटा लगना, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बोध और संप्रेषण के लिए उपयोगिता और अपनी-अपनी भाषा में पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण के द्वारा उसकी समृद्धि की चिंता ने हिन्दी पारिभाषिक शब्दावली की स्वीकृति के विपक्ष में अनेक समस्याएं उत्पन्न की हैं, जिससे

उसका विकास प्रभावित हुआ है। यहां तक कि तब तो रेडियो की तुलना में आकाशवाणी शब्द भी खीझ और उपेक्षा का विषय हो गया है।

हम यहां भाषा की राजनीति में न जाकर केवल यह मानकर चलते हैं कि हिन्दी को अपने ही हित के लिए दृढ़ता से उस नीति का अनुसरण करना है, जिससे वह समृद्ध और सशक्त होती जाये और उसकी सर्वग्राह्यता बनी रहे। इसमें संदेह नहीं है कि पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण के विषय में संस्कृत का आधार ही लेना होगा, किंतु उसके साथ ही यह भी ध्यान रखा जाए कि मनुष्य को अतीत की स्मृति सताती तो बहुत है और वह उसे वर्तमान की अपेक्षा सुखद भी मान लिया करता है फिर भी कोई वर्तमान को छोड़कर वही जीवन नहीं जीना चाहता। अतीत तो उसे केवल शक्ति और संतोष देता है, उसके संस्कार बड़ी सूक्ष्मता से उसके वर्तमान में तार-तार बिंधे रहते हैं, लेकिन नए संदर्भ में अपनी उपयोगिता सिद्ध करते हुए। भाषा का व्यवहार भी कमोवेश वैसा ही होता है। वर्तमान में जो हमारे स्वभाव बन गया है और जिस भाषा का प्रयोग शिक्षितों के बीच होता आ रहा है, उसे सहसा त्यागकर संस्कृत की ओर लौटने की कल्पना सुखद तो हो सकती है, लेकिन उतनी ही दूर तक जहां तक वह हमारे वर्तमान और अभ्यास के मेल में रहे।

अतएव हम समझते हैं कि पारिभाषिक शब्दों में सबसे पहले सम्मानीय और स्वीकार्य तो वे हैं, जो संस्कृत और अरबी फारसी से आकर आधुनिक भारतीय भाषाओं में भी खप गये हैं और जिनकी अलग से पहिचान कराने की किसी को आवश्यकता नहीं पड़ती। दूसरे वे हैं, जो आधुनिक ज्ञान की सही अभिव्यक्ति के लिए हमारे यहां दर्शन, धर्म नीति और साहित्य आदि से अभी भी लिए जा सकते हैं और अपन उच्चारण सौंकर्य के कारण सहज ग्राह्य होने की सम्भावना रखते हैं। तीसरे वे हैं, जो वर्तमान में अंग्रेजी के माध्यम से आये हैं और जिनको हम अपनी भाषा के उच्चारण में ढाल कर अपने लिए और वैसे ही दूसरों के लिए भी, सह्य और अर्थवान बनाए रह सकते हैं। चौथे वे हैं, जिन्हें भिन्न पर्याय के रूप में भारतीय भाषाओं में प्रचलित देखते हैं और जिनके बीच से अधिक प्रचलन और अधिक स्वीकृति या सहमति के आधार पर चयन किया जा सकता है। पांचवे जो कई शब्दों के योग के कारण उच्चारण में उत्पन्न असुविधा या विलंब से बचने के लिए संकेत शब्दावली के रूप में अंग्रेजी तथा अन्य विदेशी भाषाओं में समान रूप से मान्य हैं और छठे तथा अंतिम वे हैं, जो न तो किसी रूप में ढाले जा सकते हैं, न जिनके लिए कोई सरल और अर्थवान पर्याय हम दे सकते हैं। उन्हे ज्यों का त्यों लेना ही पड़ेगा और उस दिन की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, जिस दिन

वे घिस-पिट कर या तो हमारे अनुकूल हो जाएंगे या उस ज्ञान शाखा में बढ़ते-बढ़ते किसी दिन इस धरती का कोई नया शब्द सहसा जन्म ले लेगा।

भाषा की रूप रचना का संबंध पारिभाषिक अथवा अन्य प्रकार की शब्दावली के अतिरिक्त उसके व्याकरण, उसके लाघव और उसकी जटिलता या सरलता से भी है। सबसे अधिक महत्वपूर्ण है सूक्ष्म और सही अर्थाभिव्यक्ति। व्याकरण भाषा का नियामक है और उसे परिनिष्ठित बनाता है। भाषा में वह एक रूपता लाता है और उसे निरंकुशता से बचाता है। एकरूपता सरलता की वाहिका भी होती है और सूक्ष्म अभिव्यक्ति की सहायिका भी। अन्यथा अनेक शब्द रूपों और संबंध तत्त्वों के एक ही बात के लिए प्रचलन से सुनिश्चित और अटपटापन बना रहता है और अर्थ की दुविधा बनी रहती है। अन्य भाषाभाषियों को किसी भी दूसरी भाषा के सीखने में व्याकरण की भिन्नता के कारण सामान्यत: कुछ कठिनाई का अनुभव होता ही है, पर उससे कोई भाषा इस तरह प्रभावित नहीं होती कि अपने मूल रूप को परिवर्तित कर दे।

परिवर्तन आता है कुछ लोगों के विशिष्ट प्रयोगों के प्रचलन से। उन प्रयोंगों की भी अर्थ की दृष्टि से कोई न कोई सार्थकता होनी चाहिए, अत: हिन्दी के व्याकरण को भी बदला जा सकता है तो इस प्रकार के सार्थक और विशिष्ट प्रयोगों से ही भाषा को सीखने में व्याकरण को बाधक मानकर उसे सहज गति से लेना चाहिए और उस के माध्यम से हिन्दी पर अधिकार प्राप्त करना चाहिए। हिन्दी के विकास के लिए उसमें अनावश्यक जोड़-तोड़ करने से भाषा की एकरूपता सिद्ध होगी न उस जोड़-तोड़ की कोई सीमा रहेगी। व्याकरण की सीमा में रहते हुए भाषा के संबंध तत्त्वों के ग्रहण त्याग, शब्द संगठन, सूक्ष्म भेद, पुनुरुक्ति अथवा विस्तार में से बचत और स्पष्ट किंतु पैने और एकदम लक्ष्यानुसारी हिन्दी के लेखन का प्रयत्न जितना उसके विकास में साधक हो सकता है, उतना दूसरा तत्त्व नहीं। हमारी समझ से विषय और रूप की उस सन्धि की उपलब्धि में ही हिन्दी का विकास निहित है। यहां इस विषय में अधिक विस्तार के लिए अवकाश नहीं है, अन्यथा वास्तविकता यह है कि उक्त बातों को कुछ और अधिक स्पष्टता से प्रस्तुत करना उचित होता।

हिन्दी भाषा और साहित्य में चिट्ठाकारिता की भूमिका

हर समाज की अपनी भाषा और संस्कृति होती है और हर भाषा का अपना साहित्य होता है। हिन्दी भाषा का भी अपना साहित्य और समाज है। कहना न

होगा यह समाज और इसका साहित्य अत्यंत समृद्ध रहा है। आधुनिक समय में मीडिया, विज्ञापन, पत्रकारिता और सिनेमा ने हिंदी भाषा, साहित्य और संस्कृति की भूमि को उर्वर बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। ब्लाग या चिट्ठा इसी विकास की दुनिया का नवीनतम माध्यम है और ब्लागिंग या चिट्ठाकारिता लेखन या मीडिया की नई विधा।

किताब या पत्रिका की तुलना में इसकी पहुँच अधिक और तेज होने के कारण यह कई मामलों में पुराने मीडिया माध्यमों से बेहतर है। हिंदी में चिट्ठे का प्रारंभ 2003 से हुआ पिछले 7 सालों में वह अपने लड़खड़ाते कदमों को संभालकर खड़ा होना सीख गया है, जिस प्रकार साहित्य और संस्कृति के विषय में यह आशा की जाती है कि वे आने वाले समय में व्यक्तिगत मनोविनोद, जय-पराजय, सुख-दु:ख से ऊपर सामूहिक प्रेम, बन्धुत्व, स्वतंत्रता और समानता के पथ पर कदम बढ़ाएंगे, चिट्ठों के विषय में यह आशा रखना उचित होगा कि वे सामूहिक प्रेम, बन्धुत्व, स्वतंत्रता और समानता के क्षेत्र में भाषा साहित्य और संस्कृति की नई दिशाएँ खोजते हुए अपना भविष्य बनाएंगे।

चिट्ठा एक ऐसा माध्यम है, जहाँ व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुसार विषय, भाषा, विधा और लेख की लंबाई का नियंत्रण अपने हाथों में रख सकता है। इसलिये किसी पत्रिका के स्तंभ में समा पाने के लिये उसे अतिरिक्त परिश्रम से मुक्ति मिल जाती है और इच्छानुसार विकास का अवसर मिलता है। ऐसे लेखों पर यदि किसी कुशल संपादक की दृष्टि पड़ जाए तो वह सीधा किसी पत्रिका का हिस्सा भी बन सकता है या फिर किसी प्रकाशक या फिल्म निर्माता का सहयोगी बन जीवन को साहित्यिक सांस्कृतिक दिशा दे सकता है। इस दृष्टि से देखा जाए तो चिट्ठे भी साहित्य और भाषा के विकास का माध्यम है। बहुत से लेखक और कवि ऐसे हैं, जिन्होंने लेखन का प्रारंभ या यह कहें कि अपने लेखन को प्रकाशित करना अपने चिट्ठों पर ही शुरू किया। बाद में उनकी रचनाएँ प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में छपीं और पुस्तकों के रूप में भी सामने आईं।

हर चिट्ठे की भाषा स्तरीय नहीं होती या विषय घटिया होता है या लेखन स्तरहीन होता है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। चिट्ठों का लेखक स्वयं अपना संपादक होता है। इसलिये कुछ चिट्ठे प्रारंभ में सामान्य दिखाई दे सकते हैं, लेकिन धीरे-धीरे उनका विकास हो सकता है। यह लेखक पर निर्भर होता है कि वह कैसा लिखना चाहता है, किन पाठकों को अपनी ओर आकर्षित करना चाहता है और भाषा या शैली के प्रति कितना और कैसा रचनात्मक रुझान रखता है। यह

भी हो सकता है कि चिट्ठा किसी साहित्यिक लेखक का हो, तब उसमें प्रारंभ में ही स्तरीय लेखन देखा जा सकता है। हो सकता है कि कोई साहित्यिक चिट्ठा लिखना ही न चाहता हो, उसका चिट्ठा हिंदी में तो हो लेकिन किसी और विषय की ओर केंद्रित हो तब उससे साहित्य और साहित्यिक भाषा की अपेक्षा या जबरदस्ती रखना उचित नहीं है। अच्छी रचनात्मक हिंदी में लिखे हुए कई चिट्ठे पत्रकारिता, संस्मरण, शब्दों के विकास, प्रकृति, पर्यावरण आदि विषयों पर आज भी देखे जा सकते हैं।

आज का कोई भी व्यक्ति जो अभिव्यक्ति में पारंगत हैं और पर्याप्त सूचनाएँ रखता है, तर्क युक्तियों के माध्यम से अपनी बात रखने की कला जानता है और सही समय पर सही निर्णय लेने की क्षमता रखता है वह अपनी भाषा और अपने साहित्य की सीमाओं को विस्तृत होते देखना चाहता है। इसके लिये वह अपनी सुविधानुसार किस भी माध्यम का प्रयोग कर सकता है और इसके लिये चिट्ठे से बेहतर कोई माध्यम नहीं हो सकता।

इस समय हिंदी में लगभग 22000 के आस-पास चिट्ठे हैं, टेक्नोरति के एक सर्वेक्षण के अनुसार विश्व के कुल चिट्ठों में से 37 प्रतिशत जापानी भाषा में है, 36 प्रतिशत अंग्रेजी में और आठ प्रतिशत के साथ चीनी तीसरे नंबर पर है। अंग्रेजी के 4 करोड़ चिट्ठों की तुलना में अभी हिंदी चिट्ठों का विस्तार भले ही कम दिखाई दे, किन्तु हिंदी ब्लोगों पर एक से एक विशिष्ट सामग्री प्रस्तुत की जा रही हैं ! समाज, राजनीति, मीडिया और साहित्य से संबंधित महत्वपूर्ण सृजन हिंदी चिट्ठा पर धड़ल्ले से प्रस्तुत किये जा रहे हैं ! हिंदी में चिट्ठा कम होने का एक कारण यह भी माना जा सकता है, कि हिंदी में एक सार्वजनीन फांट आने में देर हुई, जिससे हिंदी चिट्टाकारिता अँग्रेजी की तुलना में छह साल देर से प्रारंभ हुई।

आज जिस प्रकार हिंदी चिट्ठाकार समाज और देश के हित में व्यापक जन चेतना को विकसित करने में सफल हो रहे हैं वह संतोष की बात है। अपने सामाजिक सरोकार को व्यक्त करने की प्रतिबद्धता के कारण आज हिंदी के कतिपय चिट्ठे समानांतर मीडिया की दृष्टि से समाज में सार्थक भूमिका निभाने में सफल रहे हैं। हिन्दी को अंतर्राष्ट्रीय स्वरुप देने में हर उस चिट्ठाकार की महत्वपूर्ण भूमिका है, जो बेहतर प्रस्तुतिकरण, गंभीर चिंतन, समसामयिक विषयों पर सूक्ष्मदृष्टि, सृजनात्मकता, समाज की कुसंगतियों पर प्रहार और साहित्यिक-सांस्कृतिक गतिविधियों के माध्यम से अपनी बात रखने में सफल हो

रहे हैं। चिट्ठा लेखन और वाचन के लिए सबसे सुखद पहलू तो यह है कि हिन्दी में बेहतर चिट्ठा लेखन की शुरुआत हो चुकी है, जो हिंदी समाज के लिए शुभ संकेत है।

कहा गया है कि चिट्ठाकारिता की दुनिया पूरी तरह स्वतंत्र, आत्म निर्भर और मनमौजी किस्म की है ! यहाँ आप स्वयं लेखक, प्रकाशक और संपादक की भूमिका में होते हैं ! चिट्ठे की दुनिया समय और दूरी के सामान अत्यंत विस्तृत और व्यापक है ! यहाँ केवल राजनीतिक टिप्पणियाँ और साहित्यिक रचनाएँ ही नहीं प्रस्तुत की जातीं, बल्कि महत्त्वपूर्ण किताबों का इ प्रकाशन तथा अन्य सामग्रियाँ भी प्रकाशित की जाती है। आज हिंदी में भी फोटो चिट्ठा, संगीत चिट्ठा, पोडकास्ट, विडिओ चिट्ठा, सामूहिक चिट्ठा, प्रोजेक्ट चिट्ठा, कारपोरेट चिट्ठा आदि का प्रचलन तेजी से बढ़ा है ! यानी हिंदी चिट्ठाकारिता आज संवेदनात्मक दौर में है इसमें कोई संदेह नहीं है!

वर्ष-2010 में हिंदी चिट्ठाकारिता के चहुमुखी विकास में पूरे वर्ष भले ही अवरोध की स्थिति बनी रही, किन्तु बुद्धिजीवियों का एक बड़ा तबका अपने इस आकलन को लेकर करीब-करीब एकमत है कि आने वाला कल हमारा है यानी हिंदी चिट्ठाकारिता का है। इसकों लेकर किन्तु-परन्तु हो सकता है कि हिंदी चिट्ठाकारिता का विकास अन्य भाषाओं की तुलना में धीमा रहा, लेकिन इसे लेकर किसी को संशय नहीं होना चाहिए कि हिंदी चिट्ठाकारी उर्जावान चिट्ठाकारों का एक ऐसा बड़ा समूह बनता जा रहा है, जो किसी भी तरह की चुनौतियों पर पार पाने में सक्षम है और उसने अपने को हर मोर्चे पर सिद्ध भी किया है। वस्तुतः विगत वर्ष की एक बड़ी उपलब्धि और साथ ही आशा की किरण यह रही है कि चिट्ठे के माध्यम से वातावरण का निर्माण केवल वरिष्ठ चिट्ठाकारों ने ही नहीं किया है, अपितु एक बड़ी संख्या नए और उर्जावान ब्लोगरों की भी आई है, जिनके सोचने का स्तर परिपक्व है। वे सकारात्मक सोच रहे हैं, सकारात्मक लिख रहे हैं और सकारात्मक गतिविधियों में शामिल भी हो रहे हैं।

इसके सिवा अनेक लेखक लेखिकाएँ जो हिंदी भाषा और विभिन्न विषयों पर अच्छी पकड़ रखते हैं साथ ही चिट्ठाकारिता के माध्यम से अपनी अभिव्यक्ति को धार देने की दिशा में सक्रिय हैं, इस वर्ष चिट्ठा लेखन में सक्रिय रहे। कुल मिलाकर यह दिखाई देने लगा है कि हिंदी भाषा और साहित्य के विकास में चिट्ठाकारिता की भूमिका सर्वोपरि है। आने वाले दिनों में हिंदी भाषा

और साहित्य के निर्माण में यह समृद्धि के नए सोपान को प्राप्त करेगी, इसमें कोई संदेह नहीं है।

आधुनिक हिंदी गद्य का इतिहास

हिंदी साहित्य शुरू करने का श्रेय प्रसिद्ध फ्रेंच विद्वान लेखक गार्सा दतासी को दिया जा सकता है। हिंदी गद्य के अविभाज्य के संबंध में विद्वान एकमत नहीं है। कुछ 10वीं शताब्दी मांनते हैं कुछ 11 वीं शताब्दी, कुछ 13 शताब्दी। राजस्थानी एवं ब्रज भाषा में हमें गद्य के प्राचीनतम प्रयोग मिलते हैं। राजस्थानी गद्य की समय सीमा 11वीं शताब्दी से 14वीं शताब्दी तथा ब्रज गद्य की सीमा 14वीं शताब्दी से 16वीं शताब्दी तक मानी जाती है। माना जाता है कि 10वीं शताब्दी से 13वीं शताब्दी के मध्य ही हिंदी गद्य की शुरुआत हुई थी।खड़ी बोली के प्रथम दर्शन अकबर के दरबारी कवि गंग द्वारा रचित चंद छंद बरनन की महिमा में होते हैं, अध्ययन की दृष्टि से हिंदी गद्य साहित्य के विकास को इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है। हिन्दी गद्य के विकास को विभिन्न सोपानों में विभक्त किया जा सकता है-

(1) पूर्व भारतेंदु युगः 13 बमदजनतल ईस्वी से 1868 ईस्वी तक।

(2) भारतेंदु युगः 1868-1900

ईस्वी तक. (नवजागरण काल)

(3) द्विवेदी युगः 1900 ईस्वी से 1922 ईस्वी तक।

(4) शुक्ल युगः 1919 ईस्वी से 1938 ईस्वी तक।

(5) शुक्लोत्तर युगः 1938 ईस्वी से 1947 आज तक।

(6) स्वातंत्र्योत्तर युगः 1947 से अब तक।

19वीं सदी से पहले का हिन्दी गद्य

हिन्दी गद्य के उद्‌भव को लेकर विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वान हिन्दी गद्य की शुरूआत 19वीं सदी से ही मानते हैं, जबकि कुछ अन्य हिन्दी गद्य की परम्परा को 11वीं-12वीं सदी तक ले जाते हैं। आधुनिक काल से पूर्व हिन्दी गद्य की निम्न परम्पराएं मिलती हैं-

(1) राजस्थानी में हिन्दी गद्य।

(2) ब्रजभाषा में हिन्दी गद्य।

(3) दक्खिनी में हिन्दी गद्य।

(4) गुरूमुखी लिपि में हिन्दी गद्य।

भारतेंदु पूर्व युग

हिन्दी में गद्य का विकास 19वीं शताब्दी के आस-पास हुआ। इस विकास में कलकत्ता के फोर्ट विलियम कॉलेज की महत्वपूर्ण भूमिका रही। इस कॉलेज के दो विद्वानों लल्लूलाल जी तथा सदल मिश्र ने गिलक्राइस्ट के निर्देशन में क्रमशः प्रेमसागर तथा नासिकेतोपाख्यान नामक पुस्तकें तैयार कीं। इसी समय सदासुखलाल ने सुखसागर तथा मुंशी इंशा अल्ला खां ने 'रानी केतकी की कहानी' की रचना की इन सभी ग्रंथों की भाषा में उस समय प्रयोग में आनेवाली खड़ी बोली को स्थान मिला। ये सभी कृतियाँ सन् 1803 में रची गयी थीं।

आधुनिक खडी बोली के गद्य के विकास में विभिन्न धर्मों की परिचयात्मक पुस्तकों का खूब सहयोग रहा, जिसमें ईसाई धर्म का भी योगदान रहा। बंगाल के राजा राम मोहन राय ने 1815 ईस्वी में वेदांत सूत्र का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करवाया। इसके बाद उन्होंने 1829 में बंगदूत नामक पत्र हिन्दी में निकाला। इसके पहले ही 1826 में कानपुर के पं जुगल किशोर ने हिन्दी का पहला समाचार पत्र उदंतमार्तंड कलकत्ता से निकाला, इसी समय गुजराती भाषी आर्य समाज संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती ने अपना प्रसिद्ध ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश हिन्दी में लिखा।

भारतेंदु युग

भारतेंदु हरिश्चंद्र (1850-1885) को हिन्दी-साहित्य के आधुनिक युग का प्रतिनिधि माना जाता है। उन्होंने कविवचन सुधा, हरिश्चन्द्र मैगजीन और हरिश्चंद्र पत्रिका निकाली. साथ ही अनेक नाटकों की रचना की। उनके प्रसिद्ध नाटक हैं- चंद्रावली, भारत दुर्दशा, अंधेर नगरी। ये नाटक रंगमंच पर भी बहुत लोकप्रिय हुए, इस काल में निबंध नाटक उपन्यास तथा कहानियों की रचना हुई। इस काल के लेखकों में बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, राधा चरण गोस्वामी, उपाध्याय बदरीनाथ चौधरी प्रेमघन, लाला श्रीनिवास दास, बाबू देवकी नंदन खत्री और किशोरी लाल गोस्वामी आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें से अधिकांश लेखक होने के साथ साथ पत्रकार भी थे।

श्रीनिवासदास के उपन्यास परीक्षागुरू को हिन्दी का पहला उपन्यास कहा जाता है। कुछ विद्वान श्रद्धाराम फुल्लौरी के उपन्यास भाग्यवती को हिन्दी का पहला उपन्यास मानते हैं। बाबू देवकीनंदन खत्री का चंद्रकांता तथा चंद्रकांता संतति आदि इस युग के प्रमुख उपन्यास हैं। ये उपन्यास इतने लोकप्रिय हुए कि

इनको पढ़ने के लिये बहुत से अहिंदी भाषियों ने हिंदी सीखी। इस युग की कहानियों में शिवप्रसाद सितारे हिन्द की राजा भोज का सपना महत्त्वपूर्ण है।

बलदेव अग्रहरि की सन् 1887 में प्रकाशित नाट्य पुस्तक 'सुलोचना सती' में सुलोचना की कथा के साथ आधुनिक कथा को भी स्थान दिया गया हैं, जिसमे संपादकों और देश सुधारकों पर व्यंग्य किया गया है। कई नाटकों में मुख्य कथानक ही यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करते हैं। बलदेव अग्रहरि की सुलोचना सती में भिन्नतुकांत छंद का आग्रह भी दिखाई देता है।

द्विवेदी युग

पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर ही इस युग का नाम द्विवेदी युग रखा गया। सन् 1903 ईस्वी में द्विवेदी जी ने सरस्वती पत्रिका के संपादन का भार संभाला, उन्होंने खड़ी बोली गद्य के स्वरूप को स्थिर किया और पत्रिका के माध्यम से रचनाकारों के एक बड़े समुदाय को खड़ी बोली में लिखने को प्रेरित किया। इस काल में निबंध, उपन्यास, कहानी, नाटक एवं समालोचना का अच्छा विकास हुआ।

इस युग के निबंधकारों में महावीर प्रसाद द्विवेदी, माधव प्रसाद मिश्र, श्याम सुंदर दास, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, बाल मुकंद गुप्त और अध्यापक पूर्ण सिंह आदि उल्लेखनीय हैं। इनके निबंध गंभीर, ललित एवं विचारात्मक हैं। किशोरीलाल गोस्वामी और बाबू गोपाल राम गहमरी के उपन्यासों में मनोरंजन और घटनाओं की रोचकता है।

हिंदी कहानी का वास्तविक विकास द्विवेदी युग से ही शुरू हुआ। किशोरी लाल गोस्वामी की इंदुमती कहानी को कुछ विद्वान हिंदी की पहली कहानी मानते हैं। अन्य कहानियों में बंग महिला की दुलाई वाली, शुक्ल जी की ग्यारह वर्ष का समय, प्रसाद जी की ग्राम और चंद्रधर शर्मा गुलेरी की उसने कहा था महत्त्वपूर्ण हैं। समालोचना के क्षेत्र में पद्मसिंह शर्मा उल्लेखनीय हैं। हरिऔध, शिवनंदन सहाय तथा राय देवीप्रसाद पूर्ण द्वारा कुछ नाटक लिखे गए। इस युग ने कई सम्पादकों जन्म दिया। पन्डित ईश्वरी प्रसाद शर्मा ने आधा दर्जन से अधिक पत्रों का सम्पादन किया। शिव पूजन सहाय उनके योग्य शिष्यों में शुमार हुए। इस युग में हिन्दी आलोचना को एक दिशा मिली। इस युग ने हिन्दी के विकास की नींव रखी। यह कई मायनों में नई मान्यताओं की स्थापना करने वाला युग रहा।

रामचंद्र शुक्ल एवं प्रेमचंद युग

गद्य के विकास में इस युग का विशेष महत्त्व है। पं रामचंद्र शुक्ल (1884–1941) ने निबंध, हिन्दी साहित्य के इतिहास और समालोचना के क्षेत्र में गंभीर लेखन किया। उन्होंने मनोविकारों पर हिंदी में पहली बार निबंध लेखन किया। साहित्य समीक्षा से संबंधित निबंधों की भी रचना की। उनके निबंधों में भाव और विचार अर्थात् बुद्धि और हृदय दोनों का समन्वय है। हिंदी शब्दसागर की भूमिका के रूप में लिखा गया, उनका इतिहास आज भी अपनी सार्थकता बनाए हुए हैं, जायसी, तुलसीदास और सूरदास पर लिखी गयी उनकी आलोचनाओं ने भावी आलोचकों का मार्गदर्शन किया। इस काल के अन्य निबंधकारों में जैनेन्द्र कुमार जैन, सियारामशरण गुप्त, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी और जयशंकर प्रसाद आदि उल्लेखनीय हैं।

कथा साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचंद ने क्रांति ही कर डाली। अब कथा साहित्य केवल मनोरंजन, कौतूहल और नीति का विषय ही नहीं रहा, बल्कि सीधे जीवन की समस्याओं से जुड़ गया। उन्होंने सेवा सदन, रंगभूमि, निर्मला, गबन एवं गोदान आदि उपन्यासों की रचना की। उनकी तीन सौ से अधिक कहानियां मानसरोवर के आठ भागों में तथा गुप्तधन के दो भागों में संग्रहित हैं। पूस की रात, कफन, शतरंज के खिलाड़ी, पंच परमेश्वर, नमक का दरोगा तथा ईदगाह आदि उनकी कहानियां खूब लोकप्रिय हुई। इसकाल के अन्य कथाकारों में विश्वंभर शर्मा कौशिक, वृंदावनलाल वर्मा, राहुल सांकृत्यायन, पांडेय बेचन शर्मा उग्र, उपेन्द्रनाथ अश्क, जयशंकर प्रसाद, भगवतीचरण वर्मा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

नाटक के क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद का विशेष स्थान है। इनके चंद्रगुप्त, स्कंदगुप्त, ध्रुवस्वामिनी जैसे–ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास और कल्पना तथा भारतीय और पाश्चात्य नाट्य पद्यतियों का समन्वय हुआ है। लक्ष्मीनारायण मिश्र, हरिकृष्ण प्रेमी, जगदीशचंद्र माथुर आदि इस काल के उल्लेखनीय नाटककार हैं।

अद्यतन काल

इस काल में गद्य का चहुंमुखी विकास हुआ। पं हजारी प्रसाद द्विवेदी, जैनेंद्र कुमार, अज्ञेय, यशपाल, नंददुलारे वाजपेयी, डॉ. नगेंद्र, रामवृक्ष बेनीपुरी तथा डॉ. रामविलास शर्मा आदि ने विचारात्मक निबंधों की रचना की है। हजारी प्रसाद द्विवेदी, विद्यानिवास मिश्र, कुबेर नाथ राय, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, विवेकी

राय, ने ललित निबंधों की रचना की है। हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल, रवींन्द्रनाथ त्यागी, तथा के पी सक्सेना, के व्यंग्य आज के जीवन की विद्रूपताओं के उद्घाटन में सफल हुए हैं जैनेन्द्र, अज्ञेय, यशपाल, इलाचंद्र जोशी, अमृतलाल नागर, रांगेय राघव और भगवती चरण वर्मा ने उल्लेखनीय उपन्यासों की रचना की. नागार्जुन, फणीश्वर नाथ रेणु, अमृतराय, तथा राही मासूम रजा ने लोकप्रिय आंचलिक उपन्यास लिखे हैं। मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, मन्नू भंडारी, कमलेश्वर, भीष्म साहनी, भैरव प्रसाद गुप्त, आदि ने आधुनिक भाव बोध वाले अनेक उपन्यासों और कहानियों की रचना की है। अमरकांत, निर्मल वर्मा तथा ज्ञानरंजन आदि भी नए कथा साहित्य के महत्वपूर्ण स्तंभ हैं।

प्रसादोत्तर नाटकों के क्षेत्र में लक्ष्मीनारायण लाल, लक्ष्मीकांत वर्मा, मोहन राकेश तथा कमलेश्वर के नाम उल्लेखनीय हैं। कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, रामवृक्ष बेनीपुरी तथा बनारसीदास चतुर्वेदी आदि ने संस्मरण रेखाचित्र व जीवनी आदि की रचना की है। शुक्ल जी के बाद पं हजारी प्रसाद द्विवेदी, नंद दुलारे वाजपेयी, नगेन्द्र, रामविलास शर्मा तथा नामवर सिंह ने हिंदी समालोचना को समृद्ध किया। आज गद्य की अनेक नयी विधाओं जैसे–यात्रा वृत्तांत, रिपोर्ताज, रेडियो रूपक, आलेख आदि में विपुल साहित्य की रचना हो रही है और गद्य की विधाएं एक दूसरे से मिल रही हैं।

आधुनिक हिंदी पद्य का इतिहास

आधुनिक काल 1850 से हिंदी साहित्य के इस युग को भारत में राष्ट्रीयता के बीज अंकुरित होने लगे थे। स्वतंत्रता संग्राम लड़ा और जीता गया। छापेखाने का आविष्कार हुआ, आवागमन के साधन आम आदमी के जीवन का हिस्सा बने, जन संचार के विभिन्न साधनों का विकास हुआ, रेडिओ, टी वी व समाचार पत्र हर घर का हिस्सा बने और शिक्षा हर व्यक्ति का मौलिक अधिकार। इन सब परिस्थितियों का प्रभाव हिंदी साहित्य पर अनिवार्यत: पड़ा। आधुनिक काल का हिंदी पद्य साहित्य पिछली सदी में विकास के अनेक पड़ावों से गुजरा। जिसमें अनेक विचार धाराओं का बहुत तेजी से विकास हुआ। जहां काव्य में इसे छायावादी युग, प्रगतिवादी युग, प्रयोगवादी युग, नयी कविता युग और साठोत्तरी कविता इन नामों से जाना गया, छायावाद से पहले के पद्य को भारतेंदु हरिश्चंद्र युग और महावीर प्रसाद द्विवेदी युग के दो और युगों में बांटा गया। इसके विशेष कारण भी हैं।

भारतेंदु हरिश्चंद्र युग की कविता (1850-1900)

ईस्वी सन् 1850 से 1900 तक की कविताओं पर भारतेंदु हरिश्चंद्र का गहरा प्रभाव पड़ा है। वे ही आधुनिक हिंदी साहित्य के पितामह हैं। उन्होंने भाषा को एक चलता हुआ रूप देने की कोशिश की। आपके काव्य-साहित्य में प्राचीन एवं नवीन का मेल लक्षित होता है। भक्तिकालीन, रीतिकालीन परंपराएं आपके काव्य में देखी जा सकती हैं तो आधुनिक नूतन विचार और भाव भी आपकी कविताओं में पाए जाते हैं। आपने भक्ति-प्रधान, शृंगार-प्रधान, देश-प्रेम-प्रधान तथा सामाजिक-समस्या-प्रधान कविताएं की हैं। आपने ब्रजभाषा से खड़ीबोली की ओर हिंदी-कविता को ले जाने का प्रयास किया। आपके युग में अन्य कई महानुभाव ऐसे हैं, जिन्होंने विविध प्रकार हिंदी साहित्य को समृद्ध किया। इस काल के प्रमुख कवि हैं-

भार्तेन्दु हरिश्चन्द्र
प्रताप नारायण मिश्र
बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'
राधाचरण गोस्वामी
अम्बिका दत्त व्यास

पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी युग की कविता (1900-1920)

सन् 1900 के बाद दो दशकों पर पं महावीर प्रसाद द्विवेदी का पूरा प्रभाव पड़ा। इस युग को इसीलिए द्विवेदी-युग कहते हैं। 'सरस्वती' पत्रिका के संपादक के रूप में आप उस समय पूरे हिंदी साहित्य पर छाए रहे। आपकी प्रेरणा से ब्रज-भाषा हिंदी कविता से हटती गई और खड़ी बोली ने उसका स्थान ले लिया। भाषा को स्थिर, परिष्कृत एवं व्याकरण-सम्मत बनाने में आपने बहुत परिश्रम किया। कविता की दृष्टि से वह इतिवृत्तात्मक युग था। आदर्शवाद का बोलबाला रहा। भारत का उज्ज्वल अतीत, देश-भक्ति, सामाजिक सुधार, स्वभाषा-प्रेम वगैरह कविता के मुख्य विषय थे। नीतिवादी विचारधारा के कारण शृंगार का वर्णन मर्यादित हो गया। कथा-काव्य का विकास इस युग की विशेषता है। भाषा खुरदरी और सरल रही। मधुरता एवं सरलता के गुण अभी खड़ी-बोली में आ नहीं पाए थे। सर्वश्री मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी आदि इस युग के यशस्वी कवि हैं जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने इसी युग में ब्रज भाषा में सरस रचनाएं प्रस्तुत कीं। इस युग के प्रमुख कवि-

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
रामचरित उपध्याय
जगन्नाथ दास रत्नाकर
गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही'
श्रीधर पाठक
राम नरेश त्रिपाठी
मैथिलीशरण गुप्त
लोचन प्रसाद पाण्डेय
सियारामशरण गुप्त

छायावादी युग की कविता (1920-1936)

सन् 1920 के आस-पास हिंदी में कल्पनापूर्ण स्वछंद और भावुक कविताओं की एक बाढ़ आई। यह यूरोप के रोमांटिसिज्म से प्रभावित थी। भाव, शैली, छंद, अलंकार सब दृष्टियों से इसमें नयापन था। भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता के बाद लोकप्रिय हुई इस कविता को आलोचकों ने छायावादी युग का नाम दिया। छायावादी कवियों की उस समय भारी कटु आलोचना हुई परंतु आज यह निर्विवाद तथ्य है कि आधुनिक हिंदी कविता की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि इसी समय के कवियों द्वारा हुई। जयशंकर प्रसाद, निराला, सुमित्रनंदन पंत, महादेवी वर्मा इस युग के प्रधान कवि हैं।

उत्तर-छायावाद युग- (1936-1943)

यह काल भारतीय राजनीति में भारी उथल-पुथल का काल रहा है। राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय, कई विचारधाराओं और आन्दोलनों का प्रभाव इस काल की कविता पर प डॉ. द्वितीय विश्वयुद्ध के भयावह परिणामों के प्रभाव से भी इस काल की कविता बहुत हद तक प्रभावित है। निष्कर्षतः राष्ट्रवादी, गांधीवादी, विप्लववादी, प्रगतिवादी, यथार्थवादी, हालावादी आदि विविध प्रकार की कवितायें इस काल में लिखी गई। इस काल के प्रमुख कवि हैं–

माखनलाल चतुर्वेदी
बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'
सुभद्रा कुमारी चौहान
रामधारी सिंह 'दिनकर'

हरिवंश राय 'बच्चन'
भगवतीचरण वर्मा
नरेन्द्र शर्मा
रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'
शिवमंगल सिंह 'सुमन'
नागार्जुन
केदारनाथ अग्रवाल
त्रिलोचन
रांगेयराघव

प्रगतिवादी युग की कविता (1936)

छायावादी काव्य बुद्धिजीवियों के मध्य ही रहा। जन-जन की वाणी यह नहीं बन सका। सामाजिक एवं राजनैतिक आंदोलनों का सीधा प्रभाव इस युग की कविता पर सामान्यत: नहीं पड़ा। संसार में समाजवादी विचारधारा तेजी से फैल रही थी। सर्वहारा वर्ग के शोषण के विरुद्ध जनमत तैयार होने लगा। इसकी प्रतिच्छाया हिंदी कविता पर भी पड़ी और हिंदी साहित्य के प्रगतिवादी युग का जन्म हुआ। 1930 के बाद की हिंदी कविता ऐसी प्रगतिशील विचारधारा से प्रभावित है। 1936 में 'प्रगतिशील लेखक संघ' के गठन के साथ हिन्दी साहित्य में मार्क्सवादी विचारधारा से प्रेरित प्रगतिवादी आन्दोलन की शुरुआत हुई। इसका सबसे अधिक दूरगामी प्रभाव हिन्दी आलोचना पर पड़ा। मार्क्सवादी आलोचकों ने हिन्दी साहित्य के समूचे इतिहास को वर्ग-संघर्ष के दृष्टिकोण से पुनर्मूल्यांकन करने का प्रयास आरंभ किया। प्रगतिवादी कवियों में नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल और त्रिलोचन के साथ नयी कविता के कवि मुक्तिबोध और शमशेर को भी रक्खा जाता है।

प्रयोगवाद-नयी कविता युग की कविता (1943-1960)

दूसरे विश्वयुद्ध के पश्चात संसार भर में घोर निराशा तथा अवसाद की लहर फैल गई। साहित्य पर भी इसका प्रभाव पड़ा। 'अज्ञेय' के संपादन में 1943 में 'तार सप्तक' का प्रकाशन हुआ। तब से हिंदी कविता में प्रयोगवादी युग का जन्म हुआ ऐसी मान्यता है। इसी का विकसित रूप नयी कविता कहलाता है। दुर्बोधता, निराशा, कुंठा, वैयक्तिकता, छंदहीनता के आक्षेप इस कविता पर भी

किए गए हैं। वास्तव में नयी कविता नयी रुचि का प्रतिबिंब है। इस धारा के मुख्य कवि हैं–

अज्ञेय,
गिरिजाकुमार माथुर,
प्रभाकर माचवे,
भारतभूषण अग्रवाल,
मुक्तिबोध,
शमशेर बहादुर सिंह,
धर्मवीर भारती,
नरेश मेहता,
रघुवीर सहाय,
जगदीश गुप्त,
सर्वेश्वर दयाल सक्सेना,
कुंवर नारायण,
केदार नाथ सिंह।

इस प्रकार आधुनिक हिंदी खड़ी बोली कविता ने भी अल्प समय में उपलब्धि के उच्च शिखर सर किए हैं। क्या प्रबंध काव्य, क्या मुक्तक काव्य, दोनों में हिंदी कविता ने सुंदर रचनाएं प्राप्त की हैं। गीति-काव्य के क्षेत्र में भी कई सुंदर रचनाएं हिंदी को मिली हैं। आकार और प्रकार का वैविध्य बरबस हमारा ध्यान आकर्षित करता है। संगीत-रूपक, गीत-नाटय वगैरह क्षेत्रों में भी प्रशंसनीय कार्य हुआ है। कविता के बाह्य एवं अंतरंग रूपों में युगानुरूप जो नये-नये प्रयोग नित्य-प्रति होते रहते हैं, वे हिंदी कविता की जीवनी-शक्ति एवं स्फूर्ति के परिचायक हैं।

10

हिन्दी की उपभाषाएँ

उपभाषा किसी भाषा के ऐसे विशेष रूप को बोलते हैं, जिसे उस भाषा के बोलने वाले लोगों में एक भिन्न समुदाय प्रयोग करता हो। अक्सर 'उपभाषा' किसी भाषा के क्षेत्रीय प्रकारों को कहा जाता है, उदाहरण के लिए छत्तीसगढ़ी, हरयाणवी, मारवाड़ी, ब्रजभाषा और खड़ीबोली हिन्दी की कुछ क्षेत्रीय उपभाषाएँ हैं, लेकिन कभी-कभी किसी सामजिक वर्ग द्वारा प्रयोग होने वाली भाषा की किस्म को भी 'उपभाषा' कह दिया जाता है। कभी-कभी उपभाषा को बोली भी कहते हैं, हालाँकि यह शब्द मानक भाषाओं के लिए भी इस्तेमाल होता है।

उपभाषा पहचान

कोई उपभाषा अपने व्याकरण, शब्दावली, लहजे और उच्चारण से जानी जाती है। उदाहरण के लिए मानक हिन्दी और रूहेलखंड की खड़ीबोली में शब्दों और व्याकरण का अंतर दिखता है–

मानक हिन्दी–चिड़ियों को तंग मत कर। दाना छाँव में डाल देना। वह शाम को नहीं आएंगी।

खड़ीबोली–चिड़ियों कु दिक मति करे। दाना छाँ में धर दीजीयो। वो शाम कु न आने की हैं।

इसी तरह साधारण पंजाबी भाषा और पंजाबी की हिन्द को उपभाषा में अंतर देखे जा सकते हैं–

हिन्दी वाक्य–हमारी माँ कहाँ हैं? वह किसी काम के लिए बाहर गई हैं।

साधारण पंजाबी–साड्डी माँ कित्थे ऐ? ओ किसी कम्म लई बाश्र गघ्ए ने।

हिन्द को पंजाबी–अस्साँ दी माँ कित्थे ए? ओ किसी कम्मे आस्ते बाअर गई दीन।

मानक भाषा और उपभाषा का अंतर

भाषाविज्ञान का एक कथन है कि 'फौज और नौसेना वाली उपभाषा को भाषा कहते है', यानि अगर किसी उपभाषा को बोलने वाले अपना राज्य या साम्राज्य बनाने में सफल हो जाएँ तो उसे एक 'मानक भाषा' का दर्जा दे देते हैं और उस से सम्बंधित अन्य बोलियों को उस मानक भाषा की उपभाषा कहने लगते हैं। इसी प्रक्रिया से मानक हिन्दी एक भाषा मानी जाती है, जबकि ब्रजभाषा एक उपभाषा कहलाती है। अक्सर किसी बोली को उपभाषा तब बुलाया जाता है, जब–

उसे बोलने वालों का कोई अपना अलग स्वशासित राज्य, प्रांत या देश न हो।

उसका लिखाई में कम प्रयोग हो और उसमें साहित्य उपलब्ध न हो।

समाज में उसे बोलने से प्रतिष्ठा कम हो।

उसमें मानकीकरण कम हो और उसे बोलने वाले शब्दों के कई रूप प्रयोग करें।

भारत का उत्तर और मध्य देश बहुत समय पहले से हिंदी-क्षेत्र नाम से जाना जाता है। हिंदी-प्रयोग-क्षेत्र के विस्तृत होने के कारण अध्ययन सुविधा के लिए उसे विविध वर्गो में विभक्त किया गया है, जॉर्ज इब्राहिम ग्रियर्सन ने हिंदी के मुख्य दो उपवर्ग बनाए हैं (1) पश्चिमी हिंदी, (2) पूर्वी हिंदी। उन्होंने बिहारी को अलग भाषा के रूप में व्यवस्थित किया है।

हिंदी भाषा के ऐतिहासिक स्रोत-आधार पर अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि अपभ्रंश की शौरसेनी, अर्धमागधी, मागधी और खस शाखाओं से हिंदी का विकास विविध क्षेत्र में हुआ है। इसे मुख्यत: पाँच उपवर्गो में विभक्त कर सकते हैं–1. पश्चिमी हिंदी, 2. पूर्वी हिंदी, 3. बिहारी हिंदी, 4. राजस्थानी हिंदी, 5. पहाड़ी हिंदी।

पश्चिमी हिंदी

इसका विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। पश्चिमी हिंदी का क्षेत्र उत्तर भारत में मध्य भारत के कुछ अंश तक फैला है। अर्थात् उत्तरांचल प्रदेश के हरिद्वार, हरियाणा से लेकर उत्तर प्रदेश के कानपुर के पश्चिमी भाग तक है। आगरा से लेकर मध्य क्षेत्र ग्वालियर और भोपाल तक है। क्षेत्र-विस्तार के कारण पश्चिमी हिंदी में पर्याप्त विविधता दिखाई देती है। इसमें मुख्यतः पाँच बोलियों के रूप मिलते हैं।

कौरवी–प्राचीनकाल में इस क्षेत्र को कुरू प्रदेश कहते थे। इसी आधार पर इसका कौरवी नाम पड़ा है। इसे पहले खड़ी-बोली नाम भी दिया जाता था। अब खड़ी-बोली हिंदी का पर्याय रूप है। खड़ी-बोली नामकरण के विषय में कुछ विद्वानों का मत है कि खड़ापन (खरेपन) शुद्धता के आधार पर है, तो कुछ भाषाविदों का कहना है कि खड़ी-पाई (आ की मात्रा 'ा') के प्रयोग (आना, खाना, चलना, हँसना) आधार पर खड़ी-बोली नाम पड़ा है।

वर्तमान समय में इसका प्रयोग दिल्ली, मेरठ, मुजफ्फर नगर, रामपुर, बिजनौर, सहारनपुर (उ.प्र.) हरिद्वार, देहरादून (उत्तरांचल), यमुना नगर, करनाल, पानीपत (हरियाणा का यमुना तटीय भाग) में होता है।

कौरवी की विशेषताएँ

क्रिया रूप अकारांत होता है, यथा–आना, खाना, दौड़ना, हँसना, फैलना और सींचना आदि।

कर्ता परसर्ग 'ने' का प्रयोग स्पष्ट रूप में होता है।

कहीं-कहीं पर 'न' के स्थान पर 'ण' ध्वनि का का प्रयोग मिलता है।

इसमें तत्सम और तद्भव शब्दों की बहुलता है।

अरबी और फारसी के शब्द यत्र-तत्र मिलते हैं।

वर्तमान हिंदी का स्वरूप इसी बोली को आधार मान कर विकसित हुआ है। हिंदी को राजभाषा, राष्ट्रभाषा और जनभाषा का रूप देने में इस बोली की विशेष भूमिका है।

ब्रजभाषा

ब्रजभाषा की उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से हुई है। हिंदी साहित्य के मध्यकाल अर्थात् भक्ति और रीतिकाल में इस भाषा में पर्याप्त सहित्य रचा गया

है। उस काल में अवधी और ब्रज में ही मुख्यत: रचना होती थी। रीतिकाल ब्रजभाषा ही रचना की आधार भाषा थी। इसीलिए इसे हिंदी के रूप में स्वीकृति मिली थी। विशेष महत्त्व मिलने के कारण ही 'ब्रज बोली' कहना अनुकूल नहीं लगता वरन् 'ब्रजभाषा' कहना अच्छा लगता है।

इसका केन्द्र स्थल आगरा और मथुरा है। वैसे इसका प्रयोग अलीगढ़ और धौलपुर तक होता है। हरियाणा के गुड़गाँव और फरीदाबाद के कुछ अंश और मध्य प्रदेश के भरतपुर और ग्वालियर के कुछ भाग में ब्रज का प्रयोग होता है।

इसकी कुछ विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं–

पद-रचना में ओकार और औकार बहुला रूप है, जैसे–

खाया झ खायौ झ गया झ गयो या गयौ।

बहुवचन में 'न' का प्रयोग होता है, यथा–लोग झ लागनय बात झ बातन।

'उ' विपर्यय रूप मिलता है, जैसे–कुछ झ कछु।

संबंध कारकों के विशेष रूप मिलते हैं–मेरो, तेरो, हमारो, तिहारो, आदि।

तद्भव शब्दों की बहुलता है।

वर्तमान समय में अरबी, फारसी के साथ अंग्रेजी शब्द भी प्रयुक्त होते हैं।

इसके प्रमुख कवि हैं– सूरदास, नन्ददास, कृष्णदास, केशव, बिहारी, भूषण और रसखान आदि। हिंदी भाषा और साहित्य के विकास में ब्रज की बलवती भूमिका रही है।

हरियाणवी

इसे बाँगारू या हरियानी नाम भी दिया जाता है, किन्तु जब हरियाणवी ही सर्वप्रचलित और मान्य हो गया है। हरियाणा प्रदेश का उद्भव और नामकरण बोली के आधार पर हुआ है। हरियाणवी हरियाणा के सभी जिलों में बोली जाती हैं। हरियाणवी और कौरवी में पर्याप्त समानता है। हरियाणा की सीमा उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, पंजाब और राजस्थान से लगी हुई है। इस प्रकार इसके सीमावर्ती क्षेत्रों में निकट की बोली का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। इस प्रभाव के साथ हरियाणवी विशेष चर्चा हेतु इसे सात उपवर्गो में विभक्त कर सकते हैं।

केन्द्रीय हरियाणवी–इसका केन्द्र रोहतक है। सामान्य उदाहरण देने हेतु प्राय: इसी रूप का उल्लेख किया जाता है। 'णकार' बहुला रूप होने के कारण 'न' के स्थान पर प्राय: 'ण' का प्रयोग किया जाता है। 'ल' के स्थान पर 'ल'

विशेष ध्वनि सुनाई देती है, यथा–बालक झ बालक क्रिया 'है' के स्थान पर 'सै' का प्रयोग होता है।

ब्रज हरियाणवी –फरीदाबाद और मथुरा के मध्य के हरियाणा के क्षेत्र में इसका प्रयोग होता है। ब्रज का रंग स्पष्ट दिखाई देता है। इसमें 'ओ' ध्वनियों की बहुलता है, यथा- खायौ, खायो: गयो, गयोय नाच्यो, नाच्यौ आदि। 'ल' के स्थान पर 'र' का प्रयोग मिलता है–काला झ कारा, बिजली झ बिजुरी आदि।

मेवाती हरियाणवी–मेव क्षेत्र के आधार पर इसका नाम मेवाती पड़ा है। इसका केन्द्र रेवाड़ी है। इसमें झज्जर, गुड़गाँव, बावल और नूह का क्षेत्र आता है। इसमें, हरियाणवी, ब्रज और राजस्थानी का प्रभाव दिखाई देता है। इसमें 'ण' और 'ल' ध्वनि की बहुलता है।

अहीरवाटी हरियाणवी–**रेवाड़ी** और महेन्द्रगढ़ का क्षेत्र अहीरवाल है। इसी आधार पर इसका नामकरण हुआ है। नारनौल से कोसली तक इसका स्वरूप मिलता है। इसमें मेवाती, राजस्थानी (बागड़ी) का प्रभाव दिखाई देता है। इसमें ओकार बहुल रूप मिलता है, यथा- था झथो।

बागड़ी हरियाणवी– इसका क्षेत्र हिसार और सिरसा है। भिवानी जिले का पर्याप्त क्षेत्र इस बोली के अन्तर्गत आता है। इसे केन्द्रीय हरियाणी और राजस्थान (बागड़ी) का मिश्रित और विकसित रूप मान सकते हैं। बहुवचन रचन में आँ' प्रत्यय का योग मिलता है, यथा- बात झबाताँ। लोप का बहुल रूप सामने आता है, जैसे-अहीर झ हीर, अनाज ठाना, नाज, उठाना।

कौरवी हरियाणवी–कौरवी क्षेत्र से जुड़ें हरियाणा के भाग में इस उपबोली का रूप मिलता है। यमुना नगर, कुरूक्षेत्र, करनाल और पानीपत के कुछ भाग में इसका प्रयोग होता हैं। आकारांत शब्दों का बहुल प्रयोग मिलता है, यथा- खाना, धोना, सोना आदि।

अबदालवी हरियाणवी–अम्बाला इसका मुख्य केन्द्र है। इस उपबोली पर पंजाबी भाषा का स्पष्ट प्रमुख दिखाई देता है। इसमें महाप्राण ध्वनि अल्पप्राण हो जाती है- हाथ झ हात, साथ झसात।

लोप की बहुलता भी दिखाई देती है- कृपया झकृप्या, मिनट झ मिन्ट।

कन्नौजी–कन्नौजी नामकरण कन्नौज क्षेत्र के नाम से हुआ हैं। इसका प्रयोग फर्रूखाबाद, हरदोई, शाहजहाँपुर, पीलीभीत हैं इटावा और कानपुर के पश्चिमी भाग में भी इसका प्रयोग होता है। इसका क्षेत्र अवधी और ब्रज के मध्य है। इस पर ब्रज का प्रभाव विशेष रूप से दिखाई देता है।

बुंदेली–बुंदेलखंड में बोली जाने के कारण इसे बुंदेली बोली की संज्ञा दी गयी हैं, इसके प्रयोग क्षेत्र में झांसी, छतरपुर ग्वालियर, भोपाल, जालौन का भाग आता है। इसमें और ब्रज बोली में पर्याप्त समानता है।

पूर्वी हिंदी–पूर्वी हिंदी का उद्‌भव अर्धमागधी अपभ्रंश से हुआ है। पश्चिमी हिंदी के पूर्व में स्थित होने के कारण इसे पूर्वी हिंदी नाम दिया गया है। इसका प्रयोग प्राचीन कोशल राज्य के उत्तरी-दक्षिणी क्षेत्र में होता है। वर्तमान समय में इसे उत्तर प्रदेश के कानपुर, लखनऊ, गोंडा, बहराइच, फैजाबाद, जौनपुर, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़, मिर्जापुर, इलाहाबाद, मध्य प्रदेश के जबलपुर, रीवाँ आदि जिलों से संबंधित मान सकते हैं। यह इकार, उकार बहुल रूप वाली उपभाषा है। इसमें तीन बोलियाँ हैं–अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी।

अवधी–'अबध' क्षेत्र में प्रयुक्त होने के कारण इसे 'अवधी' नाम से अभिहित किया गया है। इसका प्रयोग गोंडा, फैजाबाद, सुल्तानपुर, रायबरेली, बाराबंकी, इलाहाबाद, लखनऊ, जौनपुर आदि जिलों में होता है। इसकी कुछ प्रमुख विशेषताएँ हैं–

इसमें 'श' के स्थान पर 'स' का प्रयोग होता है- शंकर झ संकर, शाम झ साम आदि।

इसमें 'व' ध्वनि प्रायः 'ब' के रूप में प्रयुक्त होती है, जैसे–वन झ बन, वाहन झ बाहन आदि।

ण् 'इ' और 'उ' स्वरों का बहुल प्रयोग होता है। इ आगम-स्कूल झ इस्कूल, स्त्री झ इस्त्री उ आगम-सूर्य झ सूरज झ सूरूजु

'ण' ध्वनि के स्थान पर प्रायः 'न' का प्रयोग होता है।

ऋ के स्थान पर 'रि' का उच्चारण प्रयोग होता है।

भक्तिकाल में समृठ्ठ साहित्य की रचना हुई है। तुलसीदास कृत 'रामचरित मानव' और जायसी कृत 'पद्‌मावत' महाकाव्यों की रचना अवधी में हुई है। सूफी काव्य-धारा के सभी कवियों ने अवधी भाषा को ही अपनाया। समृठ्ठ लोक-साहित्य मिलता है।

बघेली–इस बोली का केन्द्र रीवाँ हैं। मध्य प्रदेश के दमोह, जबलपुर, बालाघाट में और उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर में कुछ अंश तक बघेली का प्रयोग होता है। इस क्षेत्र पर अवधी का विशेष प्रभाव दिखाई देता है। कुछ विद्वानों ने बघेली को स्वतंत्र बोली न कह कर अवधी का दक्षिणी रूप कहा है। इसमें अवधी की भांति 'व' ध्वनि 'ब' के रूप में प्रयुक्त होती है।

छत्तीसगढ–'छत्तीसगढ़' क्षेत्र से संबंधित होने के कारण इसे छत्तीसगढ़ी बोली नाम दिया गया है। वर्तमान समय में छत्तीसगढ़ प्रदेश के रायपुर, बिलासपुर क्षेत्र में इसका प्रयोग होता है। इसमें कहीं-कहीं पर 'स' ध्वनि 'छ' हो जाती है।अल्पप्राण ध्वनियों के महाप्राणीकरण की प्रवृत्ति विशेष रूप से मिलती है। समृठ्ठ लोक-साहित्य मिलता है।

बिहारी हिंदी

बिहार प्रदेश में प्रयुक्त होने के आधार पर इसे बिहारी नाम दिया गया है। इसका उद्भव मागधी अपभ्रंश भाषा से हुआ है। ग्रियर्सन ने आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के बर्गीकरण में बिहारी को हिंदी से अलग वर्ग में व्यवस्थित किया है। ये भाषाएँ आकार बहुल हैं।

बहुवचन बनाने हेतु नि या न का प्रयोग होता है, यथा- लोग झ लागनि, लोगन सर्वमान के विशेष रूप प्रयुक्त होते हैं- तोहनी हमनी आदि।

बिहारी की अनेक प्रवृत्तियाँ पूर्वी हिंदी के समान मिलती हैं–

इससे मुख्यत: तीन बोली भागो में विभक्त करते हैं।

भोजपुरी–भोजपुरी निश्चय ही बिहारी हिंदी का सबसे विस्तृत क्षेत्र में पयुक्त रूप है। भोजपुर बिहार का एक चर्चित स्थान है। इसी के नाम पर इसे भोजपुरी कहते हैं। इसका केन्द्र बनारस है। भोजपुरी का प्रयोग उत्तर प्रदेश के गाजीपुर, बलिया, बनारस, आजमगढ़, देवरिया, गोरखपुर जिलों में पूर्ण या आशिंक रूप में और बिहार के छपरा, चम्पारन तथा सारन में प्रयोग होता है। इस भाषा में अवधी की कुछ प्रवृत्तियाँ मिलती हैं।

इसमें 'र' ध्वनि का प्राय: लाप हो जाता है, यथा- लरिका झलरका (लड़का), करया झकइया (काला) 'ल' की ध्वनि की प्रबलता दिखाई देती है, जैसे–खाइल, चलल, पाइल आदि। इकार और उकार बहुल रूप में मिलता है। समृठ्ठ लोक-साहित्य मिलता है।

मैथिली–मिथिला क्षेत्र की भाषा होने के कारण इसे 'मैथिली' नाम दिया गया है। इसका प्रयोग दरभंगा, सहरसा, मुजफ्फरनगर, मुंगेर और भागलपुर में होता है। इसमें शब्द स्वरांत होते हैं। इसमें संयुक्त स्वरों (ए, ऐ, ओ, औ) के दीर्घ स्वर के साथ ह्रस्व रूप भी प्रयुक्त होता है। इसमें सहायक क्रियाओं के विशेष रूप मिलते हैं, यथा- छथि, छल आदि। इ, उ बहुला रूप अवधी के ही समान हैं।

मैथिली साहित्य में तत्सम शब्दाबली का आकर्षक प्रयोग साहित्यकारों के संस्कृत ज्ञान का परिचायक है। इसमें समृठ्ठ लोक-साहित्य और आकर्षक साहित्य रचा गया है। मैथिल कोकिल विद्यापति मैथिली भाषा को अपनाने वाले सुनाम धन्य कवि हैं।

मगही–'मागधी' अपभ्रंश से विकसित होने और 'मगध' क्षेत्र में प्रयुक्त होने के आधार पर इसके नाम की इसके स्वरूप और भोजपुरी के स्वरूप में बहुत कुछ समानता है। इसमें सहायक 'हल' से हकी, हथी, हलखिन आदि का रूप प्रयुक्त होते हैं। कारक-चिह्नों में सामान्य के साथ अतिरिक्त चिह्न भी प्रयुक्त होते है, यथा- संप्रदान-ला, लेन, आधकरण-मों। शब्दों में तद्भव या बहुल तद्भव रूप मिलते हैं, यथा- बच्चे के लिए 'बुतरू' का प्रयोग। उच्चारण में अनुनासिक बहुल रूप है।

राजस्थानी हिंदी

राजस्थानी प्रदेश के नाम पर विकसित हिंदी को यह नाम मिला है। इसका उदगम शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। इसके प्रारंभिक रूप में डिंगल का प्रबल प्रभाव रहा है। इसकी कुछ प्रवृत्तियाँ ब्रजभाषा के समान हैं। इसमें टवर्गीय ध्वनियों की प्रधानता होती है, यथा- ड, ड़, ण, ल। महाप्राण ध्वनियों का अल्पप्राणीकरण होने की भी प्रवृत्ति है। बहुबचन परिवर्तन में मुख्यत: 'आँ' का प्रयोग होता है। तद्भव शब्दावली का प्रबल रूप मिलता है।

मेवाती–मेव जाति के नाम पर इस बोली का नाम 'मेवाती' रखा गया है। इसका प्रयोग राजस्थान के अलवर और भरतपुर के उत्तर-पश्चिम भाग में होता है। हरियाणा के गुड़गाँव के कुछ भाग में भी इस बोली का रूप देखा जा सकता है। ब्रज क्षेत्र से लगा होने के कारण इस पर ब्रज का प्रभाव होना स्वाभाविक है। मेवती में समृठ्ठ लोक-साहित्य है।

जयपुरी–इस बोली का केन्द्र जयपुर है, इसलिए इसे जयपुरी नाम दिया गया है। इसका प्रयोग पूर्वी राजस्थान, जयपुर, कोटा और बूँदी में होता है। इस बोली पर ब्रज का प्रभाव दिखाई देता है। परसर्गो में कर्म-संप्रदान-नै, कैय करण-अपादान-सूं, सौय अधिकरण-मै, मालैं विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इसमें समृठ्ठ लोक-साहित्य मिलता है।

मारबाड़ी–इस बोली को 'मेबाड़' क्षेत्र के नाम पर 'मेबाड़ी' कहा गया है। राजस्थान के पश्चिमी भाग में प्रयुक्त प्रयुक्त होने के कारण इसे पश्चिमी

राजस्थान नाम भी दिया जाता है। इसका मुख्य क्षेत्र जोधपुर है। पुरानी मारवाड़ी डिंगल कहते थे। मारवाड़ी व्यवसाय की दृष्टि से राष्ट्रीय स्तर पर प्रसिठ्ठ कवि नरपति नाल्ह, चन्दबरदाई इसी से संबंधित रहे हैं। मीराबाई की रचनाओं में यह रूप देख सकते हैं।

इसमे 'स' ध्वनि 'श' हो जाती है। अनुनासिक ध्वनि का बहुल प्रयोग। तद्भव शब्दावली का बहुल रूप है।

मालवी- मालवा क्षेत्र से संबंधित होने के आधार पर इसे मालवी नाम मिलता है। राजस्थान के दक्षिण में प्रयुक्त होने से दक्षिण नाम भी दिया जाता था। इसके प्रयोग क्षेत्र में उज्जैन, इन्दौर और रतलाम आते हैं।

हिन्दी और उसका विकास

इसमें 'ड़' ध्वनि का विशेष प्रयोग होता है। इसमें 'ण' ध्वनि नहीं है। विभिन्न ध्वनियों का अनुनासिक रूप सामने आता है। इसमें समृठ्ठ लोक-साहित्य मिलता है।

पहाड़ी हिंदी

पहाड़ी हिंदी का उद्भव 'खास' अपभ्रंश से हुआ है। पहाड़ी क्षेत्र में यातायात की शिथिलता के कारण भाषा में विविधता का होना निश्चित रहा। अध्ययन सुविधा के लिए इसे तीन उपवर्ग में विभक्त किया जाता है–पश्चिमी पहाड़ी, मध्य पहाड़ी, पूर्वी पहाड़ी।

पश्चिमी पहाड़ी- इसका केन्द्र शिमला है। इसमें चंबाली, कुल्लई, क्योंथली आदि मुख्य बोलियाँ आती है। यहाँ की बोलियों की संख्या तीस से अधिक है। ये मुख्यत: टाकरी या टक्करी लिपि में लिखी जाती हैं। यहाँ हिंदी का मूलरूप हिंदी में ही मिलता है।

मध्य पहाड़ी- नेपाल पूर्वी पहाड़ी का केन्द्र है। नेपाली, गुरखाली, पर्वतिया और खसपुरा नाम भी दिए जाते हैं। इसमें समृठ्ठ लोक-साहित्य और संक्षिप्त-साहित्य भी मिलता है। नेपाल के संरक्षण मिलने के आधार पर इसका साहित्यिक रूप में विकास हो रहा है। इसकी लिपि नागरी है।

दक्खिनी हिंदी

दक्खिनी शब्द दक्षिण का तद्भव शब्द है। आर्यो का आगमन जब सिंध, पंजाब प्रांत में हुआ, तो यह भाग दाहिने हाथ की ओर था, उसे दक्षिण कहा गया

है। हिंदी साहित्य के इतिहास पर प्राचीनकाल से यदि विचार करें, तो भारत में प्रचलित विभिन्न लिपियों में हिंदी साहित्य मिलता है। गुजराज और महाराष्ट्र में हिंदी का प्रयोग हिंदी भाषा-भाषी क्षेत्र के समान ही होता रहा है। मध्य युग में, हिंदी दक्षिण के प्रांतो में आर्कषक रूप में प्रयुक्त होती थी।

अकबर के समय में दक्खिन क्षेत्र में मालवा, बरार, खानदेश औरंगाबाद, हैदराबाद, मुहम्मदाबाद और बीजापुर आ गए हैं। इस प्रकार दक्खिन क्षेत्र में प्रयुक्त होने के कारण इसे दक्खिनी हिंदी नाम दिया गया है।

उद्‌भव-विकास–चौदहवीं शताब्दी में दिल्ली का शासक मुहम्मद-बिन-तुगलग था। उन्होंने दक्षिण की शासन व्यवस्था को अनुकूल रूप देने के लिए अपनी राजधानी को दिल्ली से दौलताबाद करने का निर्णय लिया। मुहम्मद-बिन-तुगलक के जाने से पूर्व निजामुद्दीन चिश्ती ने 400 सूफी पहले ही दक्षिण भेज दिए थे। तुगलक अपने साथ सूफी फकीर भी ले गया। वहाँ शासन व्यवस्था अनुकूल होने पर राजधानी को पुनः दौलताबाद से दिल्ली लाने का निर्णय लिया। उस समय आज की तरह-यातायात सुविधा न थी। इस प्रकार अनेक सूफी-संत और सिपाही वहाँ से लौटे ही नहीं। इस निर्णय से तुगलक को 'पागल' की उपाधि उवश्य मिली,

किन्तु इससे दक्षिण में प्रभावी प्रचार हुआ। दिल्ली से जाने वालों की भाषा खड़ी-बोली, ब्रज, अवधी, पंजावी आदि के मिश्रित के रूप में थी। वहाँ हिंदी का प्रचार होता गया। अलाउद्दीन खिलजी, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ और औरंगजेब के समय तक दक्खिनी हिंन्दी विकसित होती गई है। दक्खिनी भाषा के स्वरूप के विषय में डॉ. परमानंद पांचाल का कथन इस प्रकार है–''दक्खिनी हिंदी का वह रूप है, जिसका विकास 14 वीं सदी से अठारहवीं सदी तक दक्षिण के बहमनी, कुतुबशाही और आदिलशाही आदि राज्यों के सुलतानों के संरक्षण में हुआ था। यह मूलतः दिल्ली के आस-पास की हरियाणवी एवं खड़ी-बोली ही थी, जिस पर ब्रज, अवधी और पंजाबी के साथ मराठी, सिंधी, गुजराती और दक्षिण की सहवर्ती भाषाओं अर्थात तेलगु, कन्नड़ और पूर्तगाली आदि का भी प्रभाव पड़ा था और इसने अरबी, फारसी, तुर्की तथा मलयालम आदि भाषाओं के शब्द भी प्रचुर मात्रा में ग्रहण किये थे। इसके लेखक और कवि प्रायः इस्लाम के अनुयायी थे। इसे एक प्रकार से सबसे मिश्रित भाषा कहा जा सकता है।'' डा. श्रीराम शर्मा के अनुसार, बरार, हैदराबाद, महाराष्ट्र और मैसूर में ही दक्खिनी हिंदी भाषा का उद्‌भव विकास हुआ है।

पश्चिमी और पूर्वी हिंदी की तुलना

हिंदी भाषा के विभिन्न छः भागों-पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी, बिहारी हिंदी, राजस्थानी हिंदी, पहाड़ी हिंदी और दक्खिनी हिंदी में पूर्वी और पश्चिमी हिंदी का विशेष महत्व है। हिंदी भाषा के मध्य युग में इन्ही दो वर्गो की अवधी और ब्रज दो बोलियों को हिंदी के रूप में मान्यता मिली थीं। इसी में काव्य-रचना होती रही है। भक्तिकाल में अवधि और ब्रज दोनों भाषाओं को काव्य-सृजन में अपनाई जाती रही हैं और रीतिकाल में ब्रजभाषा प्रयुक्त होती थी। तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' महाकाव्य की रचना अवधी में की है, जायसी ने 'पदमावत' की रचना ठेठ अवधि में की है।

'प्रमाश्रयी काव्य' अवधी में ही लिखा गया है। भक्ति काल के समस्त अष्टछाप कवियों ने ब्रजभाषा को अपनाया है, तो रीतिकाल के केशव, घनानन्द, बिहारी आदि कवियों ने ब्रजभाषा को ही अपनाया है।

तुलनात्मक अध्ययन

पश्चिमी हिंदी की उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से हुई, तो पूर्वी हिंदी का उद्‌भव अर्थ-मागधी से हुआ।

पश्चिमी हिंदी की पाँच प्रमुख बोलियाँ हैं-कौरवी, हरियाणवी, ब्रज, कन्नौजी, बुंदेली। पूर्वी हिंदी की तीन प्रमुख बोलियाँ है-अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी।

पश्चिमी हिंदी निकटवर्ती भाषा पंजाबी से यत्र-तत्र प्रभावित लगती है और पूर्वी हिंदी में बिहारी हिंदी से पर्याप्त समानता मिलती है।

पूर्वी हिंदी में 'इ' और 'उ' का बहुल रूप में प्रयुक्त पश्चिमी हिंदी में 'ई' और 'ऊ' के प्रयोग की प्रमुखता है।

पश्चिमी हिंदी में संयुक्त स्वरों का स्वतंत्र रूप में उच्चारण होता है, यथा-बालक झ बालक किन्तु पूर्वी हिंदी में पूर्ववत रहती है।

पूर्वी हिंदी में संयुक्त स्वरों का स्वतंत्र रूप में उच्चारण होता है, यथा-और झ क अउर ऐनक झ अइनक।

पश्चिमी हिंदी में संयुक्त स्वर का बहुल रूप में प्रयोग होता है।

पूर्वी हिंदी में 'ल' के स्थान पर यदा-कदा 'र' का प्रयोग होता है, यथा-केला झ केरा, फर झ फल आदि।

पश्चिमी हिंदी में 'ल' का प्रयोग होता है।

पूर्वी हिंदी में 'श' ध्वनि प्रायः 'स' के रूप में प्रयुक्त होती है, यथा-शंकर झ संकर, शेर झ सेर। पश्चिमी हिंदी में प्रायः मूल रूप प्रयुक्त होता है।

पूर्वी हिंदी में 'व' ध्वनि प्रायः 'ब' के रूप में प्रयुक्त होता है, यथा-वन झ बन, आशर्वाद झ आसीर्वाद आदि।

पश्चिमी हिंदी में प्रायः मूल रूप प्रयुक्त होता है।

पूर्वी हिंदी में कारक-चिह्न 'ने' का प्रयोग विरल रूप में होता है, जबकि पश्चिमी हिंदी का मुख्य चिह्न है।

पूर्वी हिंदी में उत्तम पुरुष सर्वनाम में एकवचन के लिए 'हम' और बहुवचन के लिए 'हम' या 'हम सब' प्रयुक्त होते हैं। जबकि पश्चिमी हिंदी में प्रायः एकवचन के लिए 'मैं' और बहुवचन के लिए 'हम' का प्रयोग होता है।

पूर्वी हिंदी में क्रिया के साथ यत्र-तत्र 'ब' का प्रयोग होता है-चलब, करब आदि तो पश्चिमी हिंदी (ब्रज) में ओकार रूप सामने आता है—चलना झ चलनों, करना झ करनो।

क्रिया के भविष्यत् काल के रूप निर्धारण में ग, गी, गे के प्रयोग पश्चिमी हिंदी में मिलते हैं, किन्तु पूर्वी हिंदी में रूप-विविधता है।

इस प्रकार स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि हिंदी की प्रमुख उपभाषाओं-पूर्वी हिंदी और पश्चिमी हिंदी की बोलियाँ की शब्द-संपदा में बहुत कुछ समानता है, वहीं उनकी ध्वन्यात्मक, शब्द-संरचनागत और व्याकरण आधार पर पर्याप्त भिन्नता है। यह भिन्नता ही संबंधित बोलियो की अपनी विशेषताएँ हैं। हिंदी की इन दोनों उप-भाषाओं और उनकी बोलियों का महत्त्व स्वतः सिद्ध है।

बोलचाल की भाषा का सामान्य परिचय

आमतौर से सामान्य भाषा के अन्तर्गत भाषा के कई रूप उभर कर आते हैं। डॉ. भोलानाथ के अनुसार, ये रूप प्रमुखतः चार धारों पर आधारित हैं-इतिहास, भूगोल, प्रयोग और निर्माता। इनमें प्रयोग क्षेत्र सबसे विस्तृत है, जब कई व्यक्ति-बोलियों में पारम्पारिक सम्पर्क होता है, तब बोलचाल की भाषा का प्रसार होता है। दूसरे शब्दों में, आपस में मिलती-जुलती बोली या उपभाषाओं में हुए व्यवहार से बोलचाल की भाषा को विस्तार मिलता है। इसे 'सामान्य भाषा' के नाम से जाना जाता है। पर किसी भी भाषा की भाँति यह परिवर्तनशील है, समकालीन, प्रयोगशील तथा भाषा का आधुनिकतम रूप है।

साधारणत: हिन्दी की तीन शैलियों की चर्चा की जाती है। हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी। शिक्षित हिन्दी भाषी अक्सर औपचारिक स्तर पर (भाषण, कक्षा में अध्ययन, रेडियो वार्ता, लेख आदि में) हिन्दी या उर्दू शैली का प्रयोग करते हैं। अनौपचारिक स्तर पर (बाजार में, दोस्तों में गपशप करते समय) प्राय: हिन्दुस्तानी का प्रयोग करते हैं। जिसमें हिन्दुस्तानी के दो रूप पाये जाते हैं। एक रूप वह है, जिसमें अंग्रेजी के प्रचलित शब्द हैं और दूसरे में अगृहीत अंग्रेजी शब्द का प्रचलन है। बोलचाल की हिन्दी में ये सारी शैलियाँ मौजूद रहती हैं। अर्थात् इसमें सरल बहुप्रचलित शब्दों का प्रयोग होता है। चाहे वह तत्सम प्रधान हिन्दी हो या परिचित उर्दू अथवा अंग्रेजी-मिश्रित हिन्दुस्तानी, व्याकरण तो हिन्दी का ही रहता है।

बोलचाल की भाषा बड़े पैमाने पर विस्तृत क्षेत्र में प्रयुक्त होती है। भक्तों द्वारा, साधु-संतों द्वारा, व्यापारियों के जरिए, तीर्थस्थानों में, मेला-महोत्सव में, रेल के डिब्बों में, सेना द्वारा, शिक्षितों में, मजदूर और मालिक के बीच, किसान और जमींदार के बीच बोलचाल की भाषा बड़ी तेजी से फैलने लगती है। यह प्रेम की, भाई-चारे की, इस मिट्टी की तथा हमारी संस्कृति की भाषा है। चूंकि भारतीय संस्कृति सामासिक संस्कृति के रूप में समूचे विश्व में शुमार होती है, इसमें भाषाई अनेकरूपता का दृष्टिगत होना स्वाभाविक है। हमारी संस्कृति की भाँति हमारी भाषा हिन्दी भी अनेकता को अपने में समाहित कर राष्ट्रीय एकता की पहचान कराती है। बहुभाषी राष्ट्र की विविधता, सांस्कृतिक विशालता एवं भौगोलिक वैभिन्न्य के कारण सृष्ट बहुविध शब्दों में से कई मधुर क्षेत्रीय शब्द हमारी बोलचाल की भाषा में समाये हुए हैं। इससे सहजता, बोधगम्यता के साथ-साथ एक अपनापन भी अनायास आ जाता है।

संसार की प्रत्येक बोलचाल की भाषा आगे चलकर मानक भाषा बन जाती है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता है इसकी सहजता और सरलता। मौखिक प्रयोग के कारण कहीं कहीं शुद्धता भले ही न हो, पर बोधगम्यता और सम्प्रेषणीयता में यह सबसे आगे है, जो भाषा जितनी सम्प्रेषणीय है, वह उतनी ही समर्थ है। सम्प्रेषणीयता के बिना भाषा की उपयोगिता कहाँ रह जाएगी ? सच पूछिये तो भाषा दूसरे के लिए अभिप्रेत है। वक्ता और श्रोता के बिना भाषा की कोई परिचिति नहीं है। इसी सम्प्रेषण के चलते मनुष्य अपने आस-पास से लेकर सारे संसार से जुड़ता है। अपने को अच्छी तरह अभिव्यक्त करने हेतु वह अन्यन्त प्रभावशाली ढंग से भाषा का प्रयोग करता है।

सतत परिवर्तनशील होने के कारण भाषा में भिन्नता पायी जाती है। भाषा पर क्षेत्रीय प्रभाव को भी झूठलाया नहीं जा सकता, लेकिन यह भी सत्य है कि भाषा की इन विविधताओं के बावजूद उसका एक मानक रूप होता है। फिर भी 'भाषा बहता नीर' कभी स्थिर कैसे रह सकता है, जन-जन तक फैलकर सबसे घुलमिल कर उसका एक मौखिक रूप सदा बरकरार रहता है, जो सरल, सहज, बोधगम्य और मधुर भी है।

11

हिन्दी की संवैधानिक स्थिति

हिन्दी को भारत की राजभाषा के रूप में 14 सितम्बर सन् 1949 को स्वीकार किया गया। इसके बाद संविधान में अनुच्छेद 343 से 351 तक राजभाषा के सम्बन्ध में व्यवस्था की गयी। इसकी स्मृति को ताजा रखने के लिये 14 सितम्बर का दिन प्रतिवर्ष हिन्दी दिवस के रूप में मनाया जाता है। धारा 343 (1) के अनुसार भारतीय संघ की राजभाषा हिन्दी एवं लिपि देवनागरी है। संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिये प्रयुक्त अंकों का रूप भारतीय अंकों का अंतरराष्ट्रीय स्वरूप (अर्थात 1, 2, 3 आदि) है।

भारतीय संविधान में राष्ट्रभाषा का उल्लेख नहीं है। संसद का कार्य हिंदी में या अंग्रेजी में किया जा सकता है, परन्तु राज्यसभा के सभापति महोदय या लोकसभा के अध्यक्ष महोदय विशेष परिस्थिति में सदन के किसी सदस्य को अपनी मातृभाषा में सदन को संबोधित करने की अनुमति दे सकते हैं। ऽसंविधान का अनुच्छेद 120, किन प्रयोजनों के लिए केवल हिंदी का प्रयोग किया जाना है, किन के लिए हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं का प्रयोग आवश्यक है और किन कार्यों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाना है, यह राजभाषा अधिनियम 1963, राजभाषा नियम 1976 और उनके अंतर्गत समय-समय पर राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय की ओर से जारी किए गए निदेशों द्वारा निर्धारित किया गया है।

हिन्दी को राजभाषा के रूप में स्वीकार किये जाने का औचित्य

हिन्दी को राजभाषा का सम्मान कृपापूर्वक नहीं दिया गया, बल्कि यह उसका अधिकार है। यहां अधिक विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं है, केवल राष्ट्रपिता महात्मा गांधी द्वारा बताये गये निम्नलिखित लक्षणों पर दृष्टि डाल लेना ही पर्याप्त रहेगा, जो उन्होंने एक 'राजभाषा' के लिए बताये थे-

(1) प्रयोग करने वालों के लिए वह भाषा सरल होनी चाहिए।

(2) उस भाषा के द्वारा भारतवर्ष का आपसी धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवहार हो सकना चाहिए।

(3) यह जरूरी है कि भारतवर्ष के बहुत से लोग उस भाषा को बोलते हों।

(4) राष्ट्र के लिए वह भाषा आसान होनी चाहिए।

(5) उस भाषा का विचार करते समय किसी क्षणिक या अल्प स्थायी स्थिति पर जोर नहीं देना चाहिए।

इन लक्षणों पर हिन्दी भाषा बिल्कुल खरी उतरती है।

अनुच्छेद 343 संघ की राजभाषा

(1) संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी, संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अंतर्राष्ट्रीय रूप होगा।

(2) खण्ड (1) में किसी बात के होते हुए भी, इस संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्ष की अवधि तक संघ के उन सभी शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाता रहेगा, जिनके लिए उसका ऐसे प्रारंभ से ठीक पहले प्रयोग किया जा रहा था, परन्तु राष्ट्रपति उक्त अवधि के दौरान, आदेश द्वारा, संघ के शासकीय प्रयोजनों में से किसी के लिए अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त हिंदी भाषा का और भारतीय अंकों के अंतर्राष्ट्रीय रूप के अतिरिक्त देवनागरी रूप का प्रयोग प्राधिकृत कर सकेगा।

(3) इस अनुच्छेद में किसी बात के होते हुए भी, संसद उक्त पन्द्रह वर्ष की अवधि के पश्चात्, विधि द्वारा

(क) अंग्रेजी भाषा का, या

(ख) अंकों के देवनागरी रूप का,

ऐसे प्रयोजनों के लिए प्रयोग उपबंधित कर सकेगी, जो ऐसी विधि में विनिर्दिष्ट किए जाएं।

अनुच्छेद 351 हिंदी भाषा के विकास के लिए निर्देश

संघ का यह कर्त्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे, जिससे वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्त्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्थानी में और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए और जहां आवश्यक या वांछनीय हो, वहां उसके शब्द-भंडार के लिए मुख्यत: संस्कृत से और गौणत: अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करें।

राष्ट्रभाषा और हिन्दी

स्वतंत्र राष्ट्र में राष्ट्रध्वज, राष्ट्रगान और राष्ट्रीय वेश तो प्रतीकात्मक रूप से राष्ट्र की पहचान है, वास्तव में राष्ट्रभाषा ही राष्ट्र की धमनियों में संचारित होने वाली राष्ट्रीयता की जीवंत धारा, रुधिर धारा है। राष्ट्रभाषा के बिना जन-जन का न तो पारस्परिक संपर्क सम्भव है और न देशवासिओं में एकता की भावना ही पनप सकती है। राष्ट्र कर भावात्मक एकता की बात करने वाले उपदेष्टा राजनीतिज्ञों को स्मरण रखना चाहिए कि विदेशी भाषा के माध्यम से स्वेदेशी भावना का प्रचार आकाश कुसुम सूंघने का प्रयास करना है। इस तथ्य से परिचित होने के कारण ही सन् 1925 में कानपुर के कांग्रेस अधिवेशन में अखिल भारतीय स्तर पर हिन्दी भाषा के प्रयोग का प्रस्ताव पारित किया था। उस समय सभी प्रदेशों के सदस्यों और भारत के विभिन्न भाषा भाषिओं का वहां जमावड़ा था और सर्वसम्मति से हिन्दी को राष्ट्रभाषा पद का गौरव देकर कांग्रेस कमेटी ने अखिल भारतीय व्यवहार की भाषा ठहराया था। यह कार्य जिस प्रेम, सद्भाव विश्वास और राष्ट्रहित को ध्यान में रखकर किया गया वह आज भी हमें प्रेरणा प्रदान करता है। यह राष्ट्रगौरव और राष्ट्रीय अस्मिता की सही पहचान थी।

हिन्दी का विकासशील स्वरूप

हिन्दी के विकास, प्रचार, प्रसार और संवर्धन के लिए शासकीय सहायता, संबल, प्रयत्न और शासकीय अनुदान कभी प्रेरक नहीं रहे। यदि हिन्दी का अतीत इतिहास छोड़ भी दिया जाए और केवल विगत दो सौ वर्षों को, 18वीं और 19वीं शती का इतिहास देखा जाए तो स्पष्ट लक्षित होगा कि ब्रिटिश शासनकाल में हिन्दी के विकास में सरकारी उद्यम से कोई प्रगति नहीं हुई, किंतु हिन्दी अपनी

अभ्यंतर ऊर्जा से, अपनी सर्वभोम लोकप्रियता से विकास के पथ पर निरंतर प्रगति करती रही। राज्याश्रय की न तो हिन्दी ने कभी कामना की और न उसे सहज रूप से कभी राज्याश्रय सुलभ ही हुआ। परतंत्र भारत में हिन्दी को जो स्थिति थी, वह सर्वथा दयनीय नहीं थी। विदेशी व्यापारियों के सामने भारत में माध्यम का प्रश्न आरंभ से था और अंग्रेज, फ्रेंच, डच, पुर्तगीज आदि सभी ने अपनी अपनी सूझ-बूझ इसे हल किया था। मैं इस संबंध में कुछ उदाहरण देकर हिन्दी के विकसनशील रूप को पाठकों के लिए स्पष्ट करना चाहता हूं।

डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने अपनी पुस्तक में एक डच यात्री जॉन केटेलर का उल्लेख किया है, जो सन् 1685 ई.में सूरत में व्यापार के लिए आया था। भाषा-माध्यम उसके सामने समस्या था। वह स्वयं डच भाषी था, किंतु सूरत के आस-पास व्यापारी वर्ग में जो भाषा बोली जाती थी वह हिन्दी गुजराती का मिश्रित रूप था और उसका व्याकरण हिन्दी परक था, अतः जॉन केटेलर ने डच भाषा में हिन्दी का प्रथम व्याकरण लिखा। सन् 1719 में ईसाई प्रचारक बेनजामिन शुल्गे मद्रास में आया और उसने 'ग्रेमेटिका हिन्दोस्तानिक' नाम से देवनागरी अक्षरों में हिन्दी व्याकरण की रचना की। उसी समय हेरसिम लेवेडेफ नामक ईसाई पादरी ने ब्राह्मणों को गुरु बनाकर शुद्ध और मिश्रित पूर्वी हिन्दुस्तान की बोलियों का व्याकरण अंग्रेजी में लिखा। देखना यह है कि सूरत (गुजरात), मद्रास (तमिलनाडु) जैसे-अहिन्दी प्रदेशों में जिन विदेशी विद्वानों ने भाषा ज्ञान के लिए एवं माध्यम भाषा के लिए व्याकरण ग्रंथों का निर्माण किया, वे हिन्दी व्याकरण थे। अर्थात् उस भाषा के व्याकरण थे जो दो सौ वर्ष पहले इस देश की लोकप्रिय, सार्वभौम भाषा थी। उसका विकास किसी दबाव, लालच, शासकीय प्रबंच या प्रेरणा से न होकर विकास की अनिवार्यता से आवश्यकतानुसार स्वयं हो रहा था।

हिन्दी का विकास और विदेशी विद्वान

हिन्दी को ब्रिटिश शासन काल में स्वयमेव विकसित होने के लिए जो साधन सुलभ हुए वह स्वदेशी कम, विदेशी अधिक थे। जिन विदेशी विद्वानों ने उस समय हिन्दी के महत्व को समझ कर हिन्दी व्याकरण अथवा हिन्दी की पाठ्य पुस्तकें लिखीं, उनकी दूरदर्शता की हमें सराहना करनी चाहिए। इस परंपरा में, यदि गणना की जाए तो दो दर्जन नाम उन व्यक्तियों के हैं, जो भारत में व्यापार, धर्मप्रचार, प्रशासन, अध्यापन, चिकित्सा आदि कार्यों के लिए आए थे

और उन्होंने हिन्दी के प्रचलन के आधार पर उसे भारत की राष्ट्रभाषा मानकर इसके विकास में योगदान दिया था। एक दर्जन व्याकरण पुस्तकें इसका प्रमाण है। हिन्दी साहित्य के विविध पक्षों पर पुस्तक लेख आदि लिखने वाले पश्चिमी विद्वानों की चर्चा भी इसी संदर्भ में की जाए तो हिन्दी विकास का दूसरा क्षितिज उद्घाटित होता है। एडविन ग्रीब्स, ग्राउस, ग्रियर्सन, ग्रिफिथ, हार्नली, रुडाल्फ, टेसीटरी, ओल्डहाम, पिनकाट आदि विद्वानों ने हिन्दी के पक्ष समर्थन में तथा हिन्दी के भारत में विकसित होने के लिए जो प्रयत्न किये वे कदापि भुलाए नहीं जा सकते। व्याकरण के क्षेत्र में जैसे–विलियम, ग्राइस, सैंडफोर्ट आनर्ट, जेम्स आर वेलटाइन आदि का कार्य है वैसे ही साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में कार्य करने वाले उर्पयुक्त विद्वानों का भी प्रंशनीय कार्य है, जो हिन्दी की विकसनशील चेतना का द्योतक है, जो विद्वान भारत की भाषाओं पर क्षेत्र, सीमा, जनसंख्या, संप्रेषणीयता आदि पर विचार कर तटस्थ भाव से अपना निर्णय दे गए हैं, वे सभी हिन्दी के पक्ष में लिख गए हैं। अपवाद रूप हिन्दी विरोध में लिखने वाला विद्वान 19 शती तक पैदा नहीं हुआ था।

अहिन्दी भाषी विद्वानों की हिन्दी सेवा

भारत में हिन्दी की जो स्थिति आज है, उसकी चर्चा न करते हुए हिन्दी विकास में योग देने वाले उन भारतीय विद्वानों, राजनीतिज्ञों और महापुरुषों का नाम निर्देश ही पर्याप्त होगा जिन की दृष्टि में हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा है, होने का पूरा अधिकार रखती है, सामर्थ्ययुक्त संप्रेषणीय भाषा है। बिहार में हिन्दी प्रचार का कार्य करने वाले पुण्यस्लोक भूदेव मुखर्जी, बंगाल में राजा राममोहन राय, केशवचंद्र सेन, बंकिमचंद्र, जस्टिस श्यामचरण मिश्र, रमेशचंद्र दत्त, अरविंद घोष, महाराष्ट्र में लक्ष्मण नरायण गर्दे, बाबूराम विष्णु पराडकर, माधवराव सप्रे, पंजाब में लाला लाजपतराय, लाला हंसराज, स्वामी श्रद्धानंद, राजस्थान में लज्जाराम मेहता, गौ ही ओझा, गुजरात में तो स्वामी दयानंद का तथा गांधी का ही नाम पर्याप्त है। इन नामों के परिगणन का केवल एक ही उद्देश्य है कि राष्ट्र की चेतना से संपृक्त, राष्ट्रीय जागरण में विश्वास करने वाले स्वदेशाभिमानी भारतीयों ने हिन्दी को राष्ट्रीय जीवन की अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में स्वीकार किया था। उनकी अपनी अपनी प्रादेशिक मातृभाषाएं थीं, किंतु राष्ट्र को एक सूत्र में बांधने के लिए उन्हें हिन्दी की ही अपेक्षा थी इसीलिए इसके विकास के वे आकांक्षी थे। फलतः इनमें कुछ महापुरुष तो ऐसे भी हुए, जिन्होंने

व्यापक जनसंपर्क की दृष्टि से अपनी मातृभाषा को छोड़कर हिन्दी में ही ग्रंथ प्रणयन, भाषण, लेखन आदि का कार्य किया। गुजराती, पंजाबी और मराठी भाषी लेखकों का योगदान इस संदर्भ में सदैव अविस्मरणीय रहेगा। उनके ग्रंथों से हिन्दी भाषा समृद्ध हुई है। हिन्दी के विकसनशील स्वभाव के कारण ही यह सम्भव हुआ है।

हिन्दी की बोलियाँ

हिन्दी के विकसनशील स्वभाव की चर्चा करते समय हिन्दी की बोलियों और उपभाषाओं पर ध्यान जाना स्वाभाविक है। दसवीं शताब्दी से आज बीसवीं शताब्दी तक हिन्दी ने अनेक रूप और अनेक विधाओं को स्वीकार किया है। अपभ्रंश और प्राचीन के रासो ग्रंथों की सुदीर्घ परंपरा में होकर हिन्दी राजस्थानी, अवधी, ब्रज मैथिली, भोजपुरी आदि भाषा बोलियों में अपना स्वरूप विकसित करती रही। राजस्थानी में अनेक वीर काव्य लिखे गए, किंतु यह राजस्थानी हिन्दी का ही रूप विकास था। इसी प्रकार मैथिल कोकिल विद्यापति ने भोजपुरी मिश्रित भाषा में ललित पदावली का निर्माण किया, वह भी हिन्दी के अंचल में ही पनपती रही। ब्रजबुलि नाम से बंगाल में जिस काव्य भाषा का विकास हुआ वह भी हिन्दी का ही एक मिश्रित रूप था। इसी प्रकार नाथपंथियों और सिद्धों की अपभ्रंश मूलक भाषा भी हिन्दी का ही प्राचीन एवं प्रारंभिक बीज रूप था। कबीर, नानक, रैदास, मलूकदास आदि संत कवियों ने जिस भाषा को अभिव्यक्त् का माध्यम बनाया वह प्रादेशिक शब्दावली से ओत-प्रोत होने पर भी हिन्दी ही थी। जायसी, कुतबन, मंझन आदि मुस्लिम सूफी कवियों ने फारसी के स्थान पर अवधी भाषा में काव्यसृजन किया। गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस की रचना अवधी में ही की थी। ब्रजभाषा में काव्य रचना करने वाले तो सहसाधिक कवि मध्यकाल में उत्पन्न हुए। भक्ति, नीति, श्रंगार, वीर, हास्य आदि विविध विषयों की रचनाएं पिछले पांच सौ वर्षों से निरंतर ब्रजभाषा में होती चली आ रही है। हिन्दी के विकास की यह परंपरा सर्वविदित है इसकी आवृत्ति करना अनावश्यक है।

लोक साहित्य और हिन्दी

हिन्दी के विकास के जो नये आयाम बीसवीं शताब्दी में उद्घटित हुए हैं, उन पर दृष्टिकोण करना मैं आवश्यक समझता हूँ। हिन्दी का लोक साहित्य

(फोक लिटरेचर) इस शताब्दी से पहले प्रायः उपेक्षित रहा है। ग्रामगीतों और लोक कथाओं में मौखिक रूप से जीवित रहने पर भी अभिजात साहित्य से उसे संयुक्त नहीं किया गया था। लोक साहित्य में अध्येताओं को जब साहित्य के लगभग सभी तत्त्व लक्षित हुए तब लोकगीतों, लोक कथाओं और लोकनाट्यों द्वारा इसका अध्ययन प्रारंभ हुआ। इस साहित्य को एकत्र किया जाने लगा और इसके सामाजिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक पक्षों का गवेषणात्मक दृष्टि से अध्ययन शुरू हुआ। आज लोक साहित्य हिन्दी का एक सबल पक्ष बन गया है और उसकी प्रचुर सामग्री प्रकाश में आ गई है। आश्चर्य है कि भारत की भावात्मक एवं सांस्कृतिक एकता की स्थापना के लिए जितनी प्रभूत सामग्री इस ग्राम अंचल में बिखरे हुए लोक साहित्य में उपलब्ध है, उतनी अन्यत्र कहीं नहीं। लोक साहित्य में भाषा भेद बोली (डाइलेक्ट) का ही है, अतः हिन्दी की व्यापक परिधि में इसे समाविष्ट करना आवश्यक हो जाता है। विदेशी विद्वानों नें भी हिन्दी भाषा और साहित्य के इस समृद्धि पक्ष को स्वीकार करना प्रारंभ कर दिया है और अनेक विदेशी शोधकर्ता भी इस दिशा में प्रयत्नशील हैं।

हिन्दी के विकास की यह दिशा वास्तव में सर्वथा नई न होने पर भी इस शताब्दी की ही देन है। अब इन उपभाषाओं और बोलियों का क्षेत्र निरंतर बढ़ता जा रहा है। राजस्थानी, भोजपुरी, ब्रज, अवधी, बुंदेली, बघेली, मैथिली, कुमाऊंनी, गढ़वाली, मारवाड़ी, बांगडू, हरियाणवी आदि प्रादेशिक प्रभावों से हिन्दी के रूप का विस्तार हो रहा है। इसका मौखिक साहित्य शनैः शनैः प्रकाश में आ रहा है और अपने जनपदीय रूप के साथ हिन्दी को समृद्ध बना रहा है। इन जनपदीय बोलियों के प्रादेशिक व्यवहार से हिन्दी के स्तरीय रूप को कोई खतरा नहीं है। हां खतरा पृथकवादी आन्दोलन से हो सकता है, जो अपनी बोली को संवैधानिक दर्जा दिलाने और हिन्दी से पृथक् स्वतंत्र भाषा मानने का आग्रह करते हैं। खड़ी बोली की विकसनशील प्रकृति इन बोलियों से तादात्म्य करने लगी है।

वैज्ञानिक शब्दावली तथा पाठ्य पुस्तकें

हिन्दी के विकास की दिशा में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जो कार्य हुआ है वह है वैज्ञानिक एवं तकनीकि विषयों की पुस्तकों की रचना। सबसे पहले यहा काम कोश रचना द्वारा प्रारंभ हुआ। विज्ञान के विविध विषयों की शब्दावली को एकत्र कर उसके लिए हिन्दी शब्दों का निर्माण किया गया। इसका मुख्य आधार तो अंग्रेजी

शब्द समूह ही रहा और उन शब्दों के लिये हिन्दी शब्दों के साथ पारिभाषिक शब्दावली भी तैयार की गई। अभी तक सभी वैज्ञानिक एवं तकनीकी विषयों के अतिरिक्त मानविकी, समाज विज्ञान, कृषि, गणित, विज्ञान, प्रशासन, राजनय आदि विषयों से संबद्ध एक लाख से अधिक शब्दों का हिन्दी में चयन हो चुका है। हिन्दी के विकास की यह दिशा स्वातंत्र्योत्तर परिधि में ही आती है। इसी के साथ स्नातक तथा स्नातकोत्तर कक्षाओं के लिए विज्ञान, मेडिसन, कृषि, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, इतिहास भूगोल आदि की पाठ्य पुस्तकों का निर्माण हो चुका है। हिन्दी भाषी प्रदेशों में सरकारी अनुदान से स्थापित अकादमियों तथा हिन्दी समितियों द्वारा भी लगभग बीस हजार उच्चस्तरीय पुस्तकें तैयार कराई गई है। अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध उच्चस्तरीय ग्रंथों का अनुवाद भी इनमें शामिल है। यदि इन पुस्तकों का समुचित रूप से उपयोग किया जाये तो हिन्दी के प्रचार प्रसार को तो बल मिलेगा ही, राष्ट्रभाषा हिन्दी के विषय में असामर्थ्य की बात का भ्रम भी दूर होगा। हिन्दी की क्षमता की परीक्षा प्रयोग ही हो सकती है।

अनुवाद कार्य और हिन्दी

हिन्दी के विकास में पारस्परिक आदान प्रदान का भी महत्वपूर्ण स्थान है। आदान प्रदान का तात्पर्य है भारतीय भाषाओं के मानक ग्रंथों का हिन्दी रूपांतरण और विदेशी भाषाओं के श्रेष्ठ ग्रंथों का अनुवाद। हिन्दी में बंगला, मराठी, गुजराती, उर्दू और पंजाबी के श्रेष्ठ कथाकारों के उपन्यास नाटक अनूदित हो चुके हैं। कुछ कवियों की उत्तम रचनाएं भी हिन्दी में प्रकाशित हुई हैं, किंतु अभी यह काम एक तरफ से अर्थात् हिन्दी की ओर से ही हो रहा है। प्रसाद, प्रेमचंद, निराला, पंत, महादेवी, दिनकर आदि साहित्यकारों की रचनाएं अभी अन्य भारतीय भाषाओं में उस अनुपात से अनूदित नहीं हुई हैं, जिस अनुपात से हिन्दी में अन्य भाषाओं की हुई है, फिर भी हिन्दी के विकास की यह दिशा है, जो आदान प्रदान की परंपरा से हिन्दी को विश्व हिन्दी का रूप देती है। विश्व के प्रसिद्ध साहित्यकारों की महत्वपूर्ण कृतियां भी हिन्दी में अनूदित होती हैं और यह क्रम निरंतर जारी है।

विदेशों में हिन्दी का अध्ययन

भारत से बाहर विदेशों के लगभग सौ विश्वविद्यालयों में किसी न किसी रूप में हिन्दी के अध्ययन अध्यापन की व्यवस्था हो चुकी है और कई

विश्वविद्यालयों में उच्चस्तरीय शोध कार्य भी हो रहा है। कुछ शोध प्रबंध भारतीय साहित्यकारों तथा श्रेष्ठ कृतियों पर लिखे गए हैं। इनके लेखक विदेशी (रूसी, जर्मनी, अमेरीकी आदि) शोध छात्र हैं। यह ठीक है कि हिन्दी के प्रचार प्रसार की दिशा में यह एक प्रगतिशील कदम है, किंतु भाषा के विकास के लिए हम इसे सर्वतोभावेन विकास का संकेत नहीं ठहरा सकते। इसका एक सुफल यह अवश्य होगा, जब हिन्दी माध्यम से विदेशी छात्र शोध प्रबंध लिखेंगे, उनकी अपनी मातृभाषा की छटा भी हिन्दी विकास में योग देगी।

❐❐❐